प्रस्तावना ।

सज्जनों !

जैनसिद्धान्तसंग्रहकी तीसरी आवृत्ति आज आपके सन्मुख प्रस्तुत है। पहली और दूसरी आवृत्तिकी कुल प्रतियां इतने स्वल्पसमयमें बिक गईं जिससे स्पष्ट विदित होता है कि जैन समाजमें ऐसे ग्रन्थकी बहुत आवश्यक्ता है। ऐसा होना ठीक ही है। जिस ग्रन्थ संग्रहमें जैन बालकोंके पठन योग्य पाठोंसे लेकर नित्य नियमके उपयोगी सभी विषयोंका समावेश होकर पंडितों तकके स्वाध्याय योग्य ग्रन्थोंका सम्मेलन हो उस ग्रन्थरत्नका इतना आदर होना स्वाभाविक ही है। स्वल्प मूल्यमें प्रायः सभी उपयोगी विषय एकत्र मिल सकें यह प्रायः सब जैनी भाइयोंकी सदैव इच्छा रहती है। समाजमें इस ग्रन्थकी आज भी बड़ी आवश्यक्ता होनेसे यह तृतीयावृत्ति पाठकोंके सन्मुख प्रेषित करनी पड़ी है।

द्वितीयावृत्तिकी नाईं इस आवृत्तिमें भी छपाई सफाई और कागजकी उत्तमता की ओर बहुत ध्यान रक्खा गया है। तथा कई नवीन २ विषयोंका समावेश कर देनेके कारण ग्रन्थका आकार पहलेकी अपेक्षा कुछ बढ़ गया है तो भी मूल्य नहीं बढ़ाया गया है।

पुस्तकके विषय नियंत्रणमें अबकी बार कुछ परिवर्तन किया गया है। विषयोंकी गिनतीकी ओर लक्ष्य न रख अबकी बहुतसे उपयोगी विषय बढ़ाकर संग्रहके पांच भाग बना दिये गये हैं। आशा है कि स्वाध्याय प्रेमी सज्जनगण इस संग्रहको पहलेकी नाईं अपनावेंगे। इस आवृत्तिके संशोधनमें श्रीमान् मास्टर दीपचन्दजी वर्णी, पं० माणिक्यचन्दजी न्यायतीर्थ-सागरने अपना अमूल्य समय देकर जो सहायता की है उसके लिये हम अंतःकरणसे आभारी हैं।

सागर,
ज्येष्ठ सुदी ५ (श्रुतपंचमी)
वीर सं० २४५१,
विक्रम सं० १९८२.

जाति सेवक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया जैन।

विषयसूची ।

प्रथम खण्ड ।

द्वितीय खण्ड ।

तीसरा खण्ड ।

चतुर्थ खण्ड ।

पांचवा खण्ड ।

। श्रीवीतरागाय नमः ॥

जैनसिद्धान्तसंग्रह

प्रथम खंड।

---

(१) णमोकार मंत्र।

गाथा।

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

इस णमोकार मंत्रमें पांच पद, पैंतीस अक्षर, अठावन मात्रा हैं।

---

(२) णमोकार मंत्रका माहात्म्य।

महामंत्रका जाप किये, नर सब सुख पावै।
अतिशयोक्ति इसमें, रंचक भी नहीं दिखावै॥
देखो! शून्यविवेक सुभग ग्वाला भी आखिर।
हुआ सुदर्शन कामदेव, इसके प्रभावकर॥

---

(३) पञ्च परमेष्ठियोंके नाम।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु।
ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा। ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥
नोट-अ सि आ उ नाम पञ्च परमेष्ठीका है।

ॐ में पञ्चपरमेष्ठीके नाम गर्भित हैं। यथा-

अर्हन्ता अशरीरा आयरिया तह उवज्झया मुनिनो।
पढ़मक्खर निप्पणो ॐकारोय पंचपरमेष्ठी॥

ह्रीं में २४ तीर्थंकरोंके नाम गर्भित हैं।

---

(४) मेरी भावना।

(बाबू जुगलकिशोरजी कृत)

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवोंको मोक्षमार्गका, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह, चित्त उसीमें लीन रहो॥१॥
विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-परके हित-साधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके, दुखसमूहको हरते हैं॥ २॥
रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे।
उनही जैसी चर्यामें यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
परधन-वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ॥३॥
अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरोंकी बढ़तीको, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य-व्यवहार करूँ।

बने जहांतक इस जीवनमें, औरोंका उपकार करूँ ॥ ४ ॥
मैत्रीभाव जगतमें मेरा, सब जीवोंसे नित्य रहे।
दीन दुखी जीवोंपर मेरे, उरसे करुणास्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥
गुणीजनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहांतक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षोंतक जीऊं या मृत्यु आज ही आजावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे।
तो भी न्यायमार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥ ७ ॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे।
पर्वत-नदी-स्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन, दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे ॥ ८ ॥
सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे।
वैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे ॥
घरघर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित उन्नतकर अपना मनुज-जन्मफल सब पावें ॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे।

धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजाका किया करे ॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्तिसे जिया करे ।
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैले सर्वहित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे ।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे ॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदयसे देशोन्नतिरत रहा करें ।
वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे, सब दुख संकट सहा करें ॥११॥

(५) चौवीस तीर्थंकरोंके नाम ।

१ श्री ऋषभनाथ, २ श्री अजितनाथ,
३ श्री संभवनाथ, ४ श्री अभिनन्दननाथ,
५ श्री सुमतिनाथ, ६ श्री पद्मप्रभ,
७ श्री सुपार्श्वनाथ, ८ श्री चन्द्रप्रभ,
९ श्री पुष्पदन्त, १० श्री शीतलनाथ,
११ श्री श्रेयांसनाथ, १२ श्री वासुपूज्य,
१३ श्री विमलनाथ, १४ श्री अनन्तनाथ,
१५ श्री धर्मनाथ, १६ श्रीशान्तिनाथ,
१७ श्री कुन्थुनाथ, १८ श्री अरनाथ,
१९ श्री मल्लिनाथ, २० श्री मुनिसुव्रतनाथ,
२१ श्री नमिनाथ, २२ श्री नेमिनाथ,
२३ श्री पार्श्वनाथ, २४ श्री वर्द्धमान;

चौवीस तीर्थंकरोंके चिह्न ॥

१-ऋषभदेवके बैलका चिह्न।

पहला भव सर्वार्थसिद्धि, जन्मनगरी अयोध्या, पिता नाभिराजा, माता मरुदेवी, गर्भतिथि आषाढ़ वदि २, जन्मतिथि चैत्र वदि ९, जन्म नक्षत्र उत्तराषाढ, काय ऊंची ५०० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ लाख पूर्व, दीक्षातिथि चैत्र वदि ९, दीक्षावृक्ष वड़ (वड़के नीचे दीक्षा ली), केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदि ११, गणधर ८४, निर्वाण तिथि माघ वदी १४, निर्वाण आसन पद्मासन (बैठे हुए), निर्वाणस्थान कैलाश। अंतर-इनसे ५० लाख कोटि सागर गए पीछे २रे ती० अजितनाथ भए।

२-अजितनाथके हाथीका चिह्न।

पहला भव वैजयन्त, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम जितशत्रु. माताका नाम विजयादेवी, गर्भतिथि ज्येष्ठ वदि अमावस्या, जन्मतिथि माघ शुदी १०, जन्मनक्षत्र रोहिणी, काय ऊंची ४५० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ७२ लाख पूर्व, दीक्षा तिथि माघ शुदी १०, दीक्षा वृक्ष सप्तछद (सतौना), केवलज्ञान तिथि पौष शुदी ४, गणधर ९०, निर्वाण तिथि चैत्र शुदी ५, निर्वाण आसन खड़गासन (खड़े हुए), निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर। अन्तर-इनसे ३० लाखकोटि सागर गए पीछे ३ रे तीर्थंकर संभवनाथ भए।

३-संभवनाथके घोड़ेका चिह्न।

पहला भव ग्रैवेयक, जन्मनगरी श्रावस्ती, पिताका नाम

जितारी, माताका नाम सेना, गर्भतिथि फाल्गुन सुदी ८, जन्मतिथि कार्तिक शुदि १५, जन्मनक्षत्र पूर्वाषाढ, काय ऊंची ४०० धनुष, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु ६० लाख पूर्व, दीक्षातिथि मार्गशिर शुदि १५, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि कार्तिक वदि ४, गणधर १०५, निर्वाणतिथि चैत्र शुदि ६, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेशिखर, अन्तर--इनसे १० लाख कोटि सागर गए पीछे ४ थे अभिनन्दननाथ भए।

४--अभिनन्दननाथके बन्दरका चिह्न।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम संवर, माताका नाम सिद्धार्था, गर्भतिथि वृन्दावन और बखतावरसिंहकृत पाठोंमें वैशाख शुदि ६, रामचन्द्रकृतमें वैशाख शुदि ८, जन्मतिथि माघ शुदि १२, जन्मनक्षत्र पुनर्वसु, काय ऊंची ३५० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ५० लाख पूर्व, दीक्षातिथि माघ शुदि १२, दीक्षावृक्ष सरल, केवलज्ञान तिथि पोष शुदि १४, गणधर १०३, निर्वाणतिथि वैशाख शुदि ६, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर--इनसे ९, लाख कोटी सागर गए पीछे ५ वें सुमतिनाथ भए।

५--सुमतिनाथके चकवेका चिह्न।

पहला भव ऊर्द्ध ग्रैवेयक, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम मेघप्रभ, माताका नाम सुमंगला, गर्भतिथि श्रावण शुदि २, जन्मतिथि चैत्र शुदि ११, जन्मनक्षत्र मघा, काय ऊंची ३०० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ४० लाख पूर्व, दीक्षातिथि वृन्दावन और बखतावरकृत पाठोंमें चैत्र सुदी ११, रामचंद्रकृतमें

वैशाख सुदी ९, दीक्षावृक्ष प्रियंगु (कंगुनी), केवलज्ञान तिथि चैत्र सुदी ११, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेशिखर, अन्तर-इनसे ९० हजार कोटि सागर गए पीछे पद्मप्रभ भए।

६-पद्मप्रभके कमलका चिह्न।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी कौशांबी, पिताका नाम धारण, माताका नाम सुसीमा, गर्भतिथि माघ वदी ६, जन्मतिथि कार्तिक सुदी १३, जन्मनक्षत्र चित्रा, काय ऊंची २५० धनुष, रंग आरक्त (सुरख) कमलसमान, आयु ३० लाख पूर्व, दीक्षातिथि वृन्दावन और बखतावरकृत पीठोंमें कार्तिक सुदी १३, रामचंद्रकृतमें कार्तिक वदी १३, दीक्षावृक्ष प्रियंगु (कंगुनी), केवलज्ञान तिथि चैत्र शुदि १५, गणधर १११, निर्वाणतिथि फाल्गुण वदी ४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनसे ९ हजार कोटि सागर गए पीछे ७ वें सुपार्श्वनाथ भए।

७-सुपार्श्वनाथके साथियेका चिह्न।

पहला भव मध्यग्रैवेयक, जन्मनगरी काशी, पिताका नाम सुप्रतिष्ठ, माताका नाम पृथिवी, गर्भतिथि वृंदावनकृत पाठोंमें भादों सुदी २, रामचन्द्र और बखतावरकृत पाठोंमें भादों सुदी ६, जन्मतिथि ज्येष्ठ सुदी १२, जन्मनक्षत्र विशाखा, काय ऊंची २०० धनुष, रंग हरा प्रियंगुमञ्जरी समान, आयु २० लाख पूर्व, दीक्षा तिथि ज्येष्ठ सुदी १२, दीक्षावृक्ष शिरीष (सिरस), केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदी ६, गणधर ९५, निर्वाण तिथि फाल्गुण वदी ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान

सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे ९ सौ कोटि सागर गए पीछे ८ वें चन्द्रप्रभ भए ।

८–चन्द्रप्रभके अर्धचन्द्रका चिह्न ।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी चन्द्रपुरी, पिताका नाम महासेन, माताका नाम लक्ष्मणा, गर्भतिथि चैत्र वदी ५, जन्मतिथि पौष वदी ११, जन्मनक्षत्र अनुराधा, काय ऊंची १५० धनुष, रंग श्वेत (सफेद), आयु १० लाख पूर्व, दीक्षा तिथि पौष वदी ११, दीक्षावृक्ष नाग, केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदी ७, गणधर ९३, निर्वाणतिथि वृन्दावन और रामचन्द्रकृत पाठोंमें फाल्गुण सुदी ७, वखतावरकृतमें माघ वदी ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर–इनसे ९० कोटि सागर गए पीछे ९ वें पुष्पदन्त भए ।

९–पुष्पदन्तके नाकू (मगर) का चिह्न ।

पहला भव अपराजित, जन्मनगरी काकन्दी, पिताका नाम सुग्रीव, माताका नाम रामा, गर्भतिथि फाल्गुन वदी ९, जन्मतिथि मार्गशिर सुदी १, जन्मनक्षत्र मूला, काय ऊंची १०० धनुष, रंग श्वेत (सुफेद), आयु २ लाख पूर्व, दीक्षातिथि मार्गशिर सुदी १, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि कार्तिक सुदी २, गणधर ८८, निर्वाणतिथि वृन्दावनकृतमें कार्तिक सुदी २, वखतावरकृतमें आश्विन सुदी ८, रामचंद्रकृतमें भादों सुदी ८, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे ९ कोटी सागर गए पीछे १० वें शीतलनाथ भए ।

१०-शीतलनाथके कल्पवृक्षका चिह्न।

पहला भव १६ वां आरणस्वर्ग, जन्मनगरी भद्रिकापुरी, पिताका नाम दृढरथ, माताका नाम सुनन्दा, गर्भतिथि चैत्र वदी ८, जन्मतिथि माघ वदी, १२, जन्मनक्षत्र पूर्वाषाढ़, काय ऊंची ९० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १ लाख पूर्व, दीक्षातिथि माघ वदी १२, दीक्षावृक्ष प्लक्ष (पिलखन), केवलज्ञान तिथि पोष वदी १४, गणधर ८१, निर्वाणतिथि आसोज सुदी ८, निर्वाणआसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनसे १०० सागर घाट कोटिसागर गए पीछे ११ वें श्रेयांसनाथ भए।

११-श्रेयांसनाथके गेंडेका चिह्न।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी सिंहपुरी, पिताका नाम विष्णु, माताका नाम विष्णुश्री, गर्भतिथि वृन्दावन और बख्तावरकृत पाठोंमें ज्येष्ठ वदी ८, रामचन्द्रकृत पाठमें ज्येष्ठ सुदी ६, जन्मतिथि फाल्गुण वदी ११, जन्म नक्षत्र श्रवण, काय ऊंची ८० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ लाख वर्ष, दीक्षातिथि फाल्गुण वदी ११, दीक्षावृक्ष तिंदुक, केवलज्ञान तिथि वृन्दावन व रामचन्द्रकृत पाठोंमें माघ वदी अमावास्या, बखतावरकृतमें माघ वदी १०, गणधर ७७, निर्वाणतिथि श्रावणसुदी १५, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अन्तर-इनसे ५४ सागर गए पीछे १२ वें वासुपूज्य भए।

१२-वासुपूज्यके भैंसेका चिह्न।

पहला भव ८वां कापिष्ट स्वर्ग, जन्मनगरी चंपापुरी, पिताका नाम वासुपूज्य, माताका नाम विजया, गर्भतिथि आषाढ़ वदी ६,

जन्मतिथि फाल्गुन वदी १४, जन्मनक्षत्र शतभिषा, काय ऊंची ७० धनुष, रंग आरक्त (सुरख) केसूके फूल समान, आयु ७२ लाख वर्ष, दीक्षातिथि फाल्गुन वदी १४, दीक्षावृक्ष पाटल, केवलज्ञान तिथि वृन्दावन-वख्तावर कृत पाठोंमें भादों वदी २. रामचंद्रकृतमें माघ सुदी २, गणधर ६६, निर्वाण तिथि भादों सुदी १४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान चम्पापुरीका वन, अन्तर इनसे ३० सागर गए पीछे १३वें विमलनाथ भए। वासु-पूज्य बालब्रह्मचारी भए न विवाह किया, न राज्य किया-कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

१३-विमलनाथके सूवरका चिह्न।

पहला भव १वां शुक्र स्वर्ग. जन्मनगरी कपिला, पिताका नाम कृतवर्मा, माताका नाम सुरम्या, गर्भतिथि ज्येष्ठ वदी १०, जन्मतिथि वृन्दावन व वख्तावर पाठोंमें माघ सुदी ३, रामचंद्रकृत-में माघ सुदी १४, जन्मनक्षत्र उत्तरापाढ, काय ६० धनुष ऊंची, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु ६० लाख वर्ष दीक्षातिथि माघ सुदी ४, दीक्षावृक्ष जंबू, केवलज्ञान तिथि माघ सुदी ६, गणधर ५५, निर्वाणतिथि आषाढ वदी ८. निर्वाण आसन खड्गासन. निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनके पीछे ९ सागर गए बाद १४ वें अनंतनाथ भए।

१४-अनंतनाथके सेहीका चिह्न।

पहला भव १२ वां सहस्रार स्वर्ग, जंन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम सिंहसेन, माताका नाम सर्वयशा, गर्भतिथि कार्तिक वदी १, जन्मतिथि ज्येष्ठ वदी १२, जन्मनक्षत्र रेवती, काय

ऊंची ९० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ३० लाख वर्ष, दीक्षातिथि ज्येष्ठ वदी १२, दीक्षावृक्ष पीपल, केवलज्ञान तिथि चैत्र वदी अमावस्या, गणधर ५०, निर्वाणतिथि वृन्दावन व बखतावरकृत पाठोंमें चैत्र वदी ४, रामचन्द्रकृतमें चैत्र कृष्ण अमावास्या. निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर इनसे ४ सागर गए पीछे १५वें धर्मनाथ भए।

१५-धर्मनाथके वज्रदण्डका चिह्न।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी रत्नपुरी, पिताका नाम भानु, माताका नाम सुव्रता, गर्भतिथि वृंदावन-बखतावर-कृत पाठोंमें वैशाख सुदी ८, रामचन्द्रकृत. वैशाख सुदी १३, जन्मतिथि माघ सुदी १३, जन्मनक्षत्र पुष्य काय ऊंची ४५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १० लाख वर्ष, दीक्षातिथि माघ सुदी १३, दीक्षावृक्ष दधिपर्ण, केवलज्ञान तिथि पौष सुदी १९, गणधर ४३, निर्वाणातिथि ज्येष्ठ सुदी ४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर-इनसे पौण पल्य घाट तीन सागर गए पीछे १६वें शांतिनाथ भए।

१६-शांतिनाथके हिरणका चिह्न।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम विश्वसेन, माताका नाम ऐरा, गर्भतिथि भादों वदी ७, जन्मतिथि ज्येष्ठ वदी १४, जन्मनक्षत्र भरणी, काय ऊंची ४० धनुष, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु १ लाख वर्ष, दीक्षातिथि ज्येष्ठ वदी १४, दीक्षावृक्ष नंदी, केवलज्ञान तिथि वृंदावन बखतावरकृत पाठोंमें पौष सुदी १०, रामचन्द्रकृतमें पौष सुदी

११, गणधर ३६, निर्वाणतिथि ज्येष्ठ वदी १४, निर्वाणआसन खड्गासन. निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर-इनसे आध पल्य गए पीछे १७वें कुन्थुनाथ भए।

शांतिनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१७-कुन्थुनाथके बकरेका चिह्न।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम सूर्य माताका नाम श्रीदेवी, गर्भतिथि श्रावण वदी १०, जन्मतिथि वैशाख सुदी १, जन्मनक्षत्र कृतिका, काय ऊंची ३५ धनुष रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ९५ हजार वर्ष, दीक्षा तिथि वैशाख सुदी १, दीक्षावृक्ष तिलक, केवलज्ञान तिथि चैत्र सुदी ३, गणधर ३५, निर्वाणतिथि वैशाख सुदी १, निर्वाण आसन खड्गासन निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनसे छह हजार कोटि वर्षघाट पाव पल्य गए पीछे अरनाथ भए। कुन्थुनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१८-अरनाथके मच्छीका चिह्न।

पहला भव सर्वार्थसिद्धि, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम सुदर्शन, माताका नाम मित्रा, गर्भतिथि फाल्गुण सुदी ३, जन्मतिथि मार्गशिर सुदी १४, जन्मनक्षत्र रोहिणी, काय ऊंची ३० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ हजार वर्ष, दीक्षा-तिथि वृन्दावन बखतावरकृत पाठोंमें मार्गशिर सुदी १४, रामचन्द्रकृतमें मार्गशिर सुदी १०, दीक्षावृक्ष आम्र, केवलज्ञान तिथि कार्तिक सुदी १२, गणधर ३०, निर्वाणतिथि वृन्दावन-

बख्तावरकृत पाठोंमें चैत्र सुदी ११, रामचंद्रकृतमें चैत्र वदी अमावास्या, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनसे पैंसठलाख चौरासीहजार वर्ष घाट हजार कोटी वर्ष गए १९वें मल्लिनाथ भए।

अरनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१९-मल्लिनाथके कलशका चिह्न।

पहला भव विजय, जन्मनगरी मिथिलापुरी, पिताका नाम कुम्भ, माताका नाम रक्षता, गर्भतिथि चैत्र सुदी १, जन्मतिथि मार्गशिर सुदी ११, जन्मनक्षत्र अश्विनी, काय ऊंची २५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ५५ हजार वर्ष, दीक्षातिथि मार्गशिर सुदी ११, दीक्षावृक्ष अशोक, केवलज्ञान तिथि पौष वदी २, गणधर २८, निर्वाणतिथि फाल्गुण सुदी ५, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर-इनके पीछे ५४ लाख वर्ष गए ..वें श्री मुनिसुव्रतनाथ भए।

मल्लिनाथ बालब्रह्मचारी भए न विवाह किया, न राज्य किया-कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२०-मुनिसुव्रतनाथके कछवेका चिह्न।

पहला भव अपराजित, जन्मनगरी कुशाग्रनगर अथवा राजग्रही, पिताका नाम सुमित्र, माताका नाम पद्मावती, गर्भतिथि श्रावण वदी २, जन्मतिथि वैशाख वदी १०, जन्मनक्षत्र श्रवण, काय ऊंची २० धनुष, रंग श्याम अंजनगिर समान, आयु ३० हजार वर्ष, दीक्षातिथि वैशाख वदी १०, दीक्षावृक्ष

चंपक (चंबेली), केवलज्ञान तिथि वैशाख वदी ९, गणधर १८, निर्वाणतिथि फाल्गुन वदी १२, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर-इनके पीछे ६ लाख वर्ष गए २१ वें नमिनाथ भए।

२१-नमिनाथके लाल कमलका चिंह्न।

पहला भव १४ वां प्राणत स्वर्ग जन्मनगरी मिथिलापुरी, पिताका नाम विजय माताका नाम विप्रा, गर्भतिथि आसौज वदी २, जन्मतिथि आषाढ़ वदी १०, जन्मनक्षत्र अश्विनी, काय ऊंची २५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १० हजार वर्ष, दीक्षातिथि आषाढ़ वदी १०, दीक्षावृक्ष बौलश्री केवलज्ञान तिथि मार्गशिर सुदी ११, गणधर १७, निर्वाणतिथि वैशाख वदी १४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अन्तर-इनसे ५ लाख वर्ष गए पीछे २२वें नेमिनाथ भए।

२२-नेमिनाथके शंखका चिह्न।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी सौरीपुर वा द्वारिका, पिताका नाम समुद्रविजय, माताका नाम शिवादेवी, गर्भ तिथि वृंदावन-बख्तावरकृत पाठोंमें कार्तिक सुदी ६, रामचन्द्र कृतमें कार्तिक वदी ६, जन्मतिथि श्रावण सुदी ६, जन्मनक्षत्र चित्रा, काय ऊंची १० धनुष, रंग श्याम मोरके कंठ समान, आयु १ हजार वर्ष दीक्षातिथि श्रावण सुदी ६, दीक्षावृक्ष मेषशृंग, केवलज्ञानतिथि आसौज सुदी १, गणधर ११, निर्वाणतिथि वृन्दावन-बखतावरकृत पाठोंमें आषाढ़ सुदी ८, रामचन्द्र कृतमें आषाढ़ सुदी ७, निर्वाण आसन, खड्गासन, निर्वाणस्थान

गिरनार पर्वत, अंतर–इनसे पौने चौरासी हजार वर्ष गए पीछे २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भए।

नेमिनाथ बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य–कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२३–पार्श्वनाथके सर्पका चिह्न।

पहला भव ११वां आनत स्वर्ग, जन्मनगरी काशीपुरी, पिताका नाम अश्वसेन, माताका नाम वामा, गर्भतिथि वैशाख वदी २, जन्मतिथि पौष वदी ११, जन्म नक्षत्र विशाखा, काय ऊंची ९ हाथ, रंग हरा काचि शालि समान, आयु सौ वर्ष दीक्षा तिथि पोष वदी ११, दीक्षावृक्ष धवल, केवलज्ञान तिथि चैत्र वदी ४, गणधर १०, निर्वाणतिथि श्रावण सुदी ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे अढ़ाइसौ वर्ष गए पीछे २४वें वर्द्धमान भए।

पार्श्वनाथ बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य–कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२४–महावीरके शेर (सिंह) का चिह्न।

पहलाभव पुष्पोत्तर, जन्मनगरी कुण्डलपुर, पिताका नाम सिद्धार्थ, माताका नाम प्रियकारिणी (त्रिशला), गर्भतिथि आषाढ़ सुदी ६, जन्मतिथि चैत्र सुदी १३, जन्मनक्षत्र हस्त, काय ऊंची ७ हाथ, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ७२ वर्ष, दीक्षातिथि मार्गशिर वदी १०, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि वैशाख सुदी १०, गणधर ११, निर्वाणतिथि कार्तिक वदी अमावास्या, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान पावापुर।

यह बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य किया, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली । जब ये मोक्ष गए चौथे कालके ३ वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रहे थे ।

---

(६) बारह चक्रवर्त्ती ।

१ भरतचक्री, २ सगरचक्री, ३ मघवाचक्री, ४ सनत्कुमारचक्री, ५ शान्तिनाथचक्री (तीर्थंकर), ६ कुन्थुनाथचक्री (तीर्थंकर), ७ अरनाथचक्री (तीर्थंकर), ८ सभूमचक्री, ९ पद्मचक्री वा महापद्म, १० हरिषेणचक्री, ११ जयचक्री, १२ ब्रह्मदत्तचक्री ।

---

(७) नव नारायण ।

१ त्रिपृष्ट, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण ।

---

(८) नव प्रतिनारायण ।

१ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक, ४ मधु (मधुकैटभ) ५ निशुंभ, ६ बली, ७ प्रल्हाद, ८ रावण, ९ जरासंघ ।

---

(९) बलभद्र ।

१ अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ, ५ सुद-

र्शन, ६ आनंद, ७ नंदन (नंद), ८ पद्म (रामचन्द्र), ९ राम (बलभद्र)।

नोट–२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र यह मिलकर ६३ शलाकाके पुरुष कहलाते हैं।

(१०) नव नारद।

१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल, ७ दुर्मुख, ८ नरकमुख, ९ अधोमुख।

(११) ग्यारह रुद्र।

१ भीमवली, २ जितशत्रु, ३ रुद्र, ४ विश्वानल, ५ सुप्रतिष्ठ, ६ अचल, ७ पुण्डरीक, ८ अजितधर, ९ जितनाभि, १० पीठ, ११ सात्यकी।

(१२) चौवीस कामदेव।

१ बाहुबली, २ अमिततेज, ३ श्रीधर, ४ दशभद्र, ५ प्रसेनजित्, ६ चंद्रवर्ण, ७ अग्निमुक्ति, सनत्कुमार (चक्रवर्ती), ९ वत्सराज, १० कनकप्रभु, ११ मेघवर्ण, १२ शांतिनाथ (तीर्थंकर), १३ कुंथुनाथ, (तीर्थंकर), १४ अरनाथ (तीर्थंकर) १५ विजयराज, १६ श्रीचंद्र, १७ राजा नल, १८ हनुमान्, १९ बलराजा, २० वसुदेव, २१ प्रद्युम्न, २२ नागकुमार, २३ श्रीपाल, २४ जंबूस्वामी।

(१३) चौदह कुलकर ।

१ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान्, ९ यशस्वी, १० अभिचंद्र, ११ चंद्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित्, १४ नाभिराजा ।

नोट–५८ तो यह और ६३ शलाका पुरुष इनमें चौवीस तीर्थकरोंके ४८ माता पिता मिलाकर यह सर्व १६९ पुण्यपुरुष कहलाते हैं अर्थात् जितने पुण्यवान् पुरुष हुए हैं उनमें यह मुख्य गिने जाते हैं ।

---

(१४) बारह प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम ।

१ नाभि, कुलकरोंमें. २ श्रेयांस, दानमें. ३ बाहुबली, बलमें. ४ भरत, चक्री. ५ रामचन्द्र, बलभद्रोंमें. ६ हनुमान्, कामदेवोंमें. ७ सीता, सतियोंमें. ८ रावण, मानियोंमें. ९ कृष्ण नारायणोंमें. १० महादेव, रुद्रोंमें. ११ भीम, योद्धावोंमें. १२ पार्श्वनाथ, उपसर्ग सहनेमें प्रसिद्ध देव ।

तात्पर्य–कुलकरोंमें नाभिराजा, दान देनेमें श्रेयांस राजा, तप करनेमें बाहुबली एक साल तक कायोत्सर्ग खड़े रहे, भावकी शुद्धतामें भरत चक्रवर्तीको दीक्षा लेते ही केवलज्ञान हुवा; बलदेवोंमें रामचन्द्र, कामदेवोंमें हनुमान्, सतियोंमें सीता मानियोंमें रावण, नारायणोंमें कृष्ण, रुद्रोंमें महादेव, बलवानोंमें भीम, तीर्थकरोंमें पार्श्वनाथ, यह पुरुष जगत्में बहुत प्रसिद्ध हुए हैं ॥

---

(१५) सिद्धक्षेत्रोंके नाम॥

१ मांगीतुंगी, २ मुक्तागिरि (मेढ़गिरी), ३ सिद्धवरकूट, ४ पावागिरि चेलनानदी के पास, ५ शेत्रुंजय, ६ बड़वानी, ७ सोनागिरि, ८ नैनागिरी (नैनानंद), ९ द्रोणागिरि, १० तारंगा, ११ कुंथुगिरि, १२ गजपंथ, १३ राजग्रही, १४ गुणावा, १५ पटना, १६ कोटिशिला, १७ चौरासी।

(१६) महाविदेहक्षेत्रके २० विद्यमान तीर्थंकर।

१ सीमन्धर, २ युगमंधर, ३ बाहु, ४ सुबाहु, ५ सुजात, ६ स्वयंप्रभु, ७वृषभानन, ८अनन्तवीर्य, ९सूरप्रभु, १०विशालकीर्ति ११ बज्रधर, १२ चंद्रानन, १३ चन्द्रबाहु, १४ भुजंगम, १५ ईश्वर, १६ नेमप्रभु (नेमि) १७ वीरसेन, १८ महाभद्र, १९ देवयश, २० अजितवीर्य।

(१७) अतीत (पिछली) चौवीसी।

१ श्रीनिर्वाण, २ सागर, ३ महासाधु, ४ विमलप्रभु, ५ श्रीधर, ६ सुदत्त, ७ अमलप्रभु ८ उद्धर, ९ अंगिर, १० सन्मति, ११ सिंधुनाथ, १२ कुसुमांजलि, १३ शिवगण, १४ उत्साह, १५ ज्ञानेश्वर, १६ परमेश्वर, १७ विमलेश्वर, १८ यशोधर, १९ कृष्णमति, २० ज्ञानमति, २१ शुद्धमति, २२ श्रीभद्र, २३ अतिक्रांत, २४ शांति।

(१८) अनागत (आइन्दा) चौवीसी ।

१ श्रीमहापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयंप्रभु, ५ सर्वात्मभू, ६ श्रीदेव, ७ कुलपुत्रदेव, ८ उदंकदेव, ९ प्रोष्ठिलदेव, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अरह ('अमम) १३ निष्पाप, १४ निःकषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयंभू, २० अनिवृत्त, २१ जयनाथ, २२ श्रीविमल, २३ देवपाल, २४ अनन्तवीर्य ।

---

(१९) चौदह गुणस्थान ।

१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरत सम्यक्त्व, ५ देशव्रत, ६ प्रमत्त, ७अप्रमत्त ८ अपूर्वकरण, ९अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसांपराय, ११ उपशांतकषाय वा उपशांतमोह, १२ क्षीणकषाय वा क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली, १४ अयोगकेवली ।

---

(२०) सोलहकारण भावना ।

१ दर्शनविशुद्धि, २ विनयसंपन्नता, ३ शीलव्रतेष्वनतिचार, ४ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, ५ संवेग, ६ शक्तितस्त्याग, ७ शक्तितस्तप ८ साधुसमाधि, ९ वैय्यावृत्य, १० अर्हद्भक्ति, ११ आचार्यभक्ति, १२ बहुश्रुतभक्ति, १३ प्रवचनभक्ति, १४ आवश्यकापरिहाणि, १५ मार्गप्रभावना, १६ प्रवचनवात्सल्य ।

---

(२१) श्रावकोंके २१ उत्तरगुण।

१ लज्जावंत, २ दयावंत, ३ प्रसन्नता, ४ प्रतीतिवन्त, ५ परदोषाच्छादन, ६ परोपकारी, ७ सौम्यदृष्टि, ८ गुणग्राही, ९ १० मिष्टवादी, ११ दीर्घविचारी, १२ दानवंत, १३ शीलवंत, १४ कृतज्ञ, १५ तत्वज्ञ, १६ धर्मज्ञ, १७ मिथ्यात्व रहित, १८ संतोषवंत, १९स्याद्वाद भाषी, २०अभक्ष्यत्यागी, २१षट्कर्मप्रवीण।

---

(२२) श्रावककी ५३ क्रिया।

८ मूलगुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समताभाव, ११ प्रतिमा, ४ दान, ३ रत्नत्रय, १ जलगालन क्रिया, १ रात्रि-भोजनत्याग (दिनमें ही भोजन शोधकर खाना अर्थात् छानबीन कर देखभालकर खाना।)

श्रावकके ८ मूलगुण—५ उदंबर। ३ मकार।

१२ व्रत—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत।

५ अणुव्रत—१ अहिंसा अणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३ परस्त्री-त्याग अणुव्रत, ४ (अचौर्य) चोरी त्याग अणुव्रत, ५ परिग्रहप्रमाण अणुव्रत।

३ गुणव्रत—१ दिग्व्रत, २ देशव्रत, ३ अनर्थदंडत्याग।

४ शिक्षाव्रत=१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ अतिथिसंविभाग, ४ भोगोपभोगपरिमाण।

१२ तप—

आचार्यके ३६ गुणोंमें लिखे हैं। इनके भी वही नाम है।

ज्यादे इतना है कि मुनियोंके महाव्रत होते हैं, श्रावकोंके अणुव्रत अर्थात् शक्ति अनुसार।

११ प्रतिमा–१ दर्शनप्रतिमा, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोषधोपवास, ५ सचित्तत्याग, ६ रात्रिभुक्ति अथवा दिवा मैथुन त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरम्भ त्याग, ९ परिग्रहत्याग, १० अनुमति त्याग, ११ उद्दिष्ट त्याग।

चार दान–आहारदान, औषधदान, शास्त्रदान, अभयदान। यह ४ दान श्रावकको करने योग्य हैं।

३ रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

यह तीन रत्न श्रावकके धारने योग्य हैं। इनका खुलासा (अर्थ) जैन बाल गुटकेके दूसरे भागमें सम्यक्तके वर्णनमें लिखा है। इनका नाम रत्न इस कारणसे है कि जैसे सुवर्णादिक सर्व धनमें रत्न उत्तम अर्थात् बहुमूल्य होता है इसी प्रकार कुल नियम, व्रत, तपमें यह तीन सर्वमें उत्तम हैं। जैसे कि विना अंक बिन्दियां किसी कामकी नहीं इसी प्रकार बगैर इन तीनोंके सारे व्रत नियम कुछ भी फलदायक नहीं हैं। यह तीनों मानिन्द शुरूके अंकके हैं इसलिये इन तीनोंको रत्न माना है।

दातारके २१ गुण–९ नवधाभक्ति, ७ गुण, ५ आभूषण। यह २१ गुण दातारके हैं अर्थात् पात्रको दान देनेवाले दातामें यह २१ गुण होना चाहिये।

दातारकी नवधा भक्ति–पात्रको देखकर बुलाना, उच्चासन पर बैठाना, चरण धोना, चरणोदक मस्तक पर चढ़ाना,

पूजा करनौ, मन शुद्ध रखना, वचन विनयरूप बोलनौं, शरीर शुद्ध रखना, शुद्ध आहार देना।

इसे नवधा भक्ति कहते हैं अर्थात् दातारको यह नवप्रकारकी भक्तिपूर्वक पात्रदान करना चाहिये।

दातारके सात गुण—१ श्रद्धावान् होना, २ शक्तिवान् होना, ३ अलोभी होना, ४ दयावान् होनौं, ५ भक्तिवान् होना, ६ क्षमावान् होना, ७ विवेकवान् होना।

दातारमें यह सात गुण होते हैं अर्थात् जिसमें यह सात गुण हों वह सच्चा दातार है।

दातारके पांच भूषण—१ आनन्दपूर्वक देना, २ आदरपूर्वक देना, ३ प्रिय वचन कहकर देना, ४ निर्मल भाव रखना, ५ दान देकर जन्म सुफल मानना।

दातारके पांच दूषण—विलम्वसे देना, विमुख होकर देना, दुर्वचन कहकर देना, निरादर करके देना, देकर पछताना।

ये दाताके पांच दूषण हैं अर्थात् दातारमें यह पांच बात नहीं होनी चाहिये।

---

[२३] ग्यारह प्रतिमाओंका सामान्य स्वरूप॥

दोहा।

प्रणम पंच परमेष्ठि पद; जिन आगम अनुसार; श्रावकप्रतिमा एकदश, कहुं भविजन हितकार॥१॥ सवैया ३१॥ श्रद्धा कर व्रत पालें; सामायिक दोष टालै, पोसा माँडै, सचित्तकौं त्यागै

लों घटायकें । रात्रिभुक्त परिहरै ब्रह्मचर्य नित धरै, आरम्भको त्यागि करैं मन वच कायकें । परिग्रह काज टार, अघ अनुमति छाँरैं स्वनिमित कृत टारैं आतम लोलायकै । सब एकादश येह प्रतिमा जु शर्म्म गेह, धारैं देश व्रती हर्ष उर बढायकें ।

दर्शन प्रतिमा स्वरूप-अष्ट मूलगुण संग्रह करै, व्यसन अभक्ष्य सबै परिहरै । युत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त, धरहिं प्रतिज्ञा दर्शन रक्त ॥ १ ॥

व्रत प्रतिमा स्वरूप-अणुव्रतपन अतिचार विहीन, धारहिं जो पुन गुणव्रत तीन, चौ शिक्षाव्रत संजुत सोय; व्रत प्रतिमा धर श्रावक होय ॥ २ ॥

सामायिक प्रतिमा स्वरूप-(गीतका छंद) सब जीवमें समभाव धर शुभ भावना संयममहीं, दुरध्यान आरत रौद्र तज-कर त्रिविध काल प्रमाणहीं । परमेष्ठिपन जिन वचन जिन वृष बिंब जिन जिम्रनह तनी, वंदन त्रिकाल कराहि सुज्ञानहु भव्य सामायिक धनी ॥ ३ ॥

प्रोषध प्रतिमा स्वरूप-पद्धरी छंद वर मध्यम जघन त्रिविध धरेय, प्रोषध विधि युत निजबल प्रमेय; प्रति मास, चार पर्वी मंझार, जानहु सो प्रोषध नियम धार ॥ ४ ॥

सचित्तत्याग प्रतिमा स्वरूप-(चौपाई) जो परिहरै सचित सब चीज, पत्र प्रवाल कंद फलबीज । अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित्त त्याग प्रतिमा धर होय ॥ ५ ॥

रात्रिभुक्तत्याग प्रतिमा स्वरूप-(अडिल्ल छंद) मन

वच तन कृत कारित अनुमोदै नही, नवविध मैथुन दिवस मांहि जो वर्जही। अरु चतुर्विध आहार निशामाहीं तजै, रात्रिभुक्ति परित्याग प्रतिमा सो सजै ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वरूप--(चौपाई) पूर्व उक्त मैथुन नव भेद, सर्व प्रकार तजै निरखेद, नारि कथादिक भी परिहरे, ब्रह्मचर्य प्रतिमा सो धरे ॥ ७ ॥

आरंभ त्याग प्रतिमा स्वरूप--(चौपाई) जो कछु अल्प बहुत अघ काज, ग्रह संबंधी सो सब त्याज। निरारम्भ है वृषरत रहै, सो जिय अष्टम प्रतिमा वहै ॥ ८ ॥

परिग्रहत्याग प्रतिमा स्वरूप-(चौपाई) वस्त्र मात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रतसंपन्न। तामें पुन मूर्छा परहरै, नवमी प्रतिमा सो भवि धरै ॥ ९ ॥

अनुमतित्याग प्रतिमा स्वरूप-(चौपाई) जो प्रमाण अघमय उपदेश, देय नहीं परको लवलेश। अरु तसु अनुमोदन भी तजै, सोही दशमी प्रतिमा सजै ॥१०॥

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्वरूप-(चौपाई) ग्यारम थान भेद हैं दोय, इक छुल्लक इक ऐलक सोय। खंडवस्त्र धर प्रथम सुजान, युतकोपीन हि दुतिय पिछान ॥ ११ ॥

ए गृह त्याग मुनिन ढिंग रहैं, वा मठ, मंदिरमें निवसहै। उत्तर उदंड उचित आहार, करहिं शुद्ध अंत्रायन बार ॥ दोहा ॥ इम सब प्रतिमा एकदश, दौल देशव्रत यान। ग्रहै अनुक्रम मूल सह पालें भवि सुखदान

[२४] श्रावकके १७ नियम ।

१ भोजन, संचित्त वस्तु, ३ गृह, ४ संग्राम, ५ दिशा-गमन, ६ औषधिविलेपन, ७ तांबूल, ८ पुष्पंसुगंध, ९ नाच, १० गीतश्रवण, ११ स्नान, १२ ब्रह्मचर्य, १३ आभूषण, १४ वस्त्र, १५शय्या, १६ औषध खाना, १७घोड़ा बैलादिककी सवारी ।

नोट-इनमेंसे जिस जिसकी जरूरत हो उसका प्रमाण रखकर शेषका प्रतिदिन त्याग किया करें ।

---

[२५] सात व्यसनका त्याग ।

१ जुवा, २ मांस, ३ मदिरा, ४ गणिका (रंडी), ५ शिकार, ६ चोरी, ७ परस्त्री।

---

[२६] बावीस अभक्ष्यका त्याग ॥

पांच उदम्बर-

१ उदम्बर (गूलर), २ कठूम्बर, ३ वड़फल, ४ पीपलफल, ५ पाकरफल (पिलखन फल) ।

तीन मकार ।

१ मांस, २ मधु, ३ मदिरा ।

नोट—इन तीनोंको तीन मकार इस कारणसे कहते हैं कि इन तीनों नामोंके शुरूमें ' म ' है ।

बाकी चौदह येह हैं ।

१ ओला, २ विदल, ३ रात्रिभोजन, ४ बहुबीजा,

५ बैंगन, ६ अचार, ७ विना चीन्हे फल (अनजान), ८कन्दमूल, ९ माटी. १० विष, ११ तुच्छफल, १२ तुषार (बरफ), १३ चलितरस, १४ माखन।

नोट:-५ उदम्बर, ३ मकार, १४ दूसरे ये बाईस अभक्ष्य हैं।

[२७] श्रावकके नित्य षट्कर्म।

षट् नाम छका है। १ देवपूजा, २ गुरुसेवा, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप, ६ दान। यह छह कर्म श्रावकके नित्य करनेके हैं।

[२८] दशलक्षण धर्म।

१ उत्तम क्षमा, २ उत्तम मार्दव, ३ उत्तम आर्जव, ४ उत्तम सत्य, ५ उत्तम शौच, ६ उत्तम संयम, ७ उत्तम तप, ८ उत्तम त्याग, ९ उत्तम आकिंचन्य, १० उत्तम ब्रह्मचर्य

द्वितीय खंड ।

(१) इष्टछत्तीसी अर्थात्

पंचपरमेष्ठीके १४३ मूलगुण ।

सोरठा ।

प्रणमूं श्री अर्हंत, दयाकथित जिनधर्मको ।
गुरु निरग्रंथ महंत, अवर न मानूं सर्वथा ॥ १ ॥
विन गुणकी पहिचान, जानै वस्तु समानता ।
तातें परम बखान, परमेष्ठी गुणको कहूं ॥२॥
रागद्वेष्युत देव, मानै हिंसाधर्म पुनि ।
सग्रंथनकी सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमै ॥ ३ ॥

अथ अरहंतके ४२ मूलगुण ।

दोहा ।

चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ ।
अनँत चतुष्टय गुणसहित, ये छियालीसों पाठ ॥ ४ ॥

अथ–३४ अतिशय, ८ प्रतिहार्य, ४ अनंतचतुष्टय ये अरहंतके ४६ मूलगुण होते हैं। अब इनका भिन्न २ वर्णन करते हैं–

जन्मके १० अतिशय ।

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार ।
प्रियहितवचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार ॥५॥

लच्छन सहसरु आठ तन, समचतुष्कसंठान ।
वज्रवृषभनाराच जुत, ये जनमत दश जान ॥ ६ ॥

अर्थ—१ अत्यन्त सुन्दर शरीर, २ अति सुगन्धमय शरीर, ३ पसेवरहित शरीर, ४ मलमूत्ररहित शरीर, ५ हितमितप्रियवचन बोलना, ६ अतुल्य बल, ७ दुग्धवत् श्वेत रुधिर, ८ शरीरमें एक हजार आठ लक्षण, ९ समचतुरस्त्रसंस्थान, १० वज्रवृषभनाराचसंहनन । ये दश अतिशय अरहंत भगवानके जन्मसे ही उत्पन्न होते हैं ।

केवलज्ञानके दश अतिशय ।

योजन शत इकमें सुभिख, गगनगमन मुख चार ।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥ ७ ॥
सब विद्या ईश्वरपनों, नाहिं बढ़ैं नख केश ।
अनिमिष दृग छायारहित, दश केवलके वेश ॥ ८ ॥

अर्थ—१ एकसौ योजनमें सुभिक्षता, अर्थात् जिस स्थानमें केवली हों उनसे चारों तरफ सौ सौ कोशमें सुकाल होता है, २ आकाशमें गमन, ३ चार मुखोंका दीखना, ४ अदयाका अभाव, ५ उपसर्गरहित, ६ कवल (ग्रास) वर्जित आहार, ७ समस्त विद्याओंका स्वामीपना, ८ नखकेशोंका नहीं बढ़ना, ९ नेत्रोंकी पलकें नहीं झपकना, १० छाया रहित । ये १० अतिशय केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे प्रगट होते हैं ॥ ८ ॥

देवकृत १४ अतिशय ।

देवरचित हैं चार दश, अर्द्धमागधी भाष ।
आपसमाहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥ ९ ॥

होत फूल फल ऋतु सबै, पृथिवी कांच समानं ।
चरणकमलतल कमल हैं, नभतैं जय जय वानं ॥ १० ॥
मंद सुगंध बयारि पुनि, गंधोदककी वृष्टि ।
भूमिविषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ११ ॥
धर्मचक्र आगे चले, पुनि वसु मंगल सार ।
अतिशय श्रीअरहंतकै, ये चौंतीस प्रकार ॥ १२ ॥

अर्थ—१ भगवान्‌की अर्द्धमागधी भाषाका होना, २ समस्त जीवोंमें परस्पर मित्रताका होना, ३ दिशाओंका निर्मल होना, ४ आकाशका निर्मल होना, ५ सब ऋतुके फल पुष्प धान्यादिकका एक ही समय फलना, ६ एक योजनतककी पृथिवीका दर्पणवत् निर्मल होना, ७ चलते समय भगवान्‌के चरणकमलके तलें सुवर्ण-कमलका होना, ८ आकाशमें जयजय ध्वनिका होना, ९ मंद-सुगंधित पवनका चलना, १० सुगंधमय जलकी वृष्टि होना, ११ पवनकुमार देवोंके द्वारा भूमिका कण्टकरहित होना, १२ समस्त जीवोंका आनन्दमय होना, १३ भगवान्‌के आगे धर्मचक्रका चलना, १४ छत्र, चमर, ध्वजा, घंटादि अष्ट मंगल द्रव्योंका साथ रहना । इसप्रकार सब मिलाकर १४ अतिशय अरहंत भगवानके होते हैं ॥ १२ ॥

अष्ट प्रातिहार्य ।

तरु अशोकके निकटमें, सिंहासन छविदार ।
तीन छत्र सिरपर लसैं, भामंडल पिछवार ॥ १३ ॥
दिव्यध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय ।
ढारैं चौसठ चमर सुर, बाजैं दुंदुभि जोय ॥ १४ ॥

अर्थ—१ अशोकवृक्षका होना, २ रत्नमय सिंहासन, ३ भगवानके सिरपर तीन छत्रका फिरना, ४ भगवानके पीछे भामंडलका होना, ५ भगवानके मुखसे दिव्यध्वनिका होना, ६ देवोंके द्वारा पुष्पवृष्टिका होना, ७ यक्षदेवोंद्वारा चासठ चवेंराका ढुरना, दुंदुभि बाजोंका बजना, य आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्तचतुष्टय।

ज्ञान अनंत अनंत सुख, दर्श अनंत प्रमान।
बल अनंत अर्हत सो, इष्टदेव पहिचान ॥१५॥

अर्थ—१ अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, ३ अनन्तसुख, ४ अनन्तवीर्य। जिसमें इतने गुण हों, वह अरहन्त परमेष्ठी है।

अष्टादशदोषवर्जन।

जनम जरा तरषा क्षुधा विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद ॥१८॥
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं हात अर्हतके, सो छवि लायक मोष ॥१७॥

अर्थ—१ जन्म, २ जरा, ३ तृषा, ४ क्षुधा, ५ आश्चर्य, ६ अरति (पीडा), ७ खेद (दुःख), ८ रोग, ९ शोक, १० मद ११ मोह, १२ भय, १३ निद्रा, १४ चिन्ता, १५ पसीना, १६ राग, १७ द्वेष, १८ मरण, ये १८ दोष अरहंत भगवानमें नहीं होते ॥१७॥

सिद्धोंके ८ गुण।

सोरठा।

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूच्छम वीरजवान, निराबाध गुन सिद्धके ॥१८॥

अर्थ-१ सम्यक्त्व, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अवगाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ अनंतवीर्य्य, ८ अव्याबाधत्व, ये सिद्धोंके ८ मूलगुण होते हैं ॥१८॥

आचार्यके ३६ गुण।

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालैं पंचाचार।
षट आवश्यक त्रिगुप्ति गुन, आचारज पदसार ॥

अर्थ-तप १२, धर्म १०, आचार ५, आवश्यक ६, गुप्ति ३। ये आचार्य महाराजके ३६ मूलगुण होते हैं। अब इनको भिन्न २ कहते हैं ॥१९।

द्वादश तप।

अनशन ऊनोदर करैं, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्तशयन आसन धरैं, कायकलेश सुठोर ॥
प्रायश्चित धर विनयजुत, वैयाव्रत स्वाध्याय।
पुनि, उत्सर्ग विचारक, धरैं ध्यान मन लाय ॥२१॥

अर्थ-१ अनशन, २ ऊनोदर, ३ व्रतपरिसंख्यान, ४ रसपरित्याग, ५ विविक्तशय्यासन, ६ कायक्लेश, ७ प्रायश्चित्त लेना, ८ पांच प्रकार विनय करना, ९ वैयाव्रत करना, १० स्वाध्याय

करना, ११ व्युत्सर्ग (शरीरसे ममत्व छोड़ना), और १२ ध्यान करना, ये बारह प्रकारके तप हैं ॥ २१ ॥

दश धर्म ।

क्षमा मार्दव आर्जव, सत्यवचन चित पाग ।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तिय त्याग ॥

अर्थ–१ उत्तमक्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ सत्य, ५ शौच ६, संयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ आकिंचन्य, १० ब्रह्मचर्य; ये दश प्रकारके धर्म हैं ॥२२॥

आवश्यक ।

समता धर वंदन करैं, नाना थुती बनाय ।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत कायोत्सर्ग लगाय ॥

अर्थ–१ समता (समस्त जीवोंसे समताभाव रखना) २, वंदना, ३ स्तुति (पंचपरमेष्ठीकी स्तुति) करना. ४ प्रतिक्रमण (लगे हुए दोषोंपर पश्चाताप) करना, ५ स्वाध्याय, और ६ कायोत्सर्ग (ध्यान) करना ये छह आवश्यक हैं ॥२३॥

पंचाचार और तीन गुप्ति ।

दर्शन ज्ञान चारित्र तप, वीरज पंचाचार ।
गोपे मनवचकायको, गिन छतीस गुन सार ॥

अर्थ–१ दर्शनाचार, २ ज्ञानाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार, १ मनोगुप्ति (मनको वशमें करना) २ वचनगुप्ति (वचनको वशमें करना) ३ कायगुप्ति (शरीरको वशमें करना,) इस प्रकार सब मिलाकर आचार्यके ३६ मूलगुण हैं ॥२४॥

उपाध्यायके २५ गुण।

चौदह पूरवको धरैं, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ैं, पढ़ावैं ज्ञान ॥२४॥

अर्थ–११ अंग १४ पूर्वको आप पढ़ें, और अन्यको पढ़ावें ये ही उपाध्यायके २५ गुण हैं ॥२५॥

ग्यारह अंग।

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूनो सूत्रकृतांग
ठाणअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥२६॥
व्याख्या प्रज्ञप्ति पंचमो, ज्ञातृकथा षट् आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दशठान॥२७॥
अनुत्तरणउत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥२८॥

अर्थ–१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथांग, ७ उपासकाध्ययनांग, ८ अंत कृतदशांग, ९ अनुत्तरोत्पाददशांग, १० प्रश्नव्याकरणांग, ११ विपाकसूत्रांग, ये ग्यारह अंग हैं। २८।

चौदह पूर्व–उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति प्रवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥
छट्ठो कर्मप्रवाद है सतप्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ॥ ३० ॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महंत।
प्राणवाद किया बहुल लोकबिंदु है अंत ॥ ३१ ॥

अर्थ—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायिणी पूर्व, ३ वीर्य्यानुवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ कर्मप्रवादपूर्व, ७ सत्यप्रवादपूर्व, ८ आत्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व ११ कल्याणवादपूर्व, १२ प्राणानुवादपूर्व १३ क्रियाविशालपूर्व, १४ लोकबिन्दुपूर्व ये १४ पूर्व हैं ॥ ३१ ॥

सर्वसाधुके २८ मूलगुण।

पंचमहाव्रत।

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाय।
मनवचतनतैं त्यागवो, पंचमहाव्रत थाय ॥ ३१ ॥

अर्थ—१ अहिंसा महाव्रत, १ सत्य महाव्रत, ३ अचौर्य्य महाव्रत, ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५ परिग्रहत्याग महाव्रत ये पांच महाव्रत हैं।

पांच समिति।

ईर्य्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥

अर्थ—१ इर्य्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदाननिक्षेपणसमिति, ५ प्रतिष्ठापनासमिति, ये पांच समिति हैं ॥ ३२ ॥

पांच इंद्रियोंका दमन।

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध।
षट् आवशि मंजन तजन, शयन भूमिको शोध ॥

अर्थ—१ स्पर्शन (त्वक्), रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु,

और ५ श्रोत्र इन पांच इन्द्रियोंका वश करना सो इन्द्रियदमन है (छह आवश्यक आचार्य्यके गुणोंमें देखो) ॥ १४ ॥

शेष सात गुण।

वस्त्रत्याग कचलोंच अरु लघु भोजन इकवार।
दांतन मुखमें ना करें, ठाड़े लेहिं अहार ॥

अर्थ-१ यावज्जीव स्नानका त्याग, २ शोधकर (देख भाल कर) भूमिपर सोना, ३ वस्त्रत्याग (दिगम्बर होना) ४ केशोंका लोंच करना, ५ एकवार लघुभोजन करना, ६ दन्तधावन नहीं करना, ७ खड़े खड़े आहार लेना; इन सात गुणोंसहित २८ मूल गुण सर्व मुनियोंके होते हैं । २६ ।

साधर्मी भवि पठनको, इष्टछतीसी ग्रंथ
अल्पबुद्धि बुधजन रच्यो, हित मित शिवपुरपंथ।

इति पंचपरमेष्ठीके १४३ मूलगुणोंका वर्णन समाप्त।

(२) दर्शनपाठ।

अनादिनिधन महामंत्र

गाथा-णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

मंदिरजी के वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "जय जय जय, निःसहि, निःसहि, निःसहि" इस प्रकार उच्चारण करके उपर्युक्त महामन्त्रका ९ वार पाठ करे। तत्पश्चात्—

चत्तारि मंगलं–अर्हंत मंगलं । सिद्ध मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंत लोगुत्तमा । सिद्ध लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंत सरणं पव्वज्जामि । सिद्धसरणं पव्वज्जामि । साहूसरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ॐ ह्रौं ह्रौं स्वाहा ॥

देवदर्शन ।

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनं ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनं ॥
दर्शनेन जिनेंद्राणाम्, साधूनां वंदनेन च ।
न चिरं तिष्ठति पापम्, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥
वीतरागमुखं दृष्ट्वा. पद्मरागसमप्रभं ।
अनेकजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥
दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनं ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनं ॥
दर्शनं जिनचंद्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणं ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥

जीवादितत्त्वं प्रतिदर्शकाय ।
सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय ॥
प्रशांतरूपाय दिगंबराय ।
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

चिदानन्दैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेवशरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥
नहि त्राता नहिं त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥
जिने भक्तिर्जिने भक्ति–र्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥
जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवं चक्रवर्त्यपि ।
स्यांचितोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितं ॥
जन्मजन्मकृतं पापं जन्मकोटिमुपार्जितं ।
जन्ममृत्युजरारोगं हन्यते जिनदर्शनात् ॥
अद्याभव सुफलता नयनद्वयस्य ।
देव त्वदीयचरणांबुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलकप्रतिभाषते मे
संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणं ।
इति देवदर्शनं ।

वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोंके नाम ।

श्रीऋषभ १, अजित २, संभव ३, अभिनन्दन ४, सुमति ५, पद्मप्रभु ६, सुपार्श्व ७, चंद्रप्रभु ८, पुष्पदंत ९, शीतल १०, श्रेयान्स ११, वासुपूज्य १२, विमल १३, अनन्त १४, धर्म १५, शांति १६, कुन्थु १७, अर १८, मल्लि १९, मुनिसुव्रत २०, नमि २१, नेमि २२, पार्श्वनाथ २३, महावीर २४, इति वर्तमानकालसम्बंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमोनमः ।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम।
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसम्पदः ॥ १ ॥
अद्य संसारगम्भीरपारावारः सुदुस्तरः।
सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥
अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ३ ॥
अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमङ्गलम्।
संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ४ ॥
अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम्।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥
अद्य सौम्या गृहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः।
नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥
अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः।
सुखसंगं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥
अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम्।
सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥
अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥
अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः।
भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥
अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥

इति अद्याष्टकस्तोत्रं

इस प्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चांवल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा श्लोक तथा मंत्र पढ़कर चढ़ावे—

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन्सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतौघैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥ १॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा श्लोक और मंत्र पढ़कर चढ़ावे।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान् वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखप्रसूनैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥ २॥
ॐ ह्रीं कामबाणविध्वंसनाय देवशास्त्रगुरुभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि किसीको लोंग, बदाम, एलायची दाड़िम आदि कोई प्रासुक फल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा श्लोक और मंत्र पढ़कर चढ़ावे।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान् ।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥ ३॥
ॐ ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखा श्लोक व मंत्र बोलकर चढ़ाना चाहिये।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातैर् नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥ ४
ॐ ह्रीं अनर्घ्यपदप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्योऽर्घं समर्पयामि ॥ ४॥

इस प्रकार चार प्रकारके द्रव्योमेंसे जो द्रव्य हो, उसी द्रव्यका श्लोक व मंत्र पढ़कर वह द्रव्य चढ़ाना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखी दोनों स्तुतियां अथवा दोनोंमेंसे कोई एक स्तुति अवश्य पढ़नी चाहिये।

दौलतराम कृत स्तुति॥

दोहा–सकल-ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानंदरसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसविहीन॥

पद्धरिछन्द।

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोहतिमिरको हरनसूर॥
जय ज्ञान अनंतानंतधार, दृगसुखवीरजमंडित अपार॥१॥
जय परमशांतिमुद्रासमेत, भविजनको निजअनुभूतिहेत॥
भवि भागनवश जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥२॥
तुम गुणचिंतत निजपरविवेक, प्रगटै, विघटैं आपद अनेक॥
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकलपमुक्त॥३॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्मपरमपावन अनूप॥
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन॥४॥
अष्टादशदोषविमुक्त धीर, सुचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नवकेवललब्धिरमा धरंत॥५॥
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव॥
भवसागरमें दुख छारवारि, तारनको और न आप टारि॥६॥
यह लखि निज दुखगदहरणकाज, तुमही निमित्तकारण इलाज॥
जाने, तातै मैं शरण आय, उचरूं निज दुख जो चिर लहाय॥७॥

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधिफल पुण्यपाप ॥
निजको परको करता पिछान, परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥
आकुलित भयो अज्ञानधारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥
तनपरणतिमें आपो चितारि, कबहूं न अनुभवो स्वपदसार ॥९॥
तुमको विन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश ॥
पशु नारक नर सुर गतिमझार, भव धर धर मर्यो अनंतवार ॥१०॥
अब काललब्धिबलतें दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ॥
मन शांत भयो मिट सकलद्वंद, चाख्यो स्वात्मरस दुखनिकंद ॥११॥
तातें अब ऐसी करहु नाथ विछुरै न कभी तुव चरणसाथ ॥
तुम गुणगणको नहिं छेव देव, जगतारनको तुव विरद एव ॥१२॥
आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणत न जाय ॥
मैं रहूं आपमें आप लीन, सो करो होहु ज्यों निजाधीन ॥१३॥
मेरे न चाह कुछ और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजै मुनीश ॥
मुझ कारजके कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥
शशि शांतिकरन तपहरनहेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतें भव नसाय ॥१५॥
त्रिभुवन तिहुकालमँझार कोय, नहिं तुम विन निजसुखदाय होय ॥
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधि उतारन तुम जिहाज ॥१६॥
दोहा—तुमगुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग सभार ॥

अथ बुधजनकृत स्तुति ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो शरनजी ।

यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी ।
या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रमगिण्या हितकारजी ॥ ॥
भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरचो ।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरता फिरचो ॥
धन घड़ी यो, धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लख लयो ॥२॥
छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं ।
वसुप्रातिहार्य अनन्तगुणयुत, कोटिरविछविको हरैं ॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरख ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो ॥३॥
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तुव चरनजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी ॥
जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथजी ।
'बुध' जाचहू तुव भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथजी ॥४॥

इस प्रकार एक या दोनों स्तुति पढ़कर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये । तपश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तकपर तथा हृदयादि उत्तम अंगोंमें भी लगाना चाहिये ।

निर्मल निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनम् ।
जिनगन्धोदकं वन्दे अष्टकर्मविनाशकम् ॥१॥

यदि आशिका लेनी हो तो यह दोहा पढ़कर लेना चाहिये ।

दोहा—श्रीजिनवरकी आशिका, लीजे शीस चढ़ाय ।

भवभवके पातक कटैं, दुःख दूर हो जाय ॥१॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो अथवा एक कवित्त पढ़कर शास्त्र-जीको (जिनवाणीको) साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये। अथवा थोड़ी बहुत किसी भी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये।

कवित्त ।

वीरहिमाचलतैं निकसी, गुरुगौतमके मुख कुंड ढरी है ।
मोहमहाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है ॥
ज्ञानपयोनिधिमाहिं रली बहुभंग तरंगनिसों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंगनदीप्रति मैं अँजुलीकर शीस धरी है ॥१॥
या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी ॥
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥
तो किस भांति पदारथपांति, कहां लहते, रहते अविचारी ।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि, हैं जिनवैन बड़े उपकारी ॥२॥

रात्रिको भी इसी प्रकार दर्शन करके तत्पश्चात् दीप धूपसे नीचे लिखी अथवा जिस पर रुचि हो वह आरती करना चाहिये।

पंचपरमेष्ठीकी आरती ।

चाल खड़ी ।

मनवचतनकर शुद्ध पचपद, पूजों भविजन सुखदाई ।
सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहु आरती गुणगाई ॥टेक॥
प्रथमाह श्री अरहंत परमगुरु, चौंतिस अतिशय सहित वसैं ॥
प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहित समवसृत मांहिं लसे ।

क्षुधा तृषा भय जन्म जरा मृति, रोग शोक रति अरति महा।
विस्मय खेद स्वेद मद निद्रा, राग द्वेष मिल मोह दहा॥
इन अष्टादश दोषरहित नित, इन्द्रादिक पूजत आई।
सबजन मिल० ॥ १ ॥

दूजे सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं।
सम्यक्‌दर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्मपणाका छाजत हैं॥
अगुरुलघू अवगहनशक्ति धर, बाधाविन अशरीरा हैं।
तिनका सुमरण नित्य कियेतें, शीघ्र नशत भवपीरा हैं॥
या कारण नित चित्तशुद्ध कर भजहु सिद्ध शिवके राई।
सबजन मिल० ॥ १ ॥

तीजे श्री आचार्य्य परमगुरु छत्तिस गुणके धारी ह।
दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज पंचाचार-प्रचारी हैं॥
द्वादशतप दशधर्म गुप्तित्रय, षट् आवश्यक नित पालें।
सब मुनिजनको प्रायश्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालें॥
ऐसे श्री आचार्य्य गुरुनकी, पूजा करिये चित लाई।
सबजन मिल० ॥ १ ॥

चौथे श्रीउवझायचरणपंकजरज, सुखदा भविजनको।
ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश, पढ़ैं पढावें मुनिगणको॥
मुनिके सब आचरण आचरें, द्वादश तपके धारी हैं।
स्याद्‌वाद सुखकारी विद्या, सबजगमें विस्तारी हैं॥
ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके, चरणकमल पूजहु भाई।
सबजन मिल० ॥ ४ ॥

पंचमि आरति सर्वसाधुकी, आठवीस गुण-मूल धरें।
पंचमहाव्रत पंचसमितिधर इन्द्रिय पांचों दमन करें॥
षट्आवश्यक केशलोंच इक बार खड़े भोजन करते।
दाँतण स्नान त्याग भू सोवत, यथाजात मुद्रा धरते॥
या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नशजाई।
सबजन मिलकर॥ ६॥

इस प्रकार आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तक चढ़ावें।

ध्वस्तोघमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्काञ्चनभाजनस्थैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥१॥

दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासूं पूजूं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

(३) आलोचना पाठ।

दोहा—वंदो पांचों परम गुरु, चौवीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्ध करनके काज॥ १॥

सखी छन्द (१४ मात्रा)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी॥
तिनकी अब निर्वृतिकाजा, तुम शरन लही जिनराजा॥ २॥
इक वे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा॥
तिनकी नहिं करुना धारी, निरदई ह्वै घात विचारी॥ ३॥
समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मनवचतन कीनो प्रारम्भ॥

कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ॥ ४ ॥
शत आठ जु इम भेदनतैं, अघ कीने परछेदनतैं ॥
तिनकी कहुं कहँलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके ॥
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ॥
या विध मिथ्यात भ्रमायो, चहुंगतिमधि दोष उपायो ॥ ७ ॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासौं दृगजोरी ॥
आरम्भपरिग्रहभीनो, पन पाप जु याविधि कीनो ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको, दृग कान विषय सेवनको ॥
बहु कर्म किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥ ९ ॥
फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये ॥
नहिं अष्ट मूलगुणधारे, सेये जु विसन दुखकारे ॥ १० ॥
दुइ बीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये ॥
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों कर उदर भरायो ॥ ११ ॥
अनंतान जु बंधी जानो, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानो ॥
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये ॥ १२ ॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संजोग ॥
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥
निद्रावश शयन करायो, सुपनेमधि दोष लगायो ॥
फिर जाग विषयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥ १४ ॥
आहार निहार विहारा, इनमें नहिं यतन विचारा ॥
विन देखा धरा उठाया, विन शोधा भोजन खाया ॥ १५

तब ही परमाद सतायो, बहुविध विकलप उपजायो ॥
कछु सुधि बुधि नांहि रही है, मिथ्यामति छाय गई है ॥ १६ ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहूमैं दोष जु कीनी ॥
भिन भिन अब कैसैं कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब लहिये ॥ १७ ॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवनराशि विराधी ॥
थावरकी जतन न कीनी, उरमैं करुणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई ।
विन गाल्यो पुन जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो ॥ १९ ॥
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ॥
या मधि जीवनिके खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥ २० ॥
हा परमादवसाई, विन देखे अगनि जलाई ॥
तामध्य जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बींधो अन राति पिसायो, ईंधन विन सोध्य जलायो ॥
झाडू ले जागां बुहारी, चिंटियादिक जीव विदारी ॥२२॥
जल छान जीवानी कीनी सोहु पुनि डारि जु दीनी ॥
नहिं जलथानक पहुंचाई किरिया विन पाप उपाई ॥२३॥
जल मल मोरिनमें गिरायो, कृमि कुल बहु घात करायो ॥
नदियनि बिच चीर धुवाये कोसनके जीव मराये ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई तामैं जु जीव निसराई ।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे बहु आरंभ हिंसा साजे ॥
किये अघ तृसनावश भारी, करुना नाहिं रच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्रीभगवंता ॥

संतति चिरकाल उपाई, बानीतैं कहिय न जाई ॥२७॥
ताको जु उदय जब आयो, नानाविध मोहि सतायो ॥
फल भुंजत जो दुख पाउं, वचैंत कैसैं करि गाउं ॥२८॥
तुम जानत केवल ज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी ॥
हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥
जो गांवपति इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै ॥
तुम तीन भुवनके स्वामी, दुख मेटो अंतरजामी ॥३०॥
द्रौपदिको चीर बढ़ायो, सीताप्रति कमल रचायो ॥
अंजनसे किये अकामी; दुख मेटो अंतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो ॥
सब दोष राहित करि स्वामी, दुख मेंटहु अंतरजामी ॥३२॥
इंद्रादिक पद नाहिं चाहूं, विषयनिमें नाहिं लुभाउं ॥
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ॥३३॥

दोहा-दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवनकोसुख बढ़े, आनँद मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारंखी, जौंहरी आप जिनंद।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन सरन आँनंद ॥३५॥

इति आलोचना पाठ समाप्त ॥

स्वर्गीय कविवर पं० रूपचंद्रजी पांडेकृत-

[४] पंचकल्याणक पाठ ।

श्री गर्भकल्याणक ।

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनशासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
शारद अरु गुरु गौतम, सुमतिप्रकासनो ।
मंगलकर चउ-संघहिं पापपणासनो ॥
पापै पणासन गुणहिं गरुवा दोष अष्टादश रहे ।
धरि ध्यान कर्म विनाशि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहे ।
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोक्यनाथ सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१॥

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान प्रमाण सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह योजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अती वनी ॥
अति वनी पोरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहिएं ।
नर नारि सुंदर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहिएं ॥
तहां जनकगृह छह मास प्रथमहिं, रतनधारा बरपियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरषियो ॥२॥

सुरकुंजरसम कुंजर धवल धुरंधरो ।
केहरि केशरशोभित, नखशिखसुंदरो ॥
कमलाकलशन्हवन, दोय दाम सुहावनी ।

रवि शशि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
पावन कनक घटयुगम पूरण, कमलकलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमरविमान फणिपती,—भवन भुवि छविछाजए ।
रुचि रतनराशि दिपंत दहन सु, तेजपुंज विराजए ॥ ३ ॥
ये सखि सोलह स्वप्ने, सुती सयनमें ।
देखे माय मनोहर, पच्छिम—रयनमें ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहिं भासियो ॥
भासियो फल तिहिं चिंति दंपति, परम आनंदित भए ।
छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रयन दिन सुखसूं गए ॥
गर्भावतार महंत महिमा सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ ४ ॥

श्री जनम कल्याणक.

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहूँलोक भयो छोभित, सुरगण भरमियो ॥
कल्पवासिघर घंट, अनाहद वज्जियो ॥
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो ॥
गज्जियो सहजहिं संख भावन,—भवन सबद सुहावने ।
व्यंतरनिलय पटु पटहि वज्जिय कहत महिमा क्यौं बनें ॥
कंपित सुरासन अवधिबल तब जनम जिनको जानियो ।
धनराज तब गजराज माया—मयी निरमय आनियो ॥ १ ॥

योजन लाख गयंद वदन-सौ निरमए ।
वदन वदन वसुदंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ-पणवीस कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं ॥
राजहीं कमलिनि कमल अठोतर,-सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककंकण वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये ॥
घन घंट चँवर धुजा पताका देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ।
तिहिं करि हरि चढ़ि आयो, सुरपरिवारियो ।
पुरहिं प्रदच्छन देत सु, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिंद्रा रची ।
मायामयी शिशु राखि तौ, जिन आन्यो सची ।
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृप्ति न हूजिये ।
तब परमहरषितहृदय हरिने, सहस लोचन पूजिये ॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनए ।
ईशानइंद्र सु चंद्रछवि शिर, छत्र प्रभुके दीनए ॥ ७ ॥
सनतकुमार महेंद्र, चमर दुहि ढारहीं ।
शेष शक्र जयकार, सबद उचारहीं ॥
उच्छवसहित चतुर्विधि, सुर हरषित भए ।
योजन सहस निन्याणवे, गगन उलंघि गए ॥
लंघि गये सुरगिरि जहाँ पांडुक,-वन विचित्र विराजहीं ।
पांडुकशिला तहाँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
योजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गणी ।

वर अष्ट मंगल कनक कलशानि, सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥

रचि मणिमंडप शोभित मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव-मुख तहाँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुर, धुनि, और जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं सचीं सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ॥
कर करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर-जल जु हाथहिं, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ऐशानइंद्र सु, कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥९॥

वदन-उदर-अवगाह, कलशगत जानिये।
एक चार वसु योजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलशा, प्रभुके सिर ढरै।
फुनि श्रृंगारप्रमुख आ,-चार सबै करै ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि फुनि मातहिं दयो।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१०॥

श्री तप कल्याणक।

श्रमजलरहित शरीर, सदा सब मलरहिउ।
छीर-वरन वर रुधिरं, प्रथमआकृति लहिउ ॥
प्रथम सारसंहनन, सुरूप विराजहीं।
सहज-सुगंध सुलच्छन,-मंडित छाजहीं ॥

छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन, रुचित उचित जु नित नये ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये ॥ ११ ॥

भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चिंतए ।
धन यौवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्त ए ॥
कोई न शरन मरनदिन, दुख चहुंगति भर्यो ।
सुख दुख एकहि भोगत; जिय विधिवश पर्यो ॥

पर्यो विधि वश आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो ।
तन अशुचिपरतैं होय आस्रव, परिहरो सो संवरो ॥
निर्जरा तपबल होय समकित,-विन सदा त्रिभुवन भ्रम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥ १२ ॥

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल शिरनाइया ।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुति करि, तिन समुझाइया ॥

समुझाय प्रभु ते गये निजपद, फुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र शिविका, कर सुनंदन वन लियो ।
तहँ पंचमुष्टि लोच कीनों, प्रथम सिद्धहिं नुति करी ।
मंडित महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिग्रह परिहरि ॥ १३ ॥

मणिमयभाजन केश परिट्ठिय सुरपती ।
छीर-समुद्र-जल खिपिकरि, गयो अमरावती ॥

तप संजमबल प्रभुको, मनपर्जय भयो।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो॥
गयो कछु तहँ काल तपबल, रिद्धि वसुविधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यानबलेन खयगये, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया॥
खिपि सातवें गुण-जतन विन-तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि चढ़े।
करि करण तीन प्रथम शुकलबल, खिपकश्रेणी प्रभु चढ़े॥१४॥
प्रकृति छतीस नवें गुण,- थान विनासिया।
दशमें सूच्छमलोभ -प्रकृति तहं नासिया।
शुकल ध्यान पद दूजो, फुनि प्रभु पूरियो,।
बारहमें-गुण सोलह, प्रकृति जु चूरियो॥
चूरियो त्रेसठि प्रकृति इहविधि, घातिया कर्महंतणी।
तप कियो ध्यानप्रयत बारह, विधि त्रिलोकशिरोमणी॥
निःक्रमणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥१५॥

श्रीज्ञान कल्याणक।

तेहरमें गुण-थान, सयोगि जिनेसुरो।
अनंतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो।
आगम युक्ति प्रमाण, गगनतल परिठयो॥
परिठयो चित्रविचित्र मणिमय, सभामंडप सोहये।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, वनक सुरनर मोहये॥
मुनि कल्पवासिनि अरजिका फुनि, ज्योति-भौम-भवन-तिया

फुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पशुनि कोठे बैठिया ॥१६॥
मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां बने।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने॥
तीन छत्र सिर शोभित. त्रिभुवन मोहए।
अंतरीक्ष कमलासन प्रभु तन सोहए॥
सोहए चौसठि चमर ढरत, अशोकतरु तल छाजए।
फुनि दिव्यधुनि प्रतिशबद जुत तहँ, देवदुंदुभि वाजए॥
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि लाजए।
इम अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए॥१७॥
दुइसै योजन मान सुभिच्छ चहूं दिशी।
गगन गमन अरु प्राणि,—वध नाहिं अहनिशी॥
निरुपसर्ग निराहार. सदा जगदीशए।
आनन चार चहूंदिशि, शोभित दीसए॥
दास अशेष विशेष विद्या, विभव वर ईसुरपनो।
छायाविवर्जित शुद्ध फटिक, समान तन प्रभुको बनो॥
नहिं नयन पलक पतन कदाचित् केश नख सम छाजहीं।
ये घातियाक्षयजनित अतिशय, दश विचित्र विराजहीं॥१८॥
सकल अरधमागधि. भाषा जानिये।
सकल जीवगत मैत्री,—भाव बखानिये॥
सकल ऋतुज फलफूल, वनस्पति मन हरै।
दर्पणसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै॥
अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता
योजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुत देवता

फुनि करहिं मेघकुमार गंधो-दक सुवृष्टि सुहावनी।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमल सु. धरणि शशिशोभा बनी॥
अमल गगन तल अरु दिशि तहँ अनुहारहीं।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं॥
धर्मचक्र चले आगे, रवि जहँ लाजहीं
फुनि शृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय. देवरचित सुहावने।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा वने॥
तब इंद्र आनि कियो महोच्छव सभा शोभित अति बनी॥
धर्मोपदेश कियो तहां, उच्छरिय वानी जिनतनी॥ ०॥
क्षुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने॥
रोग शोक भय विस्मय, अरु निद्रा घणी।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गणी॥
गणीये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरंजनो।
नव परमकेवललब्धिमंडित, शिवरमणी-मनरंजनो॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥ २१॥

श्री निर्वाणकल्याणक।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो।
भविजनप्रति उपदेश्यो, जिनवर तारिसो॥
भवभयभीत महाजन शरणै आइया।

रत्नत्रयलच्छंन शिवपंथनि लाइयां ॥
लाइया पंथ जु भव्य फुनि, प्रभु तृतिय शुकल जु पूरियो।
तजि तेरहैं गुणथान योग, अयोगपथपग धारियो ॥
फुनि चौदहैं चौथे सुकलबल, बहुत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगती ॥१२॥

लोकशिखर तनुवात,—वलयमहं संठियो।
धर्मद्रव्यविन गमन न, जिहिं आगे कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसों।
किमपि हीन निजतनुतें, भयौ प्रभु तारिसों ॥
तारिसों पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय क्षणक्षयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण विवहार, नय वसु गुणमयी।
वस्तु स्वभाव विभावविरहित, शुद्ध परणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्ध परमातम भयो ॥ २१ ॥

तनपरमाणु दामिनिवत् सब खिर गये।
रहे शेष नखकेशरूप, जे परिणये ॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभ सच्यो।
मायामई नखकेशरहित, जिनतन रच्यो ॥
रचि अगर चंदनप्रमुख परिमल द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित् अगनिकुमारमुकुटानल, सुविधि संस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन रूपचंद्र सुदेव जिनवर, जगत् मंगल गावहीं ॥२४॥

मंगल गीत।

मैं मतिहीन भक्तिवश, भावन भाइया।

मंगलगीतप्रबंध सु, जिनगुण गाइया ॥

जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं ।

मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥

पावहीं अष्टौ सिद्धि नवनिधि, मनप्रतीति जु आनहीं ।

भ्रमभाव छूटैं सकल मनके, जिनस्वरूप सो जानहीं ॥

पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होय मंगल नित नये ।

भणि रूपचन्द्र त्रिलोकपति जिन–देव चउसंघहिं जये ॥१५॥

(५) निर्वाणकाण्ड (गाथा)

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो । उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥२॥ वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे । आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥३॥ णेमिसामि पज्जण्णो संवुकुमारो तहेव अणिरुद्धो । बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥४॥ रामसुवा वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ । पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥५॥ पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ। सेत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥ संते जे वलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्टकोडीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो । णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे॥८॥ णंगाणंगकुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया ।सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया

णमो तेसिं ॥९॥ दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचहमुणिवरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं॥ १०॥ रेवाणइए तीरे पश्चि-ममायम्मि सिद्धवरकूडे। दो चक्की दह कप्पे आहुट्टयकोडिणिव्वुदे वंदे ॥११॥ वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे। इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं। १२। पावागिरिवरसिहरे, सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो। चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥ फलहोडीवरगामे पश्चिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे। गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं॥१४॥ णायकुमारमुणिंदो वाल महावालि चेव अज्झेया। अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५। अच्चलपुरवरणयरे ईसाणे भाए मेढगिरिसिहरे। आहुट्टयकोडिओ णिव्वाणगया णमो तेसिं॥१६॥ वंसत्थलवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे। कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं। १७॥ जसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कालिंगदेसम्मि। कोडिसिलाकोडिमुणि णिव्वाणगया णमो तेसिं।१८॥ पासस्स सम-वसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच। रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वा-णगया णमो तेसिं॥ १९॥

अथ अइसयखेत्तकंडं—अतिशयक्षेत्रकाण्डम् ।

पासं तह अहिणंदणं णायद्दहि मगलाउरे वंदे।
अस्सारम्मे पट्टाणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥१॥
वाहुवलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरं वंदे।
संती कुंथव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ॥२॥
महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि।

जंबुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंबुवणगहणे ॥३॥
पंचकल्लाणठाणइं जाणवि संजादमच्चलोयम्मि ।
मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमंस्सामि ॥४॥
अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे ।
पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥५॥
गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चतं ।
देवा कुणंति वुट्टी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥६॥
णिव्वाणठाग जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया ।
संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमंस्सामि ॥७॥
जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकडंपि भावसुद्धीए ।
भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥८॥

इति अइसइखित्तकंडं ।

निर्वाणकांड (भाषा)

(कविवर भैया भगवतीदासजीरचित)

दोहा–वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई–अष्टापदआदीसुरस्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि । नेमिनाथस्वामी गिरनार । वंदौं भावभगति उरधार ॥ १ ॥ चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस । भावसहित वंदौं जगदीस ॥२॥ वरदत्तरायरु इन्द्र मुनिंद, सायरदत्त आदि गुणवृंद । नगरतारवर मुनि उठकोड़ि । वंदौं

भावसहित करजोड़ि ॥४॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात। कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात॥ संबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय। अनिरुद्धआदि नमूं तसु पाय॥५॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर। लाड़नरिंद आदि गुणधीर॥ पांच कोड़ि मुनि मुक्तिमझार। पावागिरि वंदौं निरधार॥६॥ पांडव तीन द्रविड राजान आठकोड़ि मुनि मुकति पयान॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस। भावसहित वंदौं निश दीस॥७॥ जे बलिभद्र मुकतिमें गये। आठकोड़ि मुनि औरहिं भये। श्रीगजपंथशिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुं काल॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील। गवगवाख्य नील महांनील। कोड़ि निन्याणवें मुक्तिपयान तुंगीगिरी वंदौं धरि ध्यान॥९॥ नंग अनंग कुमार सुजान। पंचकोड़ि अरु अर्धप्रमान॥ मुक्ति गये सोनागिर शीस। ते वंदौं त्रिभुवनपति ईश॥१०॥ रावणके सुत आदि कुमार। मुक्त गये रेवातट सार॥ कोड़ि पंच अरु लाख पचास। ते वंदौं धर परम हुलास॥११॥ रेवानदी सिद्धवरकूट। पश्चिमदिशा देह जहँ छूट॥ द्वै चक्री दश कामकुमार। ऊठकोड़ि वंदौं भवपार॥१२॥ बड़वाणी बडनयर सुचंग। दक्षिण दिश गिरिचूल उतग॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण। ते वंदौं भवसायरतर्ण॥१३॥ सुवरणभद्रआदि मुनि चार। पावागिरिवर शिखरमंझार॥ चलना नदी तीरके पास। मुक्ति गये वंदौं नित तास॥१४॥ फलहोडी बड़गाम अनूप। पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ। मुक्ति गये वंदौं नित तहाँ॥१५॥ बाल महाबाल मुनि दोय। नागकुमार मिले त्रय होय॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमंझार। ते वंदौं नित सुरतसँभार॥१६॥ अचलापुरकी दिश

ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढ़ेतीन कोडि मुनिराय॥ तिनके चरन नमूं चित्त लाय ॥१७॥ वंशस्थल बनके ढिग होय॥ पश्चिमादिशा कुंथगिरि सोय ॥ कुलभूषण देशभूषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे । देशकलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटिशिला मुनि कोटिप्रमान । वंदन करूं जोर जुगपान ॥१९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद । रेसंदीगिरि नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदौं नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहाँ । नितप्रति वंदन कीजे तहाँ ॥ मन वच कायसहित सिरनाय । वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥२१॥ संवत सतरहसौ इकताल । अश्विनसुदि दशमी सुविशाल ॥ "भैया" वंदन करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥२२॥

इति निर्वाणकांड भाषा ।

श्रीनिर्वाणकांडका भावार्थ ।

श्री आदिनाथ भगवान् , कैलाश पर्वतपरसे मोक्षको पधारे हैं । श्री वासुपूज्य स्वामी चंपापुरसे मोक्ष गये हैं श्री नेमिनाथ स्वामी गिरिनार पर्वत से मोक्ष गये हैं । श्री महावीर स्वामी पावांपुर से मोक्ष गये हैं । इन चार तीर्थंकरों के सिवाय शेष वर्तमान बीस तीर्थंकर श्री सम्मेदशिखरजी से मोक्ष को पधारे हैं ॥ १,२ ॥

श्रीतारंगाजी से वरदत्त, वरंगदत्त और सागरदत्त आदि सांढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ॥ ३ ॥ श्री गिरिनार पर्वत से (श्री नेमिनाथ स्वामी के सिवाय) शंवुकुमार, प्रदुम्न कुमार

ये दोनों भाई और अनिरुद्ध आदि बहत्तर करोड़ सातसौ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ४ ।। पावागढजीसे रामचन्द्रजीके दो पुत्र और लाड़ देशके राजा आदि पांच करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ५ । श्री शत्रुंजय पर्वत से तीन पांडव¹ द्रविड देश के राजा आदि आठ करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ६ । श्री गज-पंथाजीसे सात बलिभद्र जादवनरेन्द्र आदि आठ करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ७ ।। मांगीतुंगीगिरिजीसे रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव, सुडील, गवय, गवाक्ष, नील, महानील कुमार, आदि निन्यानवे करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ८ ।। सोनागिरिजीसे नंगकुमार अनंग कुमार आदि साढ़े पांच करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ९ ।। नर्मदा नदीके किनारे से रावण के पुत्र आद पांच करोड़ पचास लाख मुनि मोक्ष गये हैं ।। १० ।। नर्मदा नदीसे पश्चिमकी तरफ सिद्धवर कूटसे दो चक्रवर्ती, दश कामदेव आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। ११ ।। बड़वानी श्री से इन्द्रजीत और कुंभकर्ण मुनि मोक्ष गये हैं ।। १२ ।। पावागिरिसे सुवर्णभद्र आदि चार मुनि मोक्ष गये हैं ।। १३ ।। द्रोणगिरिजासे गुरुदत्त आदि मुनि गये हैं ।। १४ ।। कैलाश-गिरिसे बाल महाबाल और नागकुमार मुनि मोक्ष गये हैं ।।१५।। मुक्तागिरजी से साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं ।। १६ ।। कुंथलगिरिजी से कुलभूषण और देशभूषण मुनि मोक्ष गये हैं ।।१७।। दक्षिण दिशामें कोटिशिलासे जसधर राजाके पांचसौ पुत्र आदि

1—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ।

एक करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं॥ १८॥ श्रीरेसंदीगिर (नयनागिर) जीसे वरदत्त आदि पांच मुनि मोक्ष गये हैं ॥ १९ ॥ मथुराजी से जम्बूस्वामी पांचवें कालके अंतिम केवली मोक्ष गये हैं ।।२०॥ इन सब मोक्ष गामी जीवों और निर्वाणक्षेत्रोंकी मैं त्रिकाल वन्दना करता हूं ॥

(६) श्री दर्शन पच्चीसी।

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज।
कहा चक्रवति संपदा, कहा स्वर्ग साम्राज ॥ १ ॥
तुम वंदत जिन देवजी, नित नव मंगल होय।
विघ्न कोटि तत्क्षण टरें, लहहिं सुयश सब लोय ॥ २ ॥
तुम जाने बिन नाथजी, एक स्वांसके मांहि।
जन्म मरण अठारा किये, साता पाई नांहि ॥ ३ ॥
आन देव पूजत लहे, दुःख नरकके बीच।
भूख प्यास पशुगत सही, करो निरादर नीच ॥ ४ ॥
नाम उचारत सुख लहे, दर्शनसे अघ जाय।
पूजत पावे देव पद, ऐसे हैं जिनराय ॥ ५ ॥
बंदत हूं जिनराज मैं, धर उर समताभाव।
तन धन जन जग-जालसे, धर विरागता भाव ॥ ६ ॥
सुनो अरज हे नाथ जी, त्रिभुवनके आधार।
दुष्ट कर्मका नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥ ७ ॥
याचत हूं मैं आपसे, मेरे जियके मांहि।
राग द्वेषकी कल्पना, क्यों हूं उपजे नांहि ॥ ८ ॥

अति अद्भुन प्रभुता लखी, वीतरागता मांहि।
विमुख होंहि ते दुख लहैं, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥९॥
कलमल कोटिक न रहैं, निरखत ही जिन देव।
ज्यों रवि ऊगत जगतमें, हरै तिमर स्वयमेव ॥ १० ॥
परमाणू पुद्गल तणी, परमातम संयोग।
भई पूज्य सब लोकम, हरे जन्मका रोग ॥ ११ ॥
कोटि जन्ममें कर्म जो, बांधे हते अनन्त।
ते तुम छवि विलोकितें, छिनमें हो है अंत ॥ १२ ॥
आन नृपति किरपा करे, तव कछु दे धन धान।
तुम प्रभु अपने भक्तको, करलो आप समान ॥ १३ ॥
यंत्र मंत्रं मणि औषधी, विषहर राखत प्राण।
त्यों जिन छवि सव भ्रम हरे, करै सर्व प्राधान ॥ १४ ॥
त्रिभुवनपति हो ताहि तें छत्र विराजे तीन।
अमरा नाग नरेश पद, रहे चरण आधीन ॥ १५ ॥
अब निरखत भव आपने, तुव भामंडल बीच।
भ्रम मेटे समता गहे, नाहिं लहे गति नीच ॥ १६ ॥
दोई ओर ढोरत अमर, चौसठ चमर सफेद।
निरखत भविजनका हरे, भव अनेक का खेद ॥ १७ ॥
तरु अशोक तुव हरत है, भवि जीवनका शोक।
आकुलता कुल मेटिके, करै निराकुल लोक ॥ १८ ॥
अन्तर बाहिर परिग्रह, त्यागो सकल समाज।
सिंहासन पर रहत हैं, अंतरीक्ष जिनराज ॥ १९ ॥
जीत भई रिपु मोह तैं, यश सूचत है तास।

देव दुंदुभिके सदा, बाजे बजे अकाश ॥ १० ॥
विन अक्षर इच्छा रहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय ।
सुन नर पशु समझें सबै, संशय रहे न कोय ॥ ११ ॥
वरसत सुर तरुके कुसुम, गुंजत अलि चहुंओर ।
फैलत सुयश सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥ १२ ॥
समुंद वाघ अरु रोग अहि, अर्गल बंधु संग्राम ।
विघ्न विषम सब ही टरै, सुमरत ही जिन नाम ॥ १३ ॥
श्रीपाल चंडाल पुनि, अंजन भील कुमार ।
हाथी हरि अहि सब तरे, आज हमारी वार ॥ १४ ॥
बुधजन यह विनती करै, हाथ जोड़ शिर नाय ।
जबलों शिव नहिं रहे तुव, भक्ति हृदय अधिकाय ॥ १५ ॥

वीतराग सर्वज्ञ अरु, हितोपदेशक नाथ ।
दोष नहीं छयालीस प्रभु, तुम्हें नमाऊं माथ ॥ १ ॥

दीन दयाल दयानिधि स्वामिन् भक्तिनिको दुखहारि तुही है। तू सब ज्ञायक लोक अलोकरु ज्ञान प्रकाशनहार तुही है ॥ तू भविकंज विकाशन भानु भवोदधि तारनहार तुही है। "मूल" तुही शिव मारग साधन आपति नाशनहार तुही है ॥२

कवित्त–जीवन अनित्य अरु लक्ष्मी है चंचल रु यौवन अथिर एक छिनमें विलायगो । याहि पाय रे अज्ञान करै काहे अभिमान धर्म हिय धार नहिं सर्व व्यर्थ जायगो ॥ कर कछु उपकार जगतमें येही सार मौका यह बार बार हाथ नहिं आयगो । प्रेम हिय धार अरु सत्यका प्रचार कर दया "मूल" धार नहिं पीछे पछतायगो ॥

(७) अकलंक स्तोत्र ।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम् ।
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि ॥
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो ।
नालं यत्पदलङ्घनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥१॥
दग्धं येन पुर त्रयं शरभुवा तीव्रार्चिषा वन्हिना ।
यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः ॥
सोऽयं किं मम शङ्करो भयतृषारोषार्त्तिमोहक्षयं ।
कृत्वा यः स तु सर्व वित्तनुभृतां क्षेमंकरः शङ्करः ॥२॥
यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्रवक्षःस्थलम् ।
सारथ्येन धनञ्जयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान् ॥
नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतम् ।
विश्वं व्याप्य विजृम्भते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥३॥
उर्वश्यामुदपादि रागवहुलं चेतो यदीयं पुनः ।
पात्रीदण्डकमण्डलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिम् ॥
आविर्भावयितुं भवन्ति स कथं ब्रह्मा भवेन्मादृशाम् ।
क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तु नः ॥ ४ ॥
यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन् ।
कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथम् ॥
यज्ज्ञानं क्षणवर्त्ति वस्तु सकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा ।
यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्स बुद्धो मम ॥ ५ ॥
किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् ।

नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्रोजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं ।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥

ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेश विभ्रान्तचेताः ।
शम्भुः खट्वाङ्गधारी गिरिपतितनया पांगलीलानुविद्धः ॥
विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहा-
दर्हन्विध्वंस्तरागो जितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥ ७ ॥

एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुंभां चक्रे सहस्रं भुजा-
नेकः शेषभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते ॥
दृष्टुं चारु तिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्रता-
मेते मुक्तिपथं वदन्ति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम् ॥ ८ ॥

यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा-
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं-
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥९॥

माया नास्ति जटाकपालमुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली ।
खट्वाङ्गं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं ॥
कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः ।
सोऽस्मान्पातुनिरंजनो जिनपतिः सर्वत्रसूक्ष्मः शिवः ॥१०॥

नो ब्रह्मांकित भूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्राङ्कितं ।
नो चन्द्रार्ककराङ्कितं सुरपतेर्वज्राङ्कितं नैव च ॥
षड्वक्राङ्कित बौद्धदेवं हतभुग्यक्षोरगैर्नाङ्कितं ।
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितं ॥ ११ ॥

(७) अकलंक स्तोत्र ।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम् ।
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि ॥
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो ।
नालं यत्पदलङ्घनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥१॥
दग्धं येन पुर त्रयं शरभुवा तीव्रार्चिषा वन्हिना ।
यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्मात्मजो वा गुहः ॥
सोऽयं किं मम शङ्करो भयतृषारोषार्त्तिमोहक्षयं ।
कृत्वा यः स तु सर्व वित्तनुभृतां क्षेमंकरः शङ्करः ॥२॥
यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्रवक्षःस्थलम् ।
सारथ्येन धनञ्जयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान् ॥
नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतम् ।
विश्वं व्याप्य विजृम्भते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥३॥
उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः ।
पात्रीदण्डकमण्डलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिम् ॥
आविर्भावयितुं भवन्ति स कथं ब्रह्मा भवेन्मादृशाम् ।
क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तु नः ॥ ४ ॥
यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन् ।
कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथम् ॥
यज्ज्ञानं क्षणवर्त्ति वस्तु सकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा ।
यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्स बुद्धो मम ॥ ५ ॥
ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् ।

नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं ।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥
ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेश विभ्रान्तचेताः ।
शम्भुः खट्वाङ्गधारी गिरिपतितनया पांगलीलानुविद्धः ॥
विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहा-
दर्हन्विध्वंस्तरागो जितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥ ७ ॥
एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां चक्रे सहस्रं भुजा-
नेकः शेषभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते ॥
द्रष्टुं चारु तिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्रता-
मेते मुक्तिपथं वदन्ति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम् ॥ ८ ॥
यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा-
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषाद्विषंतं-
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥९॥
माया नास्ति जटाकपालमुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली ।
खट्वाङ्गं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं ॥
कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः ।
सोऽस्मान्पातुनिरंजनो जिनपतिः सर्वत्रसूक्ष्मः शिवः ॥१०॥
नो ब्रह्मांकित भूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्राङ्कितं ।
नो चन्द्रार्ककराङ्कितं सुरपतेर्वज्राङ्कितं नैव च ॥
षड्वक्राङ्कित बौद्धदेव हतभुग्यक्षोरगैर्नाङ्कितं ।
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितं ॥ ११ ॥

मौञ्जीदण्डकमण्डलुप्रभृतयो नो लाञ्छनं ब्रह्मणो ।
रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कोपीन खट्वांगनाः ॥
विष्णोश्चक्रगदादिशङ्खमतुलं बुद्धस्य रक्ताम्बरं ।
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम् ॥ १२ ॥
नाहङ्कारवशी कृतेन मनसा ना द्वेषिणा केवलं,
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो,
बौद्धौघान्सकलान्विजित्य स घटः पादेन विस्फालितः ॥१३॥
खट्वाङ्गं नैव हस्ते न च हृदि रचितालम्बते मुण्डमाला,
भस्माङ्गं नैवशूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं ।
चन्द्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कण्ठे फणीन्द्रः,
तं वन्दे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं ॥ १४ ॥
किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोऽकलङ्कः कलौ,
काले यो जनतासुधर्म निहितो देवोऽकलङ्को जिनः ।
यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरी जालेऽप्रमेयाकुला,
निर्मग्ना तनुतेतरां भगवती ताराशिरः कम्पनम् ॥ १५ ॥
सा तारा खलु देवता भगवती मन्यापि मन्यामहे,
षण्मासावधि जाड्य सांख्य भगवद्भट्टाकलंकप्रभोः ।
वा कल्लोल परम्पराभिरमते नूनं मनो मज्जन
व्यापारं सहतेस्म विस्मितमतिः सन्ताडितेतस्ततः ॥ १६ ॥

॥ इति श्री अकलङ्कस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥

श्रीकविवरभागचन्द्रजीकृत—

[८] महावीराष्टकस्तोत्र ।

(पं० बुद्धूलालजीकृत भाषा छन्द सहित)

यदीये चैतन्ये, मुकुर इव भावाश्चिदचितः ।
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः ॥
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

चेतन अचेतन तत्त्व जेते, हैं अनन्त जहानमें ।
उत्पाद व्यय ध्रुवमय मुकुरवत्, लसत जाके ज्ञानमें ॥
जो जगतदरशी जगतमें सन्—मार्ग दर्शक रवि मनो ।
ते वीर स्वामीजी हमारे नयनपथगामी बनो ॥ १ ॥

अताम्रं यच्चक्षुः, कमलयुगलं स्पंदरहितं ।
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥
स्फुटं मूर्त्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

टिमिकार विन जुग कमल लोचन, लालिमातें रहित हैं ।
बाह्य अंतरकी क्षमाको, भविजनोंसे कहत हैं ॥
अति परम पावन शांति मुद्रा, जासु तन उज्ज्वल घनो ।
ते वीरस्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥ २ ॥

नमन्नाकेंद्रालीमुकुटमणिभाजालजटिलं ।
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां ॥
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥३॥

जिहि स्वर्गवासी विपुल सुरपति, नम्रतन ह्वै नमत हैं।
तिन मुकुटमणिके प्रभामंडल, पद्मपदमें लसत हैं॥
जिन मात्र सुमरनरूप जलसे, हनै भव आतप घनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो॥ ३॥

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह।
क्षणादासीत्स्वर्गी, गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः॥
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा?
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ४

मन मुदित ह्वै मंडूकने, प्रभु–पूजवे मनशाकरी।
तत् छन लही सुर संपदा, बहु रिद्धि गुण निधिसौं भरी॥
जिहि भक्तिसों सद्भक्त जन लहैं, मुक्तिपुरको सुख घनो।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो॥ ४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो।
विचित्रात्माप्येको, नृपतिवरसिद्धार्थतनयः॥
अजन्मापि श्रीमान्, विगतभवरागोद्भुतगतिर्।
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः)॥५

कंचन तपतवत ज्ञाननिधि हैं, तदपि तनवर्जित रहैं।
जो हैं अनेक तथापि इक, सिद्धार्थसुत भवरहित हैं॥
जो वीतरागी गति रहित हैं, तदपि अदभुत गतिपनो।
ते वीरस्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो॥ ५॥

यदीया वाग्गंगा, विविधनयकल्लोलविमला।
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति॥

१ कमलस्वरूपी चरणोंमें।

इदानीमप्येषा, बुधजनमरालैः परिचिता ।
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६

जिनकी वचन मय अमल सुर सारि, विविधनय लहरैं धरै ।
जो पूर्णज्ञान स्वरूप जलसे, नहन भविजनको करै ॥
तामें अनौं लगि घने पंडित, हंसही सोहत मनो ।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥ ६ ॥

अनिर्वारोद्रेकास्त्रिभुवनजयी कामसुभटः ।
कुमारावस्थाया-मपि निजबलाद्येन विजितः ॥
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिनः ।
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥७॥

जाने जगतकी जंतु जानिता, करी स्ववश तमाम है ।
है वेग जाको अमिट ऐसो, विकट अतिभट काम है ॥
ताकों स्वबलसे प्रौढवयमें, शान्ति शासन हित हनो ।
ते वीरस्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥ ७ ॥

महामोहातङ्क-प्रशमनपराकस्मिकभिषग् ।
निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमामङ्गलकरः ॥
शरण्यः साधूनाम्, भवभयभृतामुत्तमगुणो ।
महावीरस्वामी, नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥

भयभीत भवतैं साधु जनकों, शरण उत्तम गुण भरे ।
निःस्वार्थके ही जगत बांधव, विदितयश मंगल करे ॥
जो मोहरूपी रोग हनिवे, वैद्यवर अद्भुत मनो ।
ते वीर स्वामीजी हमारे, नयनपथगामी बनो ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिं ॥

दोहा–महावीर अष्टक रच्यो, भागचन्द रुचि ठान।
पढ़ैं सुनैं जे भावसों, ते पावें निरवान ॥

प्रार्थना–भागचन्द पंडित महा, कियो ग्रन्थ गंभीर।
मैं मतिमितै[1] भाषा करी, शोधो सुधी सुधीर ॥ १ ॥

श्रीयुत् पंडित दौलतरामजी कृत–

(९) छहढाला।

सोरठा–तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकै ॥

प्रथमढाल। चौपाई छन्द १५ मात्रा।

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त। सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार। कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥१॥
ताहि सुना भवि मन थिर आन। जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महा मद पियो अनादि। भूल आपको भरमत वादि ॥२॥
तास भ्रमणकी है बहु कथा। पै कछु कहूं कही मुनि यथा ॥
काल अनन्त निगोद मँझार। बीतो एकेन्द्री तन धार ॥३॥
एक श्वासमें अठदशवार। जन्मो मरो भरो दुख भार ॥
निकस भूमि जल पावक भयो। पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी। त्यों पर्याय लही त्रस तणी ॥

---

१ मति माफिक।

लट पिपील अलि आदि शरीर। धरधर मरो सही बहुपीर ॥५॥
कबहूँ पंचेंद्रिय पशु भयो। मन बिन निपट अज्ञानी थयो॥
सिंहादिक सेनी है क्रूर। निबल पशू हत खाए भूर ॥६॥
कबहूँ आप भयो बलहीन। सबलनकर खायो अति दीन॥
छेदन भेदन भूख प्यास। भार वहन हिम आतप त्रास ॥७॥
वध बंधन आदिक दुख घनैं। कोट जीभकर जात न भनैं॥
अतिसंक्लेश भावतें मरो। घोर श्वभ्र सागरमें परो॥ ८॥
तहाँ भूमि परसत दुख इसो। वीछू सहस डसे नहिं तिसो॥
तहाँ राध श्रोणित वाहिनी। कृमि कुल कलित देह दाहिनी॥९॥
सेमरतरु जुत दल असिपत्र। असि ज्यों देह विदारें तत्र॥
मेरुसमान लोह गलिजाय। ऐसी शीत उष्णता थाय॥ १०॥
तिल तिल करें देहके खंड। असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचंड॥
सिंधु नीरतें प्यास न जाय। तो पण एक न बूंद लहाय॥११॥
तीन लोकको नाज जो खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय॥
ये दुख बहु सागरलों सहै। कर्मयोगतें नरगति लहै॥ १२॥
जननी उदर वसो नवमास, अंग सकुचतें पाई त्रास॥
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर॥१३॥
बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणी रत रह्यो॥
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो। कैसे रूपलखै आपनो॥ १४॥
कभी अकामनिर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुर-तन धरै॥
विषय-चाह-दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुःख सह्यो॥१५॥
जो विमानवासी हू थाय। सम्यक्‌दर्शनबिन दुख पाय॥
तहँते चय थावर तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै॥ १६॥

द्वितीय ढाल–पद्धरी छंद १५ मात्रा।

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण। वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मर्ण॥
तातैं इनको तजिये सुजान। सुन तिन संक्षेप कहूं बखान॥१॥
जीवादि प्रयोजनभूततत्व। सरधै तिन मांहिं विपर्ययत्व॥
चेतनको है उपयोग रूप। विन मूरति चिन्मूरति अनूप॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीवचाल॥
ताकूं न जान विपरीति मान। करि करै देहमें निजपिछान॥३॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव॥
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥४॥
तन उपजत अपनी उपजजान। तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन। तिनहीको सेवत गिनत चैन॥५॥
शुभ अशुभ बंधके फल मंझार। रति अरति करै निजपद विसार।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान। ते लखे आपकूं कष्ट दान॥६॥
रोके न चाह निज शक्ति खोय। शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतियुत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान॥७।
इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताकूं जानो मिथ्याचरित्त॥
यो मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह। अब जे गृहीत सुनिये सुतेह।॥८॥
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोखैं चिर दर्शन मोह एव॥
अन्तर रागादिक धरैं जेह। बाहर धन अबरतैं सनेह॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव। ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव।
जे रागद्वेष मलकर मलीन। वनिता गदादिजुत चिन्ह चीन्ह॥१०
तेहैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत न तिन भवभ्रमणछेव।
रागादिभाव हिंसा समेत। दर्वित त्रसथावर मरण खेत॥११॥

जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म । तिन सरधै जीव लहे अशर्म ।
याकूं गृहीत मिथ्यात् जान । अब सुन ग्रहीत जो है अजान ॥१२
एकांत वाद-दूषित समस्त । विषयादिक पोशक अप्रशस्त ॥
कपिलादिरचित श्रुतका अभ्यास । सोहै कुबोध बहु देन त्रास ॥१३
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह । धर करन विविध विधदेहदाह ।
आतम अनात्मके ज्ञान हीन । जे जे करनी तन करन छीन ॥१४
ते सब मिथ्या चारित्र त्याग । अब आतमके हित-पंथ लाग ॥
जगजाल भ्रमणको देय त्याग । अब दौलत निजआतमसु पाग ॥१५

तृतीय ढाल । नरेन्द्रछन्द २८ मात्रा ।

आतमको हित है सुख सो सुख, आकुलता विन कहिये ।
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये ।
सम्यक्‌दर्शन ज्ञान चरन शिव-मग सो दुविधि विचारो ॥
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१॥
परद्रव्यनतैं भिन्न आप मैं, रुचि सम्यक्त भला है ।
आप रूपको जानपनो सो, सम्यकज्ञान कला है ॥
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यकचारित सोई ।
अब बिवहार मोख-मग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥२॥
जीव अजीव तत्व अरु आश्रव, बंधरु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित विवहारी, अब इनरूप वखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनो ॥३॥
वहिरातम अन्तर आतम पर-मातम जीव त्रिधा है ।
देह जीवको एक गिने वहि,-रातम तत्व मुधा है ॥

उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अन्तरआतम ज्ञानी।
द्विविधि संग विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे. देशव्रती आगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि. तीनों शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वैविधि. तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥ ५॥
ज्ञानशरीरी त्रिविधकर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तरआतम हूजे।
परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजे॥ ६॥
चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंचवरण रस गंध दो, फरसवसू जाके हैं॥
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विन मूर्ति निरूपी॥ ७॥
सकलद्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशिदिन सो व्यव-हार काल परिमानो॥
यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर-माद सहित उपयोगा॥ ८॥
ये ही आतमको दुखकारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधै विधिसों सो बंधन कबहुं न सजिये॥
शमदमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप बलतैं विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥ ९॥
सकलकर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।

इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्मदयायुत सारो।
यहू मान समकितको कारण, अष्ट अङ्ग जुत धारो ॥ १० ।
वसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष विना सं—वेगादिक चित पागो ॥
अष्टअङ्ग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपै कहिये।
बिन जाने तैं दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये ॥ ११ ॥
जिन वचमें शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै।
मुनितन देख मलिन न घिनावै, तत्त्वकुतत्त्व पिछानै ॥
निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निजधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निज परको सु दिढ़ावै ॥ १२ ॥
धर्मीसों गौ वच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु तिनकों सतत खिपावै ॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनबलको मद भानै ॥ १३ ॥
तपको मद न मद प्रभुताको, करे न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकितकूं मल ठानै ॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवककी, नहिं प्रशंस उचरे है।
जिन मुनि जिन श्रुति विन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करे है ॥
दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक्दर्श सजे हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं ॥
गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है।
नगरनारिको प्यार यथा कां—देमें हेम अमल है ॥ १५ ॥

प्रथम नरक विन षट् भू ज्योतिष, वान भवन सब नारी।
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यकधारी॥
तीनलोक तिहुँकाल मांहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरमको मूल यही इस, बिनकरणी दुखकारी॥ १६॥
मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥

चतुर्थ ढाल।

दोहा—सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मयुत, जो प्रगटावन भान॥

रोलाछन्द २४ मात्रा।

सम्यक साथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो॥
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होतेहू . प्रकाश दीपकतैं होई॥ १॥
तास भेद दो हैं, परोक्ष परतक्ष तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्यय, दो हैं देशप्रत्यक्षा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण, लिये जानै जिय स्वच्छा॥ २॥
सकल द्रव्यके गुण, अनंत पर्याय अनंता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारण।

इहि परमामृत जन्म, जरामृत रोग-निवारण ॥ ३ ॥
कोटि जन्म तप तपै, ज्ञानविन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते ॥
मुनिव्रत धार अनंतवार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतम ज्ञान-विना सुख लेश न पायो ॥ ४ ॥
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै ।
संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लख लीजै ॥
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनवो जिन बानी ।
इह विधि गये न मिलैं, सुमनि ज्यों उदधि समानी ॥५॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञानको कारण, स्वपर विवेक बखानो ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो ॥ ६ ॥
जे पूरब शिव गए, जाहिं अब आगे जैहैं ।
सो सब महिमा ज्ञान-तणी मुनिनाथ कहे हैं ॥
विषय-चाह-दवदाह, जगत जन अरन दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञानधन-घान बुझावै ॥ ७ ॥
पुण्य पाप फल माहिं, हरष विलखो मत भाई ।
यह पुद्गल पर्याय, उपजि विनशै फिर थाई ॥
लाख बातकी बात, यही निश्चय उर लावो ।
तोरि सकल जगदंद-फंद नित आतम ध्यावो ॥ ८ ॥
सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ॥

त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न संघारे।
परवधकार कठोर निन्द्य, नहिं वयन उचारै॥ ९॥
जलमृतका विन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता विन और, नारिसों रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दस दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै॥
ताहूमें फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा॥
काहूकी धन हानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषीतैं॥११॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधे।
असि धनु हल हिंसोप—करण नहिं दे यश लाधे॥
राग द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजे।
औरहु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्है न कीजै॥१२॥
धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टै मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियमकर ममत निवारै।
मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै॥१३॥
बारह व्रतके अतीचार, पन पन न लगावै।
मरण समैं संन्यास, धार तसु दोष नशावै॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहंतें चय नर जन्म, पाय मुनि हो शिव जावै॥१४॥

पंचमढाल। चाल छन्द १४ मात्रा।

मुनि सकल व्रती बड़भागी। भवभोगनतें वैरागी ॥
वैराग्य उपावन माई। चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥
तिन चिन्तत समसुख जागै, जिम ज्वलन पवनके लागै ॥
जब ही जिय आतम जानै। तबही जिय शिवसुख ठानै ॥ २ ॥
जोबन ग्रह गो धन नारी। हय गय जन आज्ञाकारी ॥
इन्द्रिय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥
सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मंणिमंत्र तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥
चहुंगति दुख जीव भरे हैं। परवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा। तामें सुख नांहिं लगारा ॥ ५ ॥
शुभ अशुभ करम फल जेते। भोगे जिय एकहि तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥
जलपय ज्यों जियतन मेला। पै भिन्न २ नहिं भेला ॥
जो प्रगट जुदे धन धाम। क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥७॥
पल रुधिर राध मल थैली। कीसस बसादितैं मैली ॥
नव द्वार बहैं घिनकारी। अस देह करै किम यारी ॥ ८ ॥
जो योगनकी चपलाई। तातैं ह्वै आश्रव भाई ॥
आश्रव दुखकार घनेरे। बुद्धिवंत तिन्हें निरबेरे ॥ ९ ॥
जिन पुण्य पाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना ॥
तिनही विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥
निज काल पाय विधि झरना। तासों निजकाज न सरना ॥
तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥

किनहू न करो न धरै को । षट् द्रव्यमयी न हरै को ॥
सो लोकमाहिं विन समता । दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥
अंतिम ग्रीवकलोंकी हद । पायो अनंत विरियां पद ॥
पर सम्यक्ज्ञान न लाधौ । दुर्लभ निजमें मुनि साधौ ॥ १३ ॥
जो भाव मोहतैं न्यारे । दृगज्ञान व्रतादिक सारे ॥
सो धर्म जबै जिय धारै । तबही सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥
सो धर्म मुनिनकरि धरिये । तिनकी करतूति उचरिये ॥
ताकूं सुनिये भवि प्राणी । अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

अथ षष्ठम ढाल । हरिगीता छंद २८ मात्रा ।

षट् काय जीव न हननतैं सब, विध दरवहिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण, हू बिना दीयों गहैं ।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥ १ ॥
अंतर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधातैं टलैं ।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्य्यातैं चलैं ॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरे ।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख, चंद्रतैं अमृत झरे ॥ २ ॥
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तणे घर अशनको ।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तज रसनको ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखि—के गहैं लखिके धरैं ।
निर्जंतु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥ ३ ॥
सम्यक्प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते ।

तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस, रूप, गंध तथा परस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंचेंद्रियजयन पद पावने ॥ ४ ॥
समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिन देवको ।
नित करैं श्रुति रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको ॥
जिनके न न्हौन न दंतधावन, लेश अंवर आवरण ।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करण ॥ ५ ॥
इकबार लेत आहार, दिनमें, खड़े अलप निज पानमें ।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निन्दन थुतिकरण ।
अर्घावतारण असि प्रहारण—में सदा समताधरण ॥ ६ ॥
तप तपें द्वादश धरें वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यौ है सकल संयम चरित सुनि—ये स्वरूपाचरण अब ।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृति सब ॥७॥
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डार अंतर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भावको न्यारा किया ॥
निजमांहि निजके हेत निजकर, आपको आपै गह्यो ।
गुणगुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार कुछ भेद न रह्यो ॥ ८॥
जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोगकी निश्चल दशा ।
प्रगटी जहाँ दृगज्ञानव्रत ये, तीनधा एकै लशा ॥ ९ ॥

परमाण नय निक्षेपको न उद्योत, अनुभवमें दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बल मय सदा नहिं, आन भाव जो मो विखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिंड चंड अखंड सुगुण करंड, च्युत पुनि कलनितैं॥१०॥
यों चिन्त्य निजमें थिर भए तिन, अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रके नाहीं कह्यो॥
तवही शुकलध्यानाग्नि करि चउ, घाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि भवि, लोकको शिवमग कह्यो॥
पुनि घाति शेष अघात विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसै॥
संसार खार अपार पारा—वार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये॥११॥
निजमाहिं लोक अलोक गुण, पर्याय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल य,—था तथा शिव परणये॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनहीं अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया॥१२
मुख्योपचार दुभेद यों वड, भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुयशजल—जगमल हरैं॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहै तब, लों झटिति निजहित करो॥१४॥
यह राग आग दहै सदा ता—तैं समामृत पीजिये॥
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद लीजिये॥
कहा रच्यौ पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै॥१५॥

दोहा।

इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैशाख।
करयो तत्वउपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥१॥
लघुधी तथा प्रमादतें, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भवकूल ॥

—⊰⊱—

[१०] सामायिक पाठ भाषा।

(पं० महाचंद्रजीकृत)

अथ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी। जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी ॥ कोटि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायिक। धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥१॥ हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब। ते सब मनवचकाय योगकी गुप्ति विना लभ॥ आप समीप हजूरमाहिं मैं खड़ो खड़ो अब। दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥२॥ क्रोध मान मद लोभ मोह मायावश प्रानी। दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥ विना प्रयोजन एकेंद्रिय बि ति चउ पंचेंद्रिय। आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥ आपसमें इक ठौर थापि करि जे दुख दीने। पेलि दिये पगतलें दाबकरि प्राण हरीने॥ आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक। अरज करौं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥४॥ अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय। तिनके जे अपराध भये ते

क्षिमा क्षिमा किय ॥ मेरे जे अब दोष भये ते क्षमो दयानिधि। यह पड़िकोणो कियो आदि षट्कर्ममांहि विधि ॥ ५ ॥

अथ द्वितीय प्रत्याख्यानकर्म।

जो प्रमादवश होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥ सो सब झूठो होहु जगतपतिके परसादै। जा प्रसादतैं मिले सर्व सुख दुःख न लाधै ॥६॥ मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ। किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ॥ निंदूं हूँ मैं वारवार निज जियको गरहू। सवविध धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥ ७ ॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी॥ जिनवचनामृतधार समावर्तै जिनवानी। तोहू जीव सहारे धिक् धिक् धिक् हम जानी ॥ ८ ॥ इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सव। अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले। ते सब दोष किये निंदूं अब मनवच तोले ॥९॥ आलोचनविधयकी दोष लागे जु घनेरे। ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे॥ वारं वार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता। ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥ १० ॥

अथ तृतीय सामायिक कर्म।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है। सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है॥ आर्त रौद्र द्वय ध्यान छाँड़ि करिहूं सामायिक। संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव वधायक-

॥ ११ ॥ पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति । पंचहि थावरमांहिं तथा त्रस जीव बसैं जित ॥ वे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमांहिं जीव सब । तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥ १२ ॥ इस अवसरमैं मेरे सब सम कंचन अरु त्रण । महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण ॥ जामन मरण समान जानि हम समता कीनी । सामायिकका काल जितै यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥ मेरो है इक तामैं ममता जु कीनौ ॥ और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनौ ॥ मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह । मोतैं न्यारे जानि जथारथरूप कह्यो गह ॥ १४ ॥ मैं अनादि जगजालमांहिं फंस रूप न जाण्यो एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥ ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी । भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो कर मरजी । १५ ॥

अथ चतुर्थ स्तवनकर्म ।

नमूं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको । संभव भवदुखहरण करण अभिनन्द शर्मकों ॥ सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पारकर । पद्मप्रभु पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर ॥ १६ श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्ध कर । श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर ॥ पुष्पदत दमि दोषकोश भविपोष रोषहर । शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषहर ॥ १७ ॥ श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन । वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन ॥ विमल विमलमतिदैन अंतगत हैं अनंत जिन । धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥

कुंथ कुंथुमुखजीवपाल अरनाथ जाल हर। मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारण प्रचार धरं ॥ मुनिसुव्रत व्रतकरणं नमत सुरसंघहिं नमि जिन। नेमिनाथ नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञान धनं ॥ १९ ॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपलसम मोक्षरमापति। वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥ याविध मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर। स्तऊं नमूं हूं बार बार वंदौं शिवसुखकर ॥ २० ॥

अथ पंचम वंदनाकर्म।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सन्मति। वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत ॥ त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं। वंदूं नितप्रति कनकरूपतनु पाप निकंदूं ॥२१॥ सिद्धारथ नृपनंन्द द्वंद दुखदोष मिटावन। दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन ॥ कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनन्दकारन। वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन २२ सप्तहस्ततनुतुंग भंग कृत जन्म मरण भय। बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीव-घन। आप बसे शिवमांहिं ताहि वंदौ मनवचतन ॥ २३ ॥ जाके वंदनथकी दोष दुख दूरहि जावै। जाके वंदनथकी मुक्ति तिय सन्मुख आवै ॥ जाके वंदनथकी वंद्य होवैं सुरगनके। ऐसे वीर जिनेश वंदिहूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥ सामायिक षटकर्म-माहिं वंदन यह पंचम। वंदे वीरजिनन्द्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥ जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय। मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

अथ छट्ठा कायोत्सर्ग कर्म ।

कायोत्सर्ग विधान करुं अंतिम सुखदाई । कायत्यजन मम होय काय सबको दुखदाई ॥ पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं । जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पापतिमिरमैं ॥ २१ ॥ शिरोनति मैं करुं नमूं मस्तक कर धरिकैं । आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमदहरिकैं ॥ तीन लोक जिनभवनमांहिं जिन हैं जु अकृत्रिम । कृत्रिम हैं द्वयअर्धद्वीपमाहीं वंदौं जिम ॥ १७ ॥ आठकोडिपरि छप्पनलाख जु सहस सत्याणूं । चारि शतकपरि असी एक जिन मंदिर जाणूं ॥ व्यंतर ज्योतिषमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर । जिनगृह वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥१८॥ सामायिक सम नाहिं आर कोउ वैर मिटायक । सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक ॥ श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक । यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥२९॥ जे भवि आतम कांज करण उद्यम के धारी । ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥ राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब । बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥।

इति सामायिक भाषा पाठ समाप्त ।

श्री अमितगति आचार्य विरचित—

(११) सामायिक पाठ (संस्कृत)

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ १ ॥
शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निपाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४
एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, प्रमादतः संचारता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥
विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥
अतिक्रम यं विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥
क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिशक्तिताम् ॥९॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ ११
यः स्मर्य्यते सर्व्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १२ ॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १३ ॥
निषूदते यो भवदुःखजालम्, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १४॥
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १५॥
क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १६॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १७॥
न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये। १८ ॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥
येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्तं, देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्म्मितः।

यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः॥२२॥
न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्व्वामपि बाह्यवासनाम्॥२३
न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै॥२४
आत्मानमात्मन्यविलोकयमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम्॥२५॥
एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः समधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ताः, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥२६
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥२७॥
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥२८॥
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मनामवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे॥ २९ ॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥३०
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्॥३१॥
यैः परमात्मा[illegible]गतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥ ३२ ॥
इति द्वात्रिंशतवृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥ ३३ ॥

(१२) समाधिमरण भाषा।

(पं० सूरचन्दजी रचित)

वंदों श्री अरहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूं नित तुमसे, कर समाधि उरमांही।
अन्तसमयमें यह वर मांगूं, सो दीजे जगराई॥ १॥
भव भवमें तन धार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो।
भव भवमें नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो॥
भव भवमें तन पुरुष तनो धर, नारीहू तन लीनो।
भव भवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो॥२॥
भव भवमें सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव भवमें गति नरकतनी धर, दुख पायो विधयोगे॥
भव भवमें तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव भवमें साधर्मी जनको, संग मिला हितकारी॥३॥
भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो।
भव भवमें मैं समवसरणमें, देखो जिनगुण भीनो॥
एती वस्तु मिली भव भवमें, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण करो मैं, तातें जग भरमायो॥४॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो।
एक बारहू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुखदाई।
देह विनाशी मैं निजभाशी, जोति स्वरूप सदाई॥ ५॥

विषय कषायनके वश होकर, देह आपनो जानो ।
कर मिथ्याशरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछानो ॥
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यकदर्शन ज्ञान रतन ये, हिरदेमें नाहिं लायो ॥ ६ ॥
अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरणसमय यह मांगों ।
रोग जनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधयुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे ॥ ७ ॥
यह तन सात कुधात मई है, देखतही घिन आवे ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावे ॥
अति दुर्गंध अपावन सो यह, मूरख प्रीति बढ़ावे ।
देह विनाशी यह अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥ ८ ॥
यह तन जीर्ण कुटीसम मेरो, यातैं प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले फिर हमको, यामें क्या मुझ छीजे ॥
मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो ।
समतासे जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥ ९ ॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं ।
जीरण तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती तुम मृत्युसमयमें, उत्सव अतिही कीजै ।
क्लेशभावको त्याग सयाने, समताभाव धरीजे ॥ १० ॥
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई ।
मृत्युमित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
राग द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई ।

अन्त समयमें समता धारो, परभव पन्थ सहाई ॥ ११ ॥
कर्म महा दुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावै।
तन पिंजरेमें बंध कियो मुझ, जासों कौन छुड़ावे ॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़े ॥
मृत्युराज अव आप दयाकर, तन पिंजरसे काढ़े ॥ १२ ॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने इस तनको पहराये।
गंध सुगंधित अतर लगाये, षट्रस अशन कराये ॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी ॥ १३ ॥
मृत्युरायको शरण पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं।
जामें सम्यक्रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊं ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नांहि सु या जगमाहीं।
मृत्युसमयमें येही परिजन, सब हीं हैं दुखदाई ॥ १४ ॥
यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्युकल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती ॥ १५ ॥
चौ आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकतिमें जावो ॥
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्मजवाहर हारे ॥ १६ ॥
इस तनमें क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरण हो है।
तेज कांति बल नित्य घटत है, यासम अथिर सु को है ॥

पांचा इंद्री शिथल भई तब, स्वास शुद्ध नहिं आवै ।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै ॥ १७ ॥
मृत्युराज उपकारी जियको, तनसे तोहि छुड़ावे ।
नातर या तन बंदीग्रहमें, पड़ापड़ा बिललावे ॥
पुद्गलके परमाणू मिलके, पिंडरूप तन भासी ।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञानजाति गुणखासी ॥ १८ ॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे ।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तनसे इस क्षेत्र संबंधी कारण आन बनो है ।
खान पान दे याको पोषो, अब समभाव ठनो है ॥ १९ ॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान विन, यह तन अपनो जानो ।
इंद्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो ॥
तन विनशनतें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम आदिको अपनो जानो, भूल अनादी छाई ॥ २० ॥
अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूं ज्योतिस्वरूपी ।
उपजे विनशे सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी ॥
इष्टनिष्ट जेते सुखदुख हैं, सो सब पुद्गल सागे ।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागे ॥ २१ ॥
बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो ।
शस्त्रघाततैं नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार नन्त ही अग्निमाहिं जर, मूवो सुमति न लायो ।
सिंह व्याघ्र अहि नन्तवार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥
विन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई ।

मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई ॥
यातैं जबलग मृत्यु न आवे, तबलग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजै ॥ २३ ॥
स्वर्ग संपदा तपसे पावे, तपसे कर्म नशावे।
तपहीसे शिवकामिनिपति है, यासे तप चित लावे ॥
अब मैं जानी समता विन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥
मृत्यु समयमें मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावे, यों लख मोह तजो है ॥
और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीति न कीजे।
परभवमें ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥
जे जे वस्तु लसत हैं तुझ पर, तिनसे नेह निवारो।
परगतिमें ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥
जो परभवमें संग चलें तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥ २६ ॥
दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो।
षोड़शकारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो।
समताधर दुर्भाव निवारो, संयमसूं अनुरागो ॥ २७ ॥
अन्तसमयमें ये शुभ भावहि, होवें आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावें, ऋद्धि देंय अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके।
जासेती गति चार दूर कर, वसो मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
येही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोऊ नाईं ॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं तिन गहि थिरता भारी ।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥ १९ ॥
तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं सो सुन जिय ! चित लाके ।
भावसहित अनुमोदै तासें, दुर्गति होय न जाके ॥
अरु समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावे ।
यों निश दिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावे ॥ २० ॥
धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसी धीरज धारी ।
एक श्यालनी युगबच्चायुत, पांव भखो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो समभावन आराधन उर धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ २१ ॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो ।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ २२ ॥
देखो गजमुनिके सिर ऊपर विप्र अगिनि बहु वारी ।
शीस जले जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ २३ ॥
सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्टवेदना व्यापी ।
छिन्न छिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्तो गुण आपी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी ।

तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१४॥
श्रेणिकसुत गंगामें डूबो, तब जिननाम चितारे।
धर सलेखना परिग्रह छांड़ो, शुद्ध भाव उर धारे॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१५॥
समँतभद्रमुनिवरके तनमें, क्षुधा वेदना आई।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निजगुण भाई॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१६॥
ललितघटादिक तीस दोय मुनि कौशांबीतट जानो।
नद्दीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१७॥
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मासकी कर मर्यादा तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१८॥
श्रीदत्तमुनिको पूर्व जन्मको, वैरी देव सु आके।
विक्रियकर दुख शीततनो सो, सहो साधु मन लाके॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१९॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मनलाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई॥

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥१०॥
अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा वेदना पाई।
वैरी चंडने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी ॥११॥
विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौभी धीर न त्यागी।
शुभभावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ १२ ॥
पुत्र चिलाती नामा मुनिको, वैरीने तन घातो।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी ॥१३॥
दण्डक नामा मुनिकी देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्ममहारिपु छेदी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी ॥१४॥
अभिनंदन मुनि आदि पांचसै, घानी पेलि जु मारे।
तौ भी श्रीमुनि समताधारी, पूरव कर्म विचारे॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरतो, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ १५ ॥
चाणक मुनि गोधरके मांही, मूँद अग्नि परिजालो।

श्रीगुरु उरु समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४६ ॥
सात शतक मुनिवरने पायो, हथनापुरमें जानो।
बलिब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४७ ॥
लोहमयी आभूषण गड़के, तातेकर पहराये।
पांचों पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४८ ॥
और अनेक भये इस जगमें, समता रसके स्वादी।
वे ही हमको हो सुखदाता, हरहैं टेव प्रमादी ॥
सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तप ये, आराधन चारों।
ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥ ४९ ॥
यों समाधि उरमांही लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मदको, ज्योतिस्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतरके काजे।
सो भी शकुन विचारे नीके, शुभ शुभ कारण साजे ॥ ५० ॥
मात पितादिक सर्व कुटुमसो, नीके शकुन बनावें।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावें ॥
एक ग्रामके कारण एते, करै शुभाशुभ सारे।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचे प्यारे ॥ ५१ ॥

सर्व कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावें सारे।
ये अपशकुन करें सुन तोकूं, तू यों क्यों न विचार ॥
अब परगतिके चालत विरियां, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुखहानो ॥ ९१ ॥
है निश्शल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगतिको करहु पयानो, परमतत्व उर लावो ॥
मोह जालको काट पियारे ! अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरा यों उर निश्चय धारो ॥ ९३ ॥

दोहा-मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द शिवथान ॥९४॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कहो पाठ मनलाय ॥ ९५ ॥

(१३) समाधिमरण।

(कवि द्यानतरायकृत।)

गौतमस्वामी वन्दों नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊं निशदिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है ॥
देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहीं जाने।
त्याग बाईस अभक्ष संयमी बारहव्रत नित ठाने ॥ १ ॥
चक्की उखरी चुल्हि बुहारी पानी त्रस न विराधे।
बनिज करे परद्रव्य हरे नहिं छहो कर्म इम साधे ॥
पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी।

पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥ १ ॥
जाप जपे तिहुं योग धरे थिर तनकी ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगे अरु नाव जु डूबे धर्म विघन जब आवे।
चार प्रकार अहार त्यागिके मंत्र सु मनमें ध्यावे ॥ ३ ॥
रोग असाध्य जहां बहु देखे कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो वनि आवे भार भवनको डारे ॥
जो न वने तो घरमें रहकर सबसों होय निराला।
मात पिता सुत त्रियको सोंपै निज परिग्रह अति काला ॥४॥
कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिये मनकी शल्य हरेई ॥
शत्रुन सों मिलि निजकर जोरे मैं बहु करी है बुराई
तुमसे प्रीतमको दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥ ५ ॥
धन धरती जो मुख सो मांगे सो सब दे संतोषे।
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणाभाव विशेषे ॥
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कछु भोजन कछु पयले।
दूधाहारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार गहेले ॥ ६ ॥
छाछ त्यागिके पानी राखे पानी तजि संथारा।
भूममांहि थिर आसन मांडे साधर्मी ढिग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवानी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परमपद गहिये ॥ ७ ॥
चौ आराधन मनमें ध्यावे बारह भावन भावे।
दशलक्षण मन धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावे ॥

पैंतिस सोलह षट पन चारों दुइ इक वर्ण विचारै ।
काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञानमई तूं सारे ॥ ८ ॥
अजर अमर निज गुण सौं पूरे परमानन्द सुभावे ।
आनन्द कन्द चिदानँद साहब तीन जगतपति ध्यावे ॥
क्षुधा तृषादिक होइ परीषह सहै भाव सम राखै ।
अतीचार पांचो सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखै ॥ ९ ॥
हाड मांस सब सूखि जाय जब धरम लीन तन त्यागे ।
अदभुत पुण्य उपाय सुरगमें सेज उठे ज्यों जागे ॥
तहँ तैं आवे शिवपद पावे बिलसे सुक्ख अनन्तो ।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो ॥१०॥

---

(१४) वैराग्य भावना ।

(वज्रनाभि चक्रवर्ती कृत)

दोहा—बीज राख फल भोगवे, ज्यों कृषान जगमाहिं ।
त्यों चक्री सुखमें मगन, धर्म विसारै नाहिं ॥

योगीरासा वा नरेन्द्र छन्द ।

इस विधि राज्य करै नर नायक, भोगे पुण्य विशाल । सुख सागरम मग्न निरन्तर, जात न जानो काल ॥ एक दिवस शुभ कर्म योगसे, क्षेमंकर मुनि वंदे । देखे श्री गुरुके पद पंकज लोचन अलि आनंदे ॥१॥ तीन प्रदक्षिणा दे शिर नायो, कर पूजा स्तुति कीनी । साधु समीप विनयकर बैठो, चरणोंमें दृष्टि दीनी ॥ गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागो । राज्य रमा वनतादिक जो रस, सो सब नीरस लागो ॥२॥ मुनि सूरज

कथनी किरणावलि, लगत भर्म बुधि भागी। भव तन भोग स्वरूप विचारो परम धर्म अनुरागी॥ या संसार महा वन भीतर, भर्मत छोर न आवे। जन्मन मरन जरा दव दाहे, जीव महा दुख पावे॥ ३॥ कबहूं जाय नरक पद भुंजे, छेदन भेदन भारी। कबहूं पशु पर्याय धरे तहां, वध बंधन भयकारी। सुरगतिमें पर सम्पति देखे, राग उदय दुख होई। मानुष योनि अनेक विपति भय, सर्व सुखी नहीं कोई॥४॥ कोई इष्ट वियोगी विलखे, कोई अनिष्ट संयोगी। कोई दीन दरिद्री दखि, कोई तनका रोगी॥ किस ही घर कलिहारी नारी, कै वैरी सम, भाई। किस हीके दुख बाहर दीखे, किसही उर दुचिताई॥५॥ कोई पुत्र विना नित झूरे, होई मरे तब रोवै। खोटी संततिसे दुख उपजे, क्यों प्राणी सुख सोवै॥ पुण्य उदय जिनके तिनको भी, नाहिं सदा सुख साता। यह जगवास यथारथ दीखे, सबही ह दुखदाता॥६॥ ॥६॥ जो संसार विषै सुख हो तो, तीर्थकर क्यों त्यागे। काहेको शिव साधन करते, संयमसे अनुरागें॥ देह अपवान अथिर घिनावनि इसमें सार न कोई। सागरके जलसे शुचि कीजे, तो भीं शुद्ध न होई॥ ७॥ सप्त कुधातु भरी मल मूतर, चर्म लपेटी सोहै। अन्तर देखत या सम जगमें, और अपावन को है॥ नव मलद्वार श्रवैं निशी वासर, नाम लिये घिन आवे। व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां, कोन सुधी सुख पावे॥ ८॥ पोषत तो दुख दोष करे अति, सोषत सुख उपजावे। दुर्जन देह स्वभाव बराबर; मूरख प्रीति बढ़ावे॥ राचन योग्य स्वरूप न याको विरचित योग्य सही है। यह तन पाय महां तप कीजे, इसमें

सार यही है ॥९॥ भोग बुरे भव रोग बढ़ावें, बैरी हैं जग जीके। वे रस होय विपाक समय अति, सेवत लागें नीके ॥ वज्र अगिनि विषसे विष धरसे, ये अधिके दुखदाई । धर्मरत्नके चोर प्रबल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥ मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने । ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने ॥ ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर, मन वांछित जन पावे । तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावे ॥११॥ मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे । तोभी तनक भये ना पूरण, भोग मनोरथ मेरे ॥ राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावन हारा । वेश्यासम लक्ष्मी अति चंचल इसका कौन पत्यारा ॥१२॥ मोह महारिपु वैर विचारो जग-जिय संकट डारे। घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन हैं रखवारे॥ सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी । ये ही सार असार और सब यह चक्री चित धारी ॥ १३ ॥ छोड़े चौदह रत्न नवोंनिधि और छोड़े सङ्गसाथी । कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥ इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृणवत त्यागी । नीति विचार नियोगी सुतको, राज्य दियो बड़भागी ॥ १४ ॥ होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे । श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥ धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी । ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन तिनपद धोक हमारी ॥१५॥

दोहा—परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।
निज स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ ॥

(१५) फूलमाल पच्चीसी।

दोहा-जैन धरम त्रेपन क्रिया, दया धरम संयुक्त।
यादों वंश विषैं ज्ये, तीन ज्ञान संयुक्त ॥ १ ॥
भयो महोछो नेमिको, जूनागढ़ गिरनार।
जाति चुरासिय जैनमत जुरे क्षोहनी चार ॥ २ ॥
माल भई जिनराजकी, गूंथी इन्द्रन आय।
देशदेशके भव्य जन, जुरे लेनको धाय ॥ ३ ॥

छप्पय।

देश गौड़ गुजरात चौड़ सोरठि वीजापुर।
करनाटक काशमीर मालवो अरु अमेरधुर ॥
पानीपथ हीं सार और बैराट महां लघु।
काशी अरु भरहट्ट मगध तिरहुत पट्टन सिंधु ॥
तहँ वंग चंग बंदर सहित, उदधि पार लौ जुरिय सव।
आए जु चीन महं चीन लग, माल भई गिरनारी जब ॥ ४ ॥

नाराच छन्द।

सुगंध पुष्प वेलि कुंद केतकी मगायके। चमेलि चंप सेवती जुही गुही जु लायकें ॥ गुलाब कंज लायची सबै सुगंध जातिके। सुमालती महा प्रमोद लै अनेक भांतिके ॥५॥ सुवर्ण तारपोय बीच मोति लाल लाइया। सु हीर पन्न नील पीत पद्म जोति छाइया ॥ शची रची बिचित्र भांति चित्त दे बनाई है। सुइंद्रने उछाहसों जिनेंद्रको चढाई है ॥६॥ सुमागहीं अमोल माल हाथ जोरि बानियें। जुरी तहां चुरासि जाति रावराज जानिये ॥ अनेक और भूपलोग सेठ-

-साहुको गनें। कहांलों नाम वर्णियें सुदेखते सभा बनें ॥७॥ खँडेलवाल
जैसवाल अग्रवाल आइया। बघेरवाल पोरवाल देशवाल छाइया ॥
-संडेलवाल दिल्लिवाल सेतवाल जातिके। बढेलवाल पुष्पभाल श्री-
श्रिमाल पांतिके ॥८॥ सुओसवाल पल्लिवाल चूरुवाल जानिये। पर-
बार पोरवाल पद्मावती बखानिये। गंगेरवाल बंधुराल तोर्णवाल
-सोहिला। करिंदवाल पच्चिवाल मेढ़वाल खोहिला ॥ ९ ॥ लवेंचु
आर माहुरे महेसुरी उदार हैं। सुगोललार गोलापूर्व गोलहूं सिंघार
हैं ॥ बंघ नौर मागधी विहारवाल गूजरा। सुखंडरा गहोय और
जानंराज वूसरा ॥१०॥ भुराल और भुराल और सोरठी चितौ-
रिया। कपोल सोमराठ वर्ग हूमड़ा नागौरिया ॥ सिरी गहोड़
भंडिया कनोजिया अजोधिया। मिवाड मालवान और जाघड़ा
-समोधिया ॥११॥ सुभट्टनेर रायवाल नागरा रूथाकरा। सुकंथ
-राठ जालुराठ वालमीक भाकरा ॥ पमार लाड़ चोड़ कोड़ गोड़
मोड़ संमरा। सु खंड़िआत श्री खन्डा चतुर्थ पंचमं भरा ॥१२॥
-सु रत्नकार भोजकार नारसिंघ हैं पुरी। सु जबूवाल और क्षेत्र
ब्रह्म वैश्य लौं जुरी ॥ सु आइ है चुरासि जाति जैनधर्मकी धनी।
सबै विराजि गोटियों जु इंद्रकी सभा बनी ॥१३॥ सुमाल लेनको
अनेक भूपलोग आवहीं। सु एक एकतें सुमांग मालको बढ़ा-
वहीं ॥ कहें जु हाथ जोरि जोरि नाथ माल दीजिये। मंगाय
-देउँ हेमर[illegible]डार कीजिये ॥१४ बघेलवाल बांकडा हजार
-बीस देत हैं। हजार दे पचास पोरवार फेरि लेत हैं। सु जैसवाल
लाख देत माल लेतें चोंपसों। जु दिल्लिवाल, दोय लाख देत हैं
अगोपसो ॥ १५ ॥ सु अग्रवाल बोलिये जु माल मोह दीजिये।

दिनार देंहु एक लक्ष सो गिनाय लीजिये। खँडेलवाल बोकिया जु दोय लाख देउंगो । सुबाँटि केत मोलमैं जिनैन्द्रमालःलेऊँगो ॥१६॥ जु संभरी कहें सु मेरि खानि लेहु जायकें । सुवर्ण खानि देत हैं चितौड़िया बुलायके ॥ अनेक भूप गांव देत रायसो चँदेरिका । खजान खोलि कोठरीं सु देत अपरि मेरिका ॥१७॥ सुगोड़वाल यों कहै गयन्द वीस लीजिये । मढ़ायं देउ हेमदन्त माल मोहि दीजिये । पमारके तुरङ्ग साजि देत हैं विना गने । लगाम जीन पाहुड़े जड़ाउ हेमके बने ॥१८॥ कनौजिया कपूर देत गाड़ियां भरायके । सुहीर मोति लाल देत ओशवाल आयके ॥ सु हूंमड़ा हँकारहीं हमैं न माल देउगे । भराइये जिहाजमें कितेक दाम लेउगे । १९॥ कितेक लोग आयके खड़ेते हाथ जोरिकें । कितेक भूप देखिके चले जु बाग मोरिकें ॥ कितेक सूम यों कहे जु कैसँ लक्षि देत हो । लुटाय माल आपनों सु फूलमाल लेत हो ॥ २० ॥ कई प्रवीन श्राविका जिनेन्द्रको बधावहीं । कई सुकंठ रागसों खड़ी जु माल गावहीं । कईसु नृत्यकों करैं नहैं अनेक भावहीं । कई मृदङ्ग तालपे सु अङ्गको फिरावहीं ॥२१॥ कहैं गुरु उदार धी सु यों न माल पाइये । कराइये जिनेंद्र यज्ञ बिंबहू भराइये ॥ चलाइये जु संघ जात संघही कहाइये । तबै अनेक पुण्यसों अमोल माल पाइये ॥२२॥ सबोधि सर्व गोटिसो गुरू उतारकें लई । बुलाय कें जिनेंद्रमाल संघरायको दई । अनेक हर्षसो करैं जिनेंद्र तिलक पाईये । सुमाल श्री जिनेंद्रकी विनोदीलाल गाइये । २३ ॥

दोहा—माल भई भगवन्तकी, पाई संग नरिन्द।
लालाविनोदी उच्चरैं, सबको जयति जिनंद ॥२४॥
माला श्री जिनराजकी, पावे पुण्य संयोग।
यश प्रघटै कीरति बढ़ै, धन्य कहैं सबलोग ॥२५॥

(१६) प्रातःकालकी स्तुति।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजनकी अब पूरो आस।
ज्ञानभानुका उदय करो मम मिथ्यातमका होय विनाश ॥१॥
जीवोंकी हम करुणा पालें झूठ वचन नहीं कहैं कदा।
परधन कबहूं न हरहुं स्वामी ब्रह्मचर्यव्रत रहे सदा ॥ २ ॥
तृष्णा लोभ बढ़ न हमारा तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥ ३ ॥
दूर भगावें बुरी रीतियां सुखद रीतिका करें प्रचार।
मेल मिलाप बढ़ावें हमसब धर्मोन्नतिका करें प्रचार ॥ ४ ॥
सुखदुःखमें हम समता धारैं रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्यायमार्गको लेश न त्यागें वृद्धि करे निज आतमबल ।५॥
अष्टकर्म जो दुःख देत हैं तिनके क्षयका करें उपाय।
नाम आपका जपें निरंतर विघ्नरोग सब ही टर जाय ॥ ६ ॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नाहिं चढ़े कदा।
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्मज्ञान हू बढ़े सदा ॥ ७ ॥
हाथ जोड़कर शीस नवावें तुमको भविजन खड़े खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी चरण शरणमें आन पड़े ॥ ८ ॥

(१७) सायंकालकी स्तुति।

हे सर्वज्ञ ज्योतिमय गुणमणि बालक जनपर करहु दया।
कुमति निशा अंधयारीकारी सत्य ज्ञानरवि छिपा दिया ॥ १ ॥
क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बटमार फिरे चहुँ ओर।
लूट रहे जग जीवनको यह देख अविद्या तमका जोर ॥ २ ॥
मारग हमको सूझ नांहीं ज्ञान विना सब अंध भये।
घटमें आय विराजो स्वामी बालकजन सब खड़े नये ॥ ३ ॥
सतपथदर्शक जनमनहर्षक घट घट अंतरयामी हो।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसके तुम ही स्वामी हो ॥ ४ ॥
घोर विपतमें आन पड़ा हूं मेरा बेड़ा पार करो।
शिक्षाका हो घर घर आदर शिल्पकला संचार करो ॥ ५ ॥
मेलमिलाप बढ़ावें हम सब द्वेषभाव हो घटाघटी।
नांहि सतावें किसी जीवको प्रीति क्षीरकी गटागटी ॥ ६ ॥
मातपिता अरु गुरूजनकी हम सेवा निशदिन किया करें।
स्वारथ तजकर सुख दें परको आशिश सबकी लिया करें ॥ ७ ॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पापमैल नहिं चढ़े कदा।
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्मज्ञान हू बढ़े सदा ॥ ८ ॥
दोऊ कर जोड़े बालक ठाड़े करें प्रार्थना सुनिये तात।
सुखसे बीते रैन हमारी जिनमतका हो शीघ्र प्रभात ॥ ९ ॥
मातपिताकी आज्ञा पालें गुरुकी भक्ति धरें उरमें।
रहें सदा हम करतव्य तत्पर उन्नति करदें पुरपुरमें ॥ १० ॥

---

(१८) भक्तामरस्तोत्र संस्कृत।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्। सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः। स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्। बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बमन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान् कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या। कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः। प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रम् नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्। यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्। आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्। चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८ ॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति। दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं

भुवनभूषणभूत नाथ भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः । तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥ दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत् ॥११॥ यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत । तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथि-व्यां यत्ते समानमपरं न हि रूपमास्ति ॥१२॥ वक्त्रं क ते सुर-नरोरगनेत्रहारि निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् । बिम्बं कलङ्कम-लिनं क निशाकरस्य यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥ सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति । ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् । कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि । गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोपि सहसा युगपज्जगन्ति । नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके ॥१७॥ नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् । विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति विद्योतय-ज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ । निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा

त्वयि विभाति कृतावकाशं नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु । तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥ मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति । किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान् नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता । सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥ त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्त मनंगकेतुम् । योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥२४॥ बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् । धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात् व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय । तुभ्य नमस्त्रिजगतःपरमेश्वराय तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥ को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश । दोषैरुपात्तविबुधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥ उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ॥ स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं बिंबं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥ सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् । बिंबं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥ कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।

उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्
॥३०॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांतमुच्चैः स्थितं स्थगितभानु-
करप्रतापम् । मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम् प्रख्यापयत्त्रिजगतः पर-
मेश्वरत्वम् ॥३१॥ गम्भीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभ-
संगमभूतिदक्षः । सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन् खे दुन्दुभिर्ध्वनति
ते यशसः प्रवादी ॥३२॥ मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजातसन्तानकादिकु-
सुमोत्करवृष्टिरुद्धा । गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रयाता दिव्या दिवः
पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥ शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती । प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥३४॥ स्वर्गापवर्गगममार्ग
विमार्गणेष्टः सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते
विशदार्थसर्वभाषास्वभावपरिणामगुणैःप्रयोज्यः ॥३५॥ उन्निद्रहेम-
नवपङ्कजपुञ्जकान्ती पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ । पादौ पदानि
तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशि-
नोऽपि ॥३७॥ श्च्योतन्मदाविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृ-
द्धकोपम् । ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदा-
श्रितानाम् ॥३८॥ भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त मुक्ताफलप्रक-
रभूषितभूमिभागः । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि नाक्रामति
क्रमयुगाचलसाश्रितं ते ॥३९॥ कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं दावा-
नलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् । विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठ-

नीलं क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्। आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्कस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥ वल्गुत्तुरङ्ग-गजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्। उद्यद्दिवाकर-मयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥ कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥ अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ। रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥४४॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः। त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥ आपादकण्ठमुरुशृंखलवेष्टिताङ्गा गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः। त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥ मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवा-नलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्। तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्। धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं तं मानतुङ्गमवशासमुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तम्।

(१९) भाषा भक्तामर।

(स्वर्गीय पं० हेमराजजीकृत)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

सुरनत मुकुट रतन छवि करें। अंतर पापतिमिर सब हरें ॥ निजपद बंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उद्धरनसहाय ॥ श्रुतिपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव ॥ शब्द-मनोहर अर्थ विशाल। तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल ॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निलज्ज थुति-मनसा कीन। जलप्रतिबिंब बुद्धको गहै। शशिमंडलबालक ही चहै ॥ गुनसमुद्रतुमगुन-अविकार। कहत न सुरगुरु पावैं पार॥ प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरैको भुज बलवंतु ॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववश कछु नहीं डरूं ॥ ज्यों मृग निज सुत पालन हेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥ मैं शठ सुधीहँसनको धाम। मुझ तव भक्ति बुलावे राम। ज्यों पिक अंबकली परभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव। तुमजस जंपत जन छिनमाहिं। जनमजनमके पाप नशाहिं ॥ ज्यों रवि उगै फटै तत्काल। अलिवत नील निशातमजाल ॥ तव प्रभावतैं कहुँ विचार। होसी यह थुति जनमनहार॥ ज्यों जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी दुति विस्तरै। तुमगुनमहिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पापविनाशक है तुमनाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ नहिं अचंभ जो होंहिं तुरंत। तुमसे तुमगुण बरनत संत ॥ जो

अधीनको आप समान। करै न सो निंदित धनवान ॥ इकटक जन तुमको अविलोय। और विषैं रति करे न सोय ॥ को करि खीरजलधिजलपान। क्षारनीर पीवैं मतिमान ॥ प्रभु तुम वीतराग गुन लीन। जिन परमानु देह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमान। यातैं तुमसम रूप न आन ॥ कहँ तुममुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार ॥ कहां चंद्रमंडल सकलंक। दिनमें ढाकपत्रसमरंक ॥ पूरनचंद्र जोति छविवंत। तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एकनाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरतको करै निवार ॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ। मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगे न धीर ॥ धूमरहित बाती गतनेह। परकाशे त्रिभुवन घर येह ॥ वातगम्य नाहीं परचंड। अपर दीप तुम बलै अखंड ॥ छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं। जगपरकाशक हो छिनमाहिं ॥ घन अनवर्त्त दाह विनिवार। रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ सदा उदित विदलिततममोह। विघटित मेघ राहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरवचंद। जगतविकाशी जोति अमंद। निशदिन शशिरविको नहिं काम। तुम मुखचंद हरै तमधाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं। हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय। काचखंड पावै नहिं सोय ॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया, स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया। कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया, मनोग चित्तचोर और भूलहू न देखिया ॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं, न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं।

दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै, दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो, कहें मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो। महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके, न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥ अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो, असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥ महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो, अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संयमान हो। तुम्हीं जिनेश बुद्ध हो सुबुद्धिके प्रमानतें, तुही जिनेश शंकरो जगत्रये विधानतें। तुहीं विधात है सही सुमोखपंथ धारतें, नरोत्तमो तुहीं प्रसिद्ध अर्थके विचारतें ॥ नमों करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो, नमो करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो। नमो करूं भवाब्धि-नीरराशिशोषहेतु हो, नमो करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥

तुम जिन पूरनगुनगनभरे। दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥ और देवगण आश्रय पाय। स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥ तरुअशोकतर किरन उदार। तुमतन शोभित है अविकार ॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिर निहंत ॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र। तापर कंचनवर्ण पवित्र ॥ तुमतन शोभित किरणविथार। ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥ कुंदपुहुपसितचमर ढरंत। कनकवरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति। झरना झरै नीर उमगांति ॥ ऊंचे रहैं सूर दुति लोप। तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसों छवि लहैं ॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर। चहुँदिश होय तुम्हारे धीर ॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करै। मानो जय जय रव उच्चरै ॥ मंद

पवन गंधोदक इष्ट। विविध कल्पतरु पुहुपसुवृष्ट॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद। सब दुतिवंत करत हैं मन्द॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करे अछाय। स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशन हेत॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सब-भाषागर्भित हितसाध॥

विकसितसुवरनकमलद्युति, नखद्युतिमल चमकाहिं। तुमपद पदवी जहँ धरैं, तहँ सुर कमल रचाहिं।। ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय। सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागण होय॥

षट्पद—मदअवलिप्तकपोल—मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारैं॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै। ऐरावत सौ प्रबल, सकल जन भय उप-जावै। देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन। विपति रहित सम्पति सहित, वरतै भक्त अदीन॥ अति मदमत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥ बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीम भयानकरूप देखि जन थरहर डोलै। ऐसे मृगपति पग तलें, जो नर आयो होय॥ शरण गये तुम चरनकी, बाधा करै न सोय। प्रलयपवनकर उठी आग जो त्रास पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर॥ जगत समस्त निगल्ल, भस्मकर हैगी मानों। तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुँदिशा उठानों॥ सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर तुम लेत। होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत॥ कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता। रक्तनयन

फुंकार, मारविषकण उगलंता ॥ फणको ऊंचो करै, बेग ही सनमुख धाया। तब जन होय निशंक, देश फणपतिको आया ॥ जो चांपै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार। नागदमनि तुम नामकी, है जिनके आधार ॥ जिस रनमाहिं भयानक शब्द कर रहे तुरंगम। घनसे गज गरजाहिं, मत्त मानों गिरि जंगम ॥ अति कोलाहलमांहि, बात जहँ नाहिं सुनीजे। राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजे ॥ नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय। ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥ मारे जहां गयंद, कुंभ हाथियार विदारे। उमंगे रुधिर प्रवाह, बेग जलसे विस्तारे ॥ होय तिरन असमर्थ, महाजोधा बल पूरे। तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरे ॥ दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक तुम पदपंकज मन वसैं, ते नर सदा निशंक॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै। जामें बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै। पार न पावै जास, थाह नहिं लहिये जाकी। गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताको ॥ सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं। लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं। महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं। बात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहे हैं ॥ सोचत रहैं उदास, नाहीं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा ॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निजअंग ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग ॥ पांव कंठतैं जकर बांध सांकल अति भारी। गाढ़ी बेड़ी पैरमांहि, जिन बांध विदारी। भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे बिलालने। सरण

नाहिं जिन कोय, नृपके बंदीखाने ॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं । छिनमें ते सम्पति लहैं, चिन्ता भय विनसाहिं ॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल । फणपति रण परचंड नीरनिधि रोग महाबल ॥ बन्धन ये भय आठ, डरपकर मानों नाशै । तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै ॥ इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय । यातैं तुम पदभक्तको, भक्ति सहाई होय ॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी । विविध वर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी ॥ जे नर पहिरैं कंठ भावना मनमें भावें । मानतुंग ते निजाधीन, शिवलछमी पावें । भाषा भक्तामर कियौ, हेमराज हितहेत । जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ॥४८॥

---

(२०) बारह भावना ।

(भूधरदास कृत)

दोहा—राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार । मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार ॥१॥ दल बल देई देवता, मात पिता परिवार । मरती विरियां जीवको कोई न राखनहार ॥१॥ दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान् । कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ ३ ॥ आप अकेला अवतरै; मरै अकेला होय । यों कबहूं इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥४॥ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय । घर संपति पर प्रगट ये; पर हैं परिजन लोय ॥५॥ दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह । भीतर यासम जगतमें; और नहीं घिनगेह ॥६॥

सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमें सदा। कर्मचोर चहुंओर, सरवस लूटें सुध नहीं ॥७॥ सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमें। तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुकें ॥८॥

दोहा—ज्ञान दीप तप तेल भर, घर सोधें भ्रम छोर। याविधि बिन निकसें नहीं, पैठे पूरव चोर ॥ ९ ॥ पंचमहाव्रत संचरण, समिति पंच परकार। प्रबल पंच इन्द्री विजय धार निर्जरा सार ॥१०॥ चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान। तामें जीव अनादितें, भरमत है बिन ज्ञान ॥११॥ जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन। बिन जांचे बिन चिंतये, धर्म सकलसुख दैन ॥१२॥ धनकन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान, दुर्लभ है संसारमें, एक यथारथ ज्ञान ॥ १३ ॥

---

[२१] बारहभावना।

(बुधजनदास कृत)

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर पर्ययते सदा। परणमनराखन कौन समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥ धन यौवन सुत नारी पर कर जान दामिन दमकसा। ममता न कीजे धारि समता मानि जलमें नमकसा ॥ १ ॥ चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं। सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे न रहैं ॥ अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं। शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत हैं ॥ २ ॥ सुरनर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे। सुख शास्वता नहीं भासता सब

विपतिमें अतिसनरहे । दुःख मानसी तो देवगतिमें नारकी दुःख ही भरे । तिर्थंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरे ॥ ३ ॥ क्यों भूलता शठ फूलता है देख पर कर थोकको । लाया कहाँ लेजायगा क्या फान भूषण रोकको ॥ जामन मरण तुझ एकले को काल केता होगया । संग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥ इन्द्रीनसे जाना न जावे चिदानन्द अलक्ष है ॥ स्व सम्वेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है । तन अन्य जड़ जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है । कर भेद ज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ॥५॥ क्या देख राचा फिरे नाचारूप सुन्दर तन लिया। मल मूत्र भाड़ा भरा गाढ़ा तू न जाने भ्रम गया॥ क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरे। तोहि काल गटके नाहिं अटके छोड़ तुझको गिरपरे ॥६॥ कोई खरा कोई बुरा नाहीं वस्तु विविध स्वभाव है। तू वृथा विकलप ठान उरमें करत राग उपाव है॥ यों भाव आश्रव बनत तू ही द्रव्य आश्रव सुन कथा। तुझ हेतुसे पुद्गल करम बन निमित्त हो देत व्यथा ॥७॥ तन भोग जगत् सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया। सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया॥ इंद्री अनिन्द्री दाबि लीनी त्रस रु थावर वध तजा। तब कर्म आश्रव द्वार रोके ध्यान निजमें जो सजा ॥८॥ तज शल्य तीनों वरत लीनो बाह्या-भ्यन्तर तप तपा। उपसर्ग सुर नर जड़ पशु कृत सहा निज आत्म जपा। तब कर्म रस विन होन लागे द्रव्य भावन निर्जरा। सब कर्म हरके मोक्ष वरके रहत चेतन ऊजरा ॥९॥ विच लोक नंतालोक माहींमें द्रव सब है भरा। सब भिन्न २ अनादि रचना

निमित्त कारणकी करा ॥ जिनदेव भासा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा। सुर मनुष तिर्यंच नारकी हुवे ऊर्ध्व मध्य अधोधरा ॥ अनंत काल निगोद अटका निकस थावर तनधरा । भू वारि तेज बयारि व्है के बेइन्द्रिय त्रस अवतरा ॥ फिर हो तेइन्द्री वा चौइंद्री पंचेंद्री मनबिन बना । मन युतमनुषगातिहोना दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११॥ न्हाना धोना तीर्थ जाना धर्म नांहीं जप जपा । नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा ॥ वर धर्म निज आत्म स्वभाव ताहि विन सब निष्फला । बुधजन धरमं निज धार लीना तिनहि कीना सब भला ॥१२॥

अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान । अशुचि आश्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥१३॥ बोध औ दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान । इनको भावे जो सदा क्यों न लहै निर्वाण ॥ १४ ॥

---

(२२) सुवाबत्तीसी ।

दोहा–नमस्कार जिन देवको, करों दुहुं करजोर । सुवा बतीसी सुरस मैं, कहुं अरिनदल मोर ॥१॥ आतम सुआ सुगुरु वचन, पढ़त रहै दिन रैन । करत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन ॥२॥ सुगुरु पढ़ावे प्रेमसों, यह पढ़त मनलाय । घटके पट जो ना खुलै, सब ही अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई–सुवा पढ़ाया सुगुरु बनाय । क्रम वनहि जिन जइयो भाय । भूले चूके कबहु न जाहु । लोभ नलिनि पें चुगा न खाहु ॥४॥ दुर्जन मोह दगाके काज । बांधी नलनी तल घर

नाज ॥ तुम जिन बैठहु सुवा सुजान ॥ ना विषयसुख कहिं तिहं थान ॥५॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दृढ़ जिन गहियो ॥ जो दृढ़ गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो तो तजि भजि जइयो ॥ ६ ॥ इह विधि सुआ पढ़ायो नित । सुवटा पढ़िके भयो विचित्त ॥ पढ़त रहे निशदिन ये बैन । सुनत लहै सब प्राती चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुवटै आई मनै । गुरु संगत तज भज गये वनै ॥ वनमें लोभ नलिनि अति बनी । दुर्जन मोह दगाको तनी ॥ ८ ॥ तो तरु विषयभोगअन घरे । सुवटै जान्यो ये सुख खरे । उतरे विषयसुखनके काज । बैठे नलिनपै विलसे राज ॥९॥ बैठो लोभ नलिनपै जबै । विषय स्वाद रस लटको तबै ॥ लटकत तरैं उलटि गये भाव । तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥ १० ॥ नलिनी दृढ़ पकरें पुनि रहे । मुखतें वचन दीनता कहे ॥ कोउ न तहां छुड़ावनहार । नलनी पकरहि करहिं पुकार ॥११॥ पढ़त रहै गुरुके सब बैन । जे जे हितकर रखिये ऐन ॥ सुवटा वनमें उड़ जिन जाहु । जाहु तो भूल चुगा जिन खाहु ॥ १२ ॥ नलनीके जिन जइयो तीर । जाहु तो तहां न बैठहु वीर ॥ जो बैठो तो दृढ़ जिन गहो । जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो ॥ १३ ॥ जो पकरो तो चुगा न खइयो । जो तुम खावो तो उलट न जइयो ॥ जो उलटो तो तज भज घइयो । इतनी सीख हृदयमें लहियो" ॥१४॥ ऐसे वचन पढ़त पुन रहै । लोभ नलनि तज भज्यो न चहै ॥ आयो दुर्जन दुर्गतिरूप । पकड़े सुवटा सुन्दर भूप ॥ १५ ॥ डारे दुखके जाल मंझार । सो दुख कहत न आवैं पार ॥ भूख प्यास बहु संकट सहै । परवस

परे महां दुख लहै ॥ १६ ॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई। यह तो बात और कछु भई ॥ आय परे दुखसागर मांहि। अब इततैं कितको भज जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर। सुवटै जियमें ठानी और ॥ यह दुख जाल कटै किहँ भांति। ऐसी मनमें उपजी खांति ॥१८॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै। पाप जाल काटन चित धरै ॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघ जाल। सुमरन फल भयो दीनदयाल ॥ १९ ॥ अब इततैं जो भजकें जाऊं। तौ नलनीपर बैठ न खाऊं ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥ आये उड़त बहुर वनमाहिं। बैठ नरभव द्रुमकी छांहिं ॥ तित इक साधु महां मुनिराय। धर्मदेशना देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह संसार कर्मवन रूप। तामहिं चेत सुआ अनूप ॥ पढ़त रहै गुरु बचन विशाल। तौ हू न अपनी कर सम्भाल ॥२२॥ लोभ नलिनपैं बैठे जाय। विषय स्वाद रस लटके आय। पकरहि दुर्जन दुर्गति परै। तामें दुःख बहुत जिय भरै ॥ २३ ॥ सो दुख कहत न आवे पार। जानत जिनवर ज्ञानमंझार ॥ सुनतैं सुवटा चौंक्यो आप। यह तो मोहि परयो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे। जो मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुवटा सोचै हिये मंझार। ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरयो करम वनमाहिं। ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो। सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरु स्तुति कर वारंवार। सुमिरै सुवटा हिये मंझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो। घटके पट खुल सम्यक् थयो ॥२७॥ समकित होत लखी सब बात। यह

मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहिं धरे । पुद्गल रागादिक परिहरे ॥ २८ ॥ आप मगन अपने गुणमाहिं । जन्म मरण भय जिनको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये । कर्म कलङ्क सबहि तज दिये ॥ १९ ॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश । दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान । दिन दिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥३०॥ अनुक्रम शिवपद जियको भया । सुख अनंत विलसत नित नया ॥ सतसंगति सबको सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ ३१ ॥ केवलिपद आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान संजूत ॥ सुख अनन्त विलसै जिय सोय । जाके निजपद परगट होय ॥३२॥ सुवाबत्तीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान । सुख अनन्त विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥ ३३ ॥ संवत सत्रह त्रैपन माहिं । अश्विन पहले पक्ष कहाहिं ॥ दशमीं दशों दिशा परकाश । गुरु संगति तैं शिव सुखभास ।

---

(२३) एकीभावभाषा।

दोहा—वादिराज मुनिराजके, चरणकमल चित लाय ।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपरसुखदाय ॥

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी । सो मुझ कर्म प्रबन्ध करत भव भव दुःखभारी ॥ ताहि तिहारी भक्ति जगत रविजो निरवारै । तो अब और कलेश कौनसो नाहिं विदारै ॥१॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरित अंधयार निवारी । सो गणेश गुरु

कहैं तत्वविद्याघन धारी॥ मेरे चितघर माहिं बसो तेजोमय यावत। पापतिमर अवकाश तहां सो क्यों कर पावत॥१॥ आनंद आंसू वदन धोय तुम सो चित सानै। गद्‌गद सुर सों सुयश मंत्र पढ़ पूजा ठानै॥ ताके बहुविधि व्याधव्याल चिरकाल निवासी। भाजैं थानक छोड़ देहबांवईके बासी॥२॥ दिवसे आवनहार भये भवि भाग उदयबल। पहले ही सुर आय कनकमय कीन महीतल॥ मन गृह ध्यान दुवार आय निवसे जगनामी। जो सुवर्ण तन करो कौन यह अचरज स्वामी॥४॥ प्रभु सब जगके बिना हेतु बंधव उपकारी। निरावर्ण सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥ भक्ति रचित मम चित्त सेज नित बास करोगे। मेरे दुःख सन्ताप देख किम धीर धरोगे॥५॥ भववनमें चिरकाल भ्रमो कछु कही न जाई। तुम थुति कथा पियूष वापिका भागन पाई॥ शशितुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम। करत न्हौन तिस माहिं क्यों न भव ताप बुझै मम॥६॥ श्रीविहार परिवार होत शुचिरूप सकल जग। कमल कनक आभास सुरभि श्रीवास धरत पग॥ मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अब सो कौन कल्याण जो न दिन दिन ढिग आवै॥७॥ भव तज सुखपद बसे काम मद सुभट संघारे। जो तुमको निरखंत सदा प्रियदास तिहारे। तुम वचनामृत पान भक्ति अंजुलिसों पीवै। तिसे भयानक क्रूर रोग रिपु कैसे छीवै॥८॥ मानथंभ पाषाण आन पाषाण पटंतर। ऐसे और अनेक रत्न दीखैं जग अन्तर॥ देखत दृष्टि प्रमाण मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्यों कर पावै॥९॥ प्रभुतन पर्वत परस पवन

उरमें निवहे हैं । तासों तत्क्षण सकल रोगरज वाहिर है है । जाके ध्यानाहूत वसो उर अंबुज माहीं । कौन जगत उपकार करण समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जन्म जन्मके दुःख सहे सब ते तुम जानो । याद किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानो । तुम दयालु जगपाल स्वामि मैं शरण गही है । जो कुछ करना होय करो परमाण वही है ॥११॥ मरण समय तुम नाम मंत्र जीवक तैं पायो । पापाचारी स्वान प्राण तज अमर कहायो । जो मणि माला लेय जपै तुम नाम निरन्तर । इन्द्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥१२॥ जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधैं । अनवधि सुखकी सार भक्ति ताली नहिं लाधैं । सो शिव वंछिक पुरुष मोक्षपट केम उघारे । मोह मुहर दिढ़करी मोक्षमन्दरके द्वारे ॥१३॥ शिवपुर केरो पंथ पापतम सो अति छायो । दुःख स्वरूप बहु कपट खाड़ सो विकट बतायो ॥ स्वामी सुख सो तहां कौन जनमारग लागे । प्रभु प्रवचन मणिदीप जानहैं आगें आगें ॥१४॥ कर्म पटल भूमाहिं दबी आत्म निधि भारी । देखत अति सुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥ तुम सेवक तत्काल ताहि निश्चय कर धारैं । थुति कुदाल सों खोद बंद भू कठिन विदारैं ॥१५॥ स्याद्वाद गिर उपज मोक्ष सागर लों धाई । तुम चरणांबुज परम भक्तिगंगा सुखदाई । मोचित निर्मल थयो न्हौन रुचि पूरव तामैं । अब वह हों न मलीन कौन जिन संशय यामैं ॥१६॥ तुम शिवसुखमय प्रकट करत प्रभु चिन्तवन तेरो । मैं भगवान् समान भाव यों वरतै मेरो ॥ यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै । तुम प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै ॥१७॥ वचन

जलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै। भंग तरंगिनि विकथ बाद मल मलिन उथापै॥ मन सुमेरु सों मथै ताहि जे सम्यकज्ञानी। परमामृत सों तृप्त होहिं ते चिरलों प्राणी॥१८॥ जो कुदेव छबि हीन बसन भूषण अभिलाषै। बैरी सों भयभीत होय सो आयुध राखै॥ तुम सुन्दर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई॥ भूषण बसन गदादि ग्रहण काहेको होई॥ १९॥ सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी। सोशलाघना लहै मिटै जग सों जग फेरी। तुम भव जलधि ज़हाज तोहि शिव कंत उचरिये। तुही ज़गत् जनपाल नाथ थुतिकी थुति करिये॥२०॥ वचन जाल जड़ रूप आप चिन्मूरति झांई। तातै थुति आलाप नाहिं पहुंचै तुम तांई। तो भी निष्फल नाहिं भक्तिरस भीने वायक। सन्तनको सुरतरु समान वांछित वर दायक॥२१॥ कोप कभी नहिं करो प्रीत कबहुं नहिं धारो। अति उदास बेचाह चित्त जिनराज तिहारो॥ तदपि आन जग वहै बेर तुम निकट न लहिये। यह प्रभुता जग तिलक कहां तुम बिन सरधैये॥२२॥ सुर तिय गावै सुयश सर्व गति ज्ञान स्वरूपी॥ जो तुमको थिर होहि नमैं भवि आनन्द रूपी॥ ताहि क्षेमपुर चलन बाट वाकी नहि हो है। श्रुतिके सुमरण माहिं सो न कब हीं नर मोहै॥ २३॥ अतुल चतुष्टयरूप तुमैं जो चितमें धारै॥ आदर सो तिहुंकाल माहिं जग थुति विस्तारै॥ सो सुकृत शिवपन्थ भक्ति रचना कर पूरै। पंचकल्याणक ऋद्धि पाय निश्चय दुख चूरै॥२४॥ अहो जगत-पति पूज्य अवधिज्ञानी मुनि हारे। तुमगुण कीर्तन माहिं कौन हम मन्द विचारे॥ स्तुतिछल सों तुम विषै देव आदर विस्तारे।

शिवसुख पूरणहार कल्पतरु यही हमारे ॥ १९ ॥ वादिराज मुनिराज शब्दविद्याके स्वामी। वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी ॥ वादिराज मुनिराज काव्य करता अविकारी। वादिराज मुनिराज बड़े भविजन उपकारी ॥१६॥

दोहा—मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषा सूत्र मंझार ॥
भक्तिमाल भूधर करी, करो कण्ठ सुखकार ॥१॥

---

(२४) नामावली स्तोत्र।

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते। जय जिनंद जित फंद नमस्ते ॥ जय जिनंद वरबोध नमस्ते। जय जिनंद जित क्रोध नमस्ते ॥ १ ॥ पाप ताप हर इन्दु नमस्ते। अर्हं वरन जुत बिन्दु नमस्ते ॥ शिष्टाचार विशिष्ट नमस्ते। इष्ट मिष्ट उतकृष्ट नमस्ते ॥ २ ॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते। मर्म भर्म धन घर्म नमस्ते ॥ दृगविशाल वर भाल नमस्ते। हृद दयाल गुनमाल नमस्ते ॥३॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते। रिद्धिसिद्धि वर वृद्ध नमस्ते॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते। चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते ॥ ४ ॥ स्वच्छ गुणांबुधि रत्न नमस्ते। सत्व हितंकर यत्न नमस्ते ॥ कुनयकरी मृगराज नमस्ते। मिथ्या खगवर बाज नमस्ते ॥ ५ ॥ भव्य भवोदधि पार नमस्ते। शर्मामृत सित सार नमस्ते ॥ दरश ज्ञान सुखवीर्य नमस्ते। चतुरानन धर धीर्य नमस्ते ॥६॥ हरिहर ब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोह मर्द मनु जिष्णु नमस्ते॥ महा दान महभोग नमस्ते। महा ज्ञान मह जोग नमस्ते ॥ ७ ॥ महा उग्र तप सूर

नमस्ते। महां मौन गुण भूरि नमस्ते ॥ धरम चक्रि वृष केतु नमस्ते। भवसमुद्र शत सेतु नमस्ते ॥८॥ विद्याईश मुनीश नमस्ते। इन्द्रादिक नुत शीस नमस्ते ॥ जय रत्नत्रय राय नमस्ते। सकल जीव सुखदाय नमस्ते ॥९॥ अशरण शरण सहाय नमस्ते। भव्य सुपन्थ लगाय नमस्ते ॥ निराकार साकार नमस्ते। एकानेक अधार नमस्ते ॥१०॥ लोकालोक विलोक नमस्ते। त्रिधा सर्व गुण थोक नमस्ते। सल्ल दल्ल दल मल्ल नमस्ते। कल्ल मल्ल जित लल्ल नमस्ते ॥११॥ भुक्ति मुक्ति दातार नमस्ते। उक्ति सुक्ति श्रृंगार नमस्ते ॥ गुण अनन्त भगवन्त नमस्ते। जै जै जै जयवन्त नमस्ते ॥१२॥

इति पठित्वा जिनचरणाग्रे परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

---

(२५) छहढाला।

(पं० बुधजनकृत)

सर्व द्रव्यमें सार, आतमको हितकार है।
नमों ताहि चितधार, नित्य निरंजन जानके ॥ १ ॥

अथ प्रथम ढाल १६ मात्रा (चौपाई छन्द)

(इसमें जीवोंके संसारभ्रमणदुःखका कथन है)

आयु घटे तेरी दिनरात। हो निश्चिन्त रहो क्यों भ्रात ॥ यौवनतनधनकिंकरनारि। हैं सब जलबुंद बुद उनहारि ॥ १ ॥ पूरे आयु बढ़े क्षणनाहिं। दियें क्रोड़ धन तीरथ माहिं। इन्द्र चक्रपत भी क्या करें। आयु अन्तपर ते भी मरें ॥२॥ यो संसार

१ जलबुद २—पानीके बुलबुले समान है।

असार महान । सार आपमें आपा जान । सुखके दुख दुखसे सुख होय। समता चारों गति नहिं कोय ॥३॥ अनन्तकाल गति गति दुख सह्यो। बाकी काल अनन्ता कह्यो। सदा अकेला चेतन एक। तो माहीं गुण बसत अनेक ॥४॥ तू न किसीका तार न कोय। तेरा दुख सुख तोको होय। यासे तुझको तू उरधार। परद्रव्योंसे मोह निवार ॥५॥ हाड़ मांस तन लिपटा चाम। रुधिर मूत्रमल पूरित धाम। सो भी थिर न रहै क्षय होय। याकों तजे मिले शिवलोय ॥ ६ ॥ हित अनहित तनकुलजनमाहिं। खोटीबानि हरो क्यों नाहिं। यासे पुद्गल कर्म नियोग॥ प्रणवे दायक सुख दुःख रोग ॥ ७ ॥ पांचों इंद्रियके तज फैल। चित्त निरोध लागि शिवगैल। तुझमें तेरी तू कर सैल। रहो कहाहो कोल्हु बैल ॥८॥ तज कषाय मनकी चलचाल। ध्यावो अपना रूप रसाल। झड़े कर्म बन्धन दुःखदान। बहुरि प्रकाशे केवलज्ञान ॥९॥ तेरा जन्म हुआ नहीं जहां। ऐसो क्षेत्र जो नाहीं कहां॥ याही जन्म भूमिका रचो। चलो निकलतो विधिसे बचो ॥१०॥ सब व्यवहार क्रियाको ज्ञान। भयो अनंतवार प्रधान। निपटकठिन अपनी पहि-

---

८ चित्त निरोध–मनको पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे रोककर मोक्षके रस्ते पर लगा शुद्ध सम्यक्त पालो।

१० सब व्यवहार कियाका ज्ञान–इस जीवने जितने संसारमें इलम हुनर हैं। संसारी कर्तव्यका ज्ञान अनन्ती ही वार पाया है। इनके पानेसे जीव आत्माको कुछ भी सुख नहीं हुआ, चारों गतिके दुःख भोगता रुलता ही फिरा। यदि एक वार भी सम्यक्त पालेता तो अनंते जन्ममरणके दुखोंसे छूटकर शाश्वते सुख भोगता।

चान । ताको पावत होय कल्याण ॥ ११ ॥ धर्म स्वभाव आप श्रद्धान । धर्म न शील न न्हौन न दान । बुधजन गुरुकी सीख विचार । गहो धर्म आपन निर्धार ॥१२॥

अथ द्वितीय ढाल २८ मात्रा (नरेन्द्र छन्द) इसमें प्रथम ढालमें कहे हुवे प्रयोजनका कारण, ग्रहीत अग्रहीत मिथ्या दर्शन, ज्ञान तथा चारित्रका कथन है।

सुन रे जीव कहतहो तुझसे तेरे हितके काजे । हो निश्चल मन जो तू धारे तो कुछ इक तोहि लाजे ॥ जिस दुःखसे थावर तनपायो वरण सकों सो नाहीं । अठारह बार मरा और जन्मा एक स्वासके माहीं ॥१॥ काल अनन्तानन्त रहो यों फिर विकल-त्रय हूवो । बहुरि असैनी निपट अज्ञानी क्षण क्षण जन्मो मूवो । पुण्य उदय सैनी पशु हूवो बहुत ज्ञान नहीं भालो । ऐसे जन्म गए कर्मोंवश तेरा जोर न चालो ॥ २ ॥ जबर मिलो तब तोहि सतायो निबल मिलो तें खायो । मात त्रिया सम भोगी पापी तातें नर्क सिधायो ॥ कोटिक विच्छू काटें जैसे ऐसी भूमि जहां है । रुधिर राधि जलछार बहे जहां दुर्गंधि निपट तहां है ॥३॥ घाव करें असिपत्र अंगमें शीत उष्ण तन गालें । कोई काटें करवत गहिकर केई पावक जालें यथायोग्य सागरस्थिति भुगतें दुःखका अन्त न आवे । कर्म विपाक ऐसा ही होवे मानुषगति तब पावे ॥४॥ मात उदरमें रहै गेंद हो निकसत ही विललावे ।

४ सागर—की गिणती बहुत ही बड़ी है जो किरोड़ान किरोड़ वर्ष बीतं जांय तो भी एक सागरकी स्थिति पूरी न हो। इसे त्रिलोक-सारादि ग्रन्थोंमें देखना चाहिये ।

डावा दांक कलां विस्फोटक डांकनसे बच जावे ॥ तो यौवनमें भामिनके संग निशिदिन भोग रचावे। अन्धा हो धन्धा दिन खोवे बूढ़ा नाहि हलावे ॥५॥ यम पकड़े तब गोर न चाले सैन ही सैन बतावे । मन्द कषाय होय तो भाई भवनत्रक पद पावे ॥ परकी सम्पति लखि अति झूरके रति काल गमावे । आयु अन्त माला मुरझावे तब लख लख पछतावे ॥६॥ तहांसे चलके थावर होवे रुलता काल अनन्ता । या विधि पंच परावर्तन दे दुखका नाहीं अन्ता । काललब्धि जिन गुरु कृपासे आप आपको जाने । तब ही बुधजन भवोदधि तरके पहुंच जाय निर्वाणे ॥ ७ ॥

अथ तृतीय ढाल ।

जिसमें सम्यक्त होनेका वर्णन है ।

इसविधि भववनके माहिं जीव । वशमोह गहल सोता सदीव । उपदेश तथा सहजहि प्रबोध । तब जागो ज्यों रण उठत योध ।१॥ तब चिन्तत अपनेमाहिं आप । मैं चिदानन्द नहिं पुण्यपाप ॥ मेरे नाहीं हैं रागभाव । ये तो विधिवस उपजें विभाव ॥२॥ मैं नित्य निरंजन शिव समान । ज्ञानावरणी आच्छादा ज्ञान ॥ निश्चय शुद्ध इक व्यवहारभेव । गुणगुणी अंग अंगी अतेव ॥३॥ मानुष सुर नारक पशु पर्याय । शिशु ज्वान वृद्ध

५ विस्फोटक—बच्चोंको माता याने चेचकका निकलना । ६ लख देखना–भवनत्रक पद । व्यंतर, ज्योतिषी, भवनवासी, इन तीन प्रकारके देवोंको कहते है ।

२। आछादा—ढांक लिया । अर्थात् ज्ञानावरणी कर्म ज्ञानको ढंके है ।

३। भेव—भेद (फरक) अतेव—इसी वास्ते, अर्थात् जीव और पर-

बहुरूप काय ॥ धनवान दरिद्री दास राव । यह तो विडम्ब मुझे ना सुहाय ॥ ४ ॥ स्पर्श गंध रसवर्ण नाम । मेरो नाहीं मैं ज्ञान धाम॥ मैं एकरूप नहीं होत और। मुझमें प्रतिबिम्बित सकल ठौर ॥ ५ ॥ तन पुलकत वर हर्षित सदीव। ज्यों भई रंक गृह निधि अतीव । जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय । तब चितपरणति ऐसी उपाय ॥ ६ ॥ सो सुनो भव्य चित धारकान । वर्णत मैं ताकी विधि विधान॥ सब करें काज घर माहिं बास। ज्यों भिन्न कमल जलमें निवास ॥ ७ ॥ ज्यों सती अंगमाहीं शृंगार । अति करे प्यार ज्यों नगरनारि ॥ ज्यों धाय चुखवति अन्य बाल ॥ त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥ ८ ॥ जो उदय मोह चारित्रभाव । नहीं होत रंच हू त्यागभाव ॥ तहां करें मन्द खोटे कषाय । घरमें उदास हो अथिर थाय ॥९॥ सबकी रक्षायुत न्याय नीति। जिन शासन गुरुकी दृढ़ प्रतीति ॥ बहु रुले अर्द्धपुद्गल प्रमाण । शीघ्र ही महूरत ले परम थान ॥ १० ॥ वे धन्य जीव धनभाग्य सोइ । जिनके ऐसी सुप्रतीति होइ ॥ तिनकी महिमा है स्वर्ग लोइ । बुधजन भाषे मोसे न होइ ॥११॥

अथ चतुर्थ ढाल।

इसमें व्यवहार सम्यग्दर्शन कथन है।

सोरठा छन्द—ऊगो आतम सूर दूर गयो मिथ्यात्त्व तम् । अब प्रगटो गुणपूर ताको कुछइक कहत हों ॥ शंका मनमें नाहिं तत्त्वारथ श्रद्धानमें । निर्वांछिक चित माहिं परमारथमें रत

आत्मामें असली भेद नहीं व्यवहार भेद है। इसी हेतु एक अंग (गौण) और एक अंगी (प्रधान) है। ४ शिशु-बालक अवस्था।

रहे ॥ २ ॥ नेक न करते ग्लान बाह्य मलिन मुनिजन लखें। नाहीं होत अजान तत्त्व कुतत्त्व विचारमें ॥३॥ उरमें दया विशेष गुण प्रगटें औगुण ढकें। शिथिल धर्ममें देख जैसे तैसे थिरकरें ॥ ४ ॥ साधर्मी पहिचान करें प्रीति गोवच्छसम। महिमा होय महान् धर्म कार्य ऐसे करें ॥५॥ मद नहीं जो नृप तात मद नहीं भूपतिवानको। मद नहीं विभव लहात मद नहीं सुन्दर रूपको ॥६ ॥ मद नहीं होय प्रधान मद नहीं तनमें जोरका। मद नहीं जो विद्वान् मद नहीं सम्पति कोषका ॥७॥ हूवो आत्मज्ञान तज रागादि विभाव पर। ताको हो क्यों मान जात्यादिक वसु अथिरका ॥ ८ ॥ वंदत हैं अरिहंत जिन मुनि जिन सिद्धांतको। नवें न देख महन्त कुगुरु कुदेव कुधर्मको ॥ ९ ॥ कुत्सित आगम देव कुत्सित पुन सुरसेवकी प्रशंसा षट् भेव करें न सम्यक्वान् हैं ॥ १० ॥ प्रगटो ऐसा भाव किया अभाव मिथ्यात्त्वका। वन्दत ताके पांव बुधजन मनवचकायसे ॥ ११ ॥

अथ पंचम ढाल।

जिसमें बारह व्रतका वर्णन है।

मनहर छन्द–तिर्यंच मनुष दोय गतिमें। व्रत धारक श्रद्धा चित्तमें। सो अगलित नीर न पीवें। निशि भोजन तजे

भिन्नकमल=कमलका फूल चाहे जितना पानी हो न पानीसे ऊपर ही रहता है ऐसा समदृष्टि घरमें रहकर भी अपने परिणाम गृहस्थीसे अलग और धर्मसे तल्लीन रखता है। ८। नगरनार=वेश्या॥

१० कुत्सित आगम देव=कुदेव कुशास्त्रकी सेवा, प्रशंसा समदृष्टी नहीं करता है।

सर्दीवें ॥ १ ॥ मुख वस्तु अभक्ष न खावें। जिन भक्ति त्रिकाल रचावें। मन वच तन कपट निवारे। कृतकारित मोद सम्हारे। जैसे उपशमित कषांया। तैसा तिन त्याग कराया। कोई सात व्यसनको त्यागें। कोई अणुव्रत तप लागे। त्रस जीव कभी नहीं मारें। वृथा थावर न संहारें। परहित बिन झूठ न बोलें। मुख सत्य विना नहिं खोलें। जल मृतिका बिन धन सब ही। बिन दिये न लेवें कब ही। व्यांही वनिता विन नारी। लघु बहिन बड़ी महतारी। तृष्णाका जोर संकोचें। ज्यादे परिग्रहको मोचें॥ दिशिकी मर्यादा लावें। बाहर नहीं पांव हलावें। तामें भी पुरसर सरिता। नित राखत अघसे डरता। सब अनर्थदंड ना करते। क्षण २ जिनधर्म सुमरते। द्रव्य क्षेत्र काल शुभ भावे। समता सामायिक ध्यावे। प्रोषध एकाकी हो है। निष्किंचन मुनि ज्यों सो हैं। परिग्रह परिणाम विचारें। नित नेम भोगका धारें। मुनि आवन वेला जावे। तब योग्य अशन मुख लावे। यों उत्तम कारज करता। नित रहत पापसे डरता। जब निकट मृत्यु निज जाने। तब ही सब ममता भाने। ऐसे पुरुषोत्तम केरा। बुध-जन चरणोंका चेरा॥ वे निश्चय सुर पद पावें। थोड़े दिनमें शिव जावें॥

---

१ अगलित नीर—आसमानसे पड़े हुवे ओले या गड़े, बर्फ वा अनछाणा पानी इनको नहिं खाना पीना चाहिये।

२ अभक्ष्य जो २२ अभक्ष्य हैं सो धर्मात्माओंको खाने नहीं चाहिये।

४ त्रसजीव=चलता हलता जीव। थावर—मिट्टी पानी आग हवा बनस्पति। मृतका=मट्टी।

अथ षष्टम ढाल ।

जिसमें मुनिधर्मका कथन है ।

रोला छन्द–अथिर ध्याय पर्याय भोगसे होय उदासी । नित्य निरंजन ज्योति आतमा घटमें भासी ॥ सुतदारादि बुलाय सबसे मोह निवारा । त्यागनगर बनधाम वास वन बीच विचारा ॥१॥ भूषण बसन उतार नग्न हो आतम चीन्हा । गुरुतटदीक्षा धार शीश कच लुंच जु कीन्हा ॥ त्रसथावरका घात त्याग मन वच तन लीना । झूठ वंचन परिहार गहें नहीं जल बिन दीना ॥२॥ चेतन जड़ त्रिय भाग तजो भवभव दुःखकारा । अहि[१] कंचुकि जों तजत चित्तसे परिग्रह डारा ॥ गुप्त पालने काज कपट मन वच तन नाहीं । पांचों समिति सम्हाल परीषह सहि हैं आहीं ॥३॥ छोड़ सकल जगजाल आपकर आप आपमें । अपने हितको आप किया है शुद्ध जापमें ॥ ऐसी निश्चल कायं ध्यानमें मुनिजन केरी । मानो पत्थर रची किधों चित्राम चितेरी ॥ ४ ॥ चारि घातिया घात ज्ञानमें लोक निहारा ॥ दे जिन मति उपदेश भव्योंको दुःखसे टारा । बहुरि अघातिया तोड़ समयमें शिवपद पाया । अलख अखंडित ज्योति शुद्ध चेतानि ठहराया ॥ ५ ॥ काल अनन्तानन्त जैसे के तैसे रहिहैं । अविनाशी अविकार अचल अनुपम सुख लहिहै । ऐसी भावना भाय ऐसे जों कार्य करे हैं । सो [illegible] होंय दुष्ट कर्मोंको हरे हैं ॥६॥ जिनके उर

---

१ अहि–सर्प । कंचुकी–सर्पकी कांचली । जैसे सर्प कांचलीको पुरानी निकम्मी समझकर त्याग करता है इसी तरह धर्मात्मा पुरुष परिग्रहको अति पापका मूल जानकर त्याग देते हैं ।

विश्वास वचन जिन शासन नाहीं ॥ ते भोगातुर होय सहैं दुख नर्कों माहीं ॥ सुख दुख पूर्व विपाक अरे मत कल्पै जीया । कठिन २ कर मित्र जन्म मानुषका लीया ॥७॥ ताहि वृथा मत खोय जोय आपा पर भाई ॥ गये न मिलती फेर समुद्रमें डूबी राई । भला नर्कका बास सहित जो सम्यक पाता ॥ बूरे बने जो देव नृपति मिथ्या मद माता ॥ ८ ॥ ना खर्चै धन होय नहीं काहूसे लरना । नहीं दीनता होय नहीं घरका परिहरना ॥ सम्यक सहज स्वभाव आपका अनुभव करना । या विन जप तप व्यर्थ कष्टके माहीं परना ॥ ९ ॥ कोड़ बातकी बात अरे बुधजन उर धरना । मन वच तन शुचि होय गहो जिन वृषका शरणा । ठरिहंसौ पंचास अधिक नव सम्बत् जानो ॥ तीज शुक्ल वैशाख ढाल षह शुभ उपजानो ॥ १० ॥

इति छह ढाला पण्डित बुधजनकृत सम्पूर्णम् ।

---

(२६) निशिभोजन कथा ।

(कविवर भूधरदासजीकृत)

दोहा—नमो शारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप ।
निशभोजन भुंजन कथा, लिखूं सुगम संक्षेप ॥१॥

जम्बूद्वीप जगत् विख्यात् । भरतखंड छवि कहियन जात ॥ तहां देशकुरु जांगल नाम । हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥२॥ यशोभद्र भूपति गुण बास । रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास ॥ आश्विनि मास तिथि दिन आराध । पहली पड़वा कियो सराध ॥३॥ बहुत

विनयसों नगरी तने । न्योत जिमाये ब्राह्मण घने ॥ दान मान सबहीको दियो । आप विप्र भोजन नहिं कियो ॥४॥ इतने राय पठायो दास । प्रोहित गयो रायके पास ॥ राज काज कछु ऐसो भयो । करत करावत सब दिन गयो ॥५॥ निशिमें नारि रसोई करी । चूल्हे ऊपर हांड धरी ॥ हींग लैन उठ बाहर गई । यहां विधाता औरहि ठई ॥६॥ मैंडक उछल परो तामाहिं । विप्रि तहां कछु जानो नाहिं ॥ बैंगन छौंक दिये तत्काल । मैंडक मरो होय बेहाल ॥ ७ ॥ तबहु विप्र नहिं आयो धाम । धरी उठाय रसोई ताम ॥ पराधीनकी ऐसी बात । औसर पायो आधी रात ॥८॥ सोय रहे सब घरके लोग । आग न दीवा कर्म संयोग ॥ भूखो प्रोहित निकस प्रान । ततक्षण बैठो रोटी खान ॥९॥ बैंगन भेले लीनो पास । मैंडक मुंहमें आयो तास ॥ दांतन तले चबो नाहिं जबै । काढ़ धरो थालीमें तबै ॥ १० ॥ प्रात हुए मैंडक पहिचान । तौभी विप्र न करी गिलान ॥ थिति पूरी कर छोड़ी काय ॥ पशुकी योनि ऊपनो आय ॥११॥

सोरठा—घूघू कागे विलावै साबर गिरैध पखेरुवा ।
सूकैर अजगर भाव, वार्घ गोहै जलमें मंगर॥१२॥

दश भव इहि विध थाय, दसों जन्म नरकहि गया । दुर्गति कारण पाय, फलो पाप वट बीजवत् ॥१३॥

चौपाई—देशनाम करहाट सुखेत । कौशल्या नगरी छवि देत ॥ तहां संग्राम शूर भूपाल । विना युद्ध जीते रिपुजाल ॥१४॥ राजा प्रोहित लोभसं नाम । ताकैं तिय शोभा अभिराम ॥ तिनकै

रुद्रदत्तबर वही। महीदत्त सुत उपनो सही ॥ १५ ॥ खोटी संगतिके बश होय। सबै कुलक्षण सीखो सोय ॥ सबै कुव्यसन करै न कान। बहुत द्रव्य खोयो विन ज्ञान ॥१६॥ मात पिता तब दियो निकास। मामाके घर गयो निरास॥ तिन भी तहां न आदर कियो। शीश फेर पग आगे दियो ॥१७॥ मारगके बश पहुंचो सोय। जहां बनरसको बन होय ॥ भेटे साधु अशुभ अवसान। नमस्कार कीनो तज मान ॥ १८॥ पूंछ महीदत्त सिर नाय। मैं क्यों दुखी भयो मुनिराय ॥ पर उपकारी मुनिजन सही। पूरव जन्म कथा सब कही ॥१९॥ निशभोजन तें बिरधो पाप। तातें भयो जन्म संताप ॥ फिर तिन दियो धर्म उपदेश। जातैं बहुर न होय कलेश ॥२०॥ गुरुकी शिक्षा ग्रह व्रत लये। मनके दुक्ख दूर सब गये ॥ कर प्रमाण आयो निज गेह। मात पिता अति कियो सनेह ॥२१॥ स्वजन लोक मन अचरज भयो। देख सुलक्षण सब दुख गयो ॥ राजा बहुत कियो सनमान। भयो विप्र सुत सब सुख मान ॥२२॥ बढ़ी संपदा पुन्यसंयोग। छहों कर्म साधे पुनि योग ॥ कियो देव मंदिर बहु भाय। सुवरणमय प्रतिमा पधराय ॥ २३ ॥ धर्म शास्त्र लिखवाए जान। बहुविध दियो सुपात्रहि दान ॥ ऐसे धर्महेत धन वोय। उपजो

---

१३ बड़का बीज जरासा होता है और उसके बोनेसे पेड़का विस्तार बहुत ही बड़ा होजाता है। यही हाल पापका है, जो करते वक्त तो अपनेको बड़े चलाक समझकर खुश होते हैं और जब भोगना पड़ता है, नरकों निगोदोंका दुख तब रोते हैं! याद करते हैं! हाय! मैंने ऐसे पाप क्यों करे, परंतु 'फिर पछताये होत क्या चिड़ियां चुन गईं खेत' ॥

अंत अच्युत सुर होय ॥२४॥ वर्द्धि आव जहां भोग विशाल। सुखमें ज्ञात न जाने काल। थित अवसान तहां तै चयो। भरत-खंड सुमानुष भयो ॥१९॥ देश अवंती नगर उजैन। पिरथमिल राजा बहुसेन ॥ प्रेमकारिणी राणी सती। तिनके पुत्र भयो शुभ-मती ॥ २६ ॥ नाम सुधारस परम सुजान। रूपवंत गुणवंत महान। यौवन वैस विकार न कोय। भोग विमुख वरतै नित सोय ॥२७॥ धर्मकथारसरागी सदा। गीत निरत भावै नहिं कदा। एक दिना वाड़ीमें गयो। वनविहार देखन चित दियो ॥ २८ ॥ तहां एक जो वृक्ष महान। देखो सघन छांहि छवि-वान ॥ शाखा प्रतिशाखा बहु जास। बहु विधि पंछी पथिक निवास ॥२९॥ वन विहार कर फिरियो जवै। वज्र दह्यो तरु देख्यो तवै ॥ उर वैराग थयो तिहुकाल। जानो अथिर जग-तको ख्याल ॥३०॥ जो जगमें उपजे कछु लाय। सो सब ही थिर रह न कोय। विघटत बार लगै नहीं तास। तन धनकी सब झूंठी आस ॥३१॥ काल अगनि जगमें लहलहै। सुके तृण सम सबको दहै॥ यह अनादिकी ऐसी रीत। मोहि उदय समझे विपरीत ॥३२॥ यह विधि बुद्ध यथारथ भई। परमारथ पथ सन्मुख ठई। राजभोगसों भयो उदास। निस्पृह चित्त गयो गुरु पास ॥३३॥ सतगुरु साख योगपथ लियो। इच्छा छोड़ घोर तप कियो ॥ ध्यान हुताशन हिरद जगी। समता-पवन पाय जगमगी ॥३४॥ कर्म काठ दाहे बहुभेव। भयो मुक्ति अजरामर देव ॥ आतमते परमातम भयो। आवागमनरहित थिर थयो ॥ ३५ ॥

३१ विघटत-विनाश होना, विलाय जाना बिगड़ना। ३४। हुताश-अग्नि।

रजनी भुंजनकथा बरणई । यथा पुराण समापति भई ॥ पापधर्मको फल यह भाय । भली लगै सो कर मन लाय ॥ ३६ ॥

सोरठा—प्रगट दोष अविलोय, निशभोजन करिये नहीं ।
इस भव रोग न होय, परभव सब सुख संपजै ॥३७॥

छप्पय—कीड़ी बुध बलहरै कंपगद करै कसारी । मकड़ी कारण पायकोढ़ उपजै दुख भारी ॥ जुआं जलोदर जनै फांस गल विथा बढ़ावै । बाऊ करे सुरभंग वमन माखी उपजावे ॥ तालुवे छिद्र वीच्छु भखत और व्याधि बहु करहिं थल । यह प्रगट दोष निशअशनके । परभव दोष परोक्षफल ॥ ३८ ॥

दोहा—जो अघ इहि दुखकरै, परभव क्यों न करेय ॥ डसत सांप पीड़े तुरत, लहर न क्यों दुख देय ॥ ३९ ॥ सुवचन सुनके क्रोध हो । मूरख मुदित न होय । मणिवर फग फेरे सही, नदी सांप नहिं सोय ॥ ४० ॥ सुवचन सतगुरुके वचन, आर न सुवचन कोय । सतगुर वही पिछानिये, जा उर लोभ न होय ॥ ४१ ॥ भूधर सुवचन सांभलो, स्वपर पक्ष करवौन । सावुत महांमणी मिलै, तोड़ेसे गुण कौन ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीभूधरदासकृत निशिभोजनकथा सम्पूर्णम् ॥

---

३८ वमन=उछटी छरद माखी खा जानेसे होती है ।

(२७) चौबीस दंडक।

दोहा—वन्दो वीर सुधीरको, महावीर गंभीर ।
वर्द्धमान सन्मति महां, देवदेव अतिवीर ॥ १ ॥
गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत ।
अद्भुत अतिगतसुगति जो, जैनेश्वर जगजीत ॥ २ ॥
जाकी भक्ति विना विफल, गए अनंते काल ।
अगिनत गत्यागति धरीं, घटो न जगजंजाल ॥ ३ ॥
चौवीसौ दंडक विषैं, धरीं अनंती देह ।
लख्यो न निजपद ज्ञानबिन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥४॥
जिनवाणी परसादतैं, लहिये आतमज्ञान ।
दहिये गत्यागत्य सब, गहिये पद निर्वाण ॥ ५ ॥
चौवीसौ दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु ।
सुनकर विरकत भाव धर, चहुंगति पानी देहु ॥ ६ ॥

चौपाई—पहिलो दंडक नारिक तनो। भवनपती दैस दंडक भनौं ॥ ज्योतिसे व्यंतरे स्वर्ग निवास। थावर पंच महांदुख रास ॥ ७ ॥ विकलत्रय अरु नर तिर्यञ्च। पंचेंद्री धारक परपंच ॥ यह चौवीस दंडक कहे। अब सुन इनमें भेद जु लहे ॥ ८ ॥ नारककी गति आगति देय। नर तिर्यञ्च पंचेंद्री जोय ॥ जाय असैनी पहला लगे। मन विन हिंसा कर्म न पगै ॥ ९ ॥ सरी-सर्प्प दूजे लौं जाय। अरु पक्षी तीजे लौं थाय ॥ सर्प्प जांय चौथे लौं सही। नाहर पंचम आगे नहीं ॥१०॥ नारी छट्ठे लगही जांय। नर अरु मच्छ सातवें थाय ॥ एतौ नारक आगत कही।

अब सुन नारककी गति सही ॥११॥ नरक सातवेंको जो जीव। पशुगति ही पावै दुखदीव ॥ और सब नारक मर नर पशु। दोउ गति आवैं पर वसू ॥ १२ ॥ छट्ठेको निकसैं जु कदाप। सम्यक् सहित श्रावगनिःपाप ॥ पंचम निकसौ मुनिहूं होय। चौथेको केवलिहू कोय ॥ १३ ॥ तीजे नर्कको निकसो जीव तीर्थंकर भी हो जगपीव ॥ यह नारककी गत्यागती। भाषी जिनवाणीमें सती ॥१४॥ तेरह दंडक देवनिकाय। तिनको भेद सुनों मनलाय। नर तिर्यंच पंचेंद्री बिना। औरनको नहिं सुरपद गिना ॥ १५ ॥ देव मरैं गति पांच लहांहिं। भूजल तरुवर नर तिर माहिं ॥ दूजे सुरग उपरले देव। थावर है न कह्रो जिनदेव ॥१६॥ सहस्रारतैं ऊंचे सुरा। मरकर होवैं निश्चय नरा। भोगभूमिके तिर्यंच नरा। दूजे देवलोकतैं परा ॥१७॥ जाय नहीं यह निश्चय कही। देवन भोग भूमि नहिं गही ॥ कर्मभूमियां नर अरु ढोर। इन बिन भोगभूमिकी ठौर ॥ १८ ॥ जाइन तातैं आगति दोई। गति इनको देवनकी होई ॥ कर्मभूमि या तिर्यंग बुद्ध। श्रावकव्रत धर वारम शुद्ध ॥१९॥ सहसार ऊपर तियच ॥ जाय नहीं तज है परपंच। अव्रत सम्यक्दृष्टी नरा ॥ वारम तैं ऊपर नहिं धरा ॥२०॥ अन्यमती पंचागिनि साध। भवनत्रिक तैं जाइ न वाद ॥ परिव्राजक त्रिदंडी देह। पचम परैं न उपजे जेह ॥२१॥ परमहंस नामें परमती ॥ सहस्रार ऊपर नहिं गती। मोख न पावें परमत मांहि। जैन बिना नहिं कर्म नसांहि ॥२२॥ श्रावक आर्य्य अणुव्रत धार। बहुरि श्राविका गण अविकार ॥ सोलह स्वर्ग परैं नहिं जाय। ऐसो भेद कहें जिनराय ॥ २३ ॥

द्रव्य लिंग धारी जे जती। नव ग्रीवक ऊपर नहिं गती॥ नवहि अनोत्तर पंचोत्तरा॥ महामुनि बिन और नहिं धरा॥ २४॥ कई वार जीव सुर भयो। पणके इक पद नाहीं गह्यो॥ इंद्र भयो न शचीहू भयो। लोकपाल कबहूं नहीं थयो॥ २५॥ लौकांतिक हूवो न कदापि। नहीं अनोत्तर पहुंचो आप। ए पद धर बहु भवनहिं धरैं। अल्प काल मैं मुक्ति हि वरैं॥ १६॥ है विमान सरवारथ सिद्धि। सबतैं ऊंचो अतुलसु रिद्धि॥ ताके सिरपर है शिवलोक। परैं अनंतानंत अलोक॥ २७॥ गत्यागत्य देव गति भनी। अब सुन भाई मनुप गति तनी। चौवीसौ दंडकके मांहि। मनुप जांहि यामैं शक नाहि॥२८॥ मोक्षहू पावै मनुष मुनीश। सकल धराको जो अवनीश॥ मुनि विन मोक्ष नहीं कोऊ वरे। मनुष विना नहिं मुनिको तरै॥ ९॥ सम्यक्‌दृष्टि जे मुनिराय। भवजल उतरैं शिवपुर जाय। जहां जाय अविनाशी होय॥ फिर पीछैं आवें नाहिं कोय॥३०॥ रहैं शाश्वते शिवपुर मांहि। आतम राम भयो सत नाहिं॥ गति पचीस कहीं नर तनी। आगति फुनि बाई-सहि भनीं॥३१॥ तेजकाय अरु वाई जुकाय। इन बिन और सबै नर थाय। गति पचीस आगत बाईस॥ मनुषतनी जो भाषी ईस॥३२॥ ताहि सुरासुर आतमरूप॥ ध्यावें चिदानन्द चिद्रूप॥ तौ उतरो भवसागर भया। और न शिवपुर मारग लया॥३३॥ यह सामान्य मनुष्यकी कही। अब सुनि पदवीधरकी सही॥ तीर्थंकरकी दोय आगती। स्वर्ग नरकतैं आवैं सती॥३४॥ फेरि न गति धारैं जगदीस। जाय विराजैं जगके सीस॥ चक्री अर्धचक्री अरु हली। सुर्ग लोकतैं आवैं बली॥३५॥ इनकी आगति

एक हि जान। गतिकी रीति कहूं जो वखांनि। चक्रीकी गति तीन जो होय। सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥१६॥ तप धारैं तौ शिवपुर जांय। मरैं राजमैं नरकहि ठांय ॥ आखरि मैं होंय पद निर्वाण। पदवी धारक वड़े प्रधान ॥१७॥ बलभद्रनको दोयहि गती। सुरग जांहि के है शिवपती ॥ तप धारैं ए निश्चय भया। मुक्ति पात्र ये श्रुत मैं लह्या ॥ १८ ॥ अर्द्धचक्री कौ एकै भेद। नारक जांय लहैं अति खेद॥ राज मांहि जो निश्चय मरं। तद्भ मुक्तिपन्थ नहि धरैं ॥ १९ ॥ आंखिर पावैं जिनवर लोक। पुरुष शलाका शिवके थोक ॥ ये पद पाए कवहुं नहिं जीव। ये पद पाय होय शिव पीव ॥४०॥ और हु पद कइयक नहिं गहे। कुलकर नारदपद हु न लहे॥ रुद्र भए न मदन नहीं भए। जिनवर मातपिता नहिं थए ॥ ४१ ॥ ये पद पाय जीव नहीं रुलै। थोड़ेहि दिन मैं जिन सम तुलै ॥ इनकी आगति श्रुतमैं जांनि। गतिको भेद कहूं जो वखांनि ॥ ४२ ॥ कुलकर देव लोक ही गहैं। मदन सुरग शिवपुरको लहैं। नारद रुद्र अधोगति जाय। लहैं कलेश महा दुःख पांय ॥४३॥ जन्मांतर पावैं निरवान। बड़े पुरुष जे सूत्र प्रमान ॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध। स्वर्ग जांयकै होहैं सिद्ध। ४४॥ माता स्वर्ग लोक ही जांय। आखिर शिवपुर लोक लहांय। ये सब रीति मनुषकी कही। अब सुन तिरयंचन गति सही ॥४५॥ पंचेंद्री पशु मरण कराय। चौवीसौ दंडकमैं जाय ॥ चौवीसौ दंडकतैं मरै। पशू

---

४० पीव–स्वामी। ४३ मदन–कामदेव। ४४ जन्मांतर–थोडे भव पीछे मोक्ष पावे है। ४७ पथ–रास्ता। ४९ काय–देह।

होय तौ नाह न करे ॥ ४६ ॥ गती आगती कही चौवीस । पंचेंद्री पशुकी जिन ईस । ता परमेश्वरको पथ गहो ॥ चौवीसों दंडक नहिं लहो ॥ ४७ ॥ विकलत्रयकी दश ही गती । दश आगति कहीं जगपती ॥ पांचों थावर विकलजु तीन । नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन ॥ ४८ ॥ इनहीं दशम उपजै जाय । पृथिवी पानी तरवर काय ॥ इनहीं तैं विकलत्रय आय । इस ही दसमें जन्म कराय ॥ ४९ ॥ नारक विन सब दंडक जोय । पृथ्वी पानी तरु वर सोय ॥ तेज वायु मरि नव में जाय । मनुष होय नाहीं सूत्र कहाय ॥५०॥ थावर पन विकल-त्रय ठौर । ये नवगति भाषै मद मोर ॥ दसतैं आवै तेज अरु वाय । होय सहीगामैं जिनराय ॥ ५१ ॥ ये चौईस दंडके कहे । इनकूं त्याग परमपद लहे ॥ इनमैं रुलै'सु जगको जीव । इनतैं रहित सुत्रि भुवन पीव ॥ ५३ ॥ जीव ईशमैं और न भेद । एकरमी वे कर्म उछेद ॥ कर्मबंध जोलों जगजीव । नाशे कर्म होय शिव पीव ॥ ५२ ॥

दोहा—मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय ।
इंद्रिय विषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि है जाय ॥
जिन विनगति भवतैं धरीं, भयो नहीं सुर झार ।
जिन मारग उर धारिये, पइये भवदधि पार ॥५५॥
जिन भज सब परपंच तज, बड़ी बात है येह ।
पंच महाव्रत धारिकै, भव जलको जलदेह ॥ ५६ ॥
अंतर करणजु सुध है, जिनधर्मी अभिराम ।
भाषा कारण कर सकूं, भाषी दौलतराम ॥ ५७ ॥

इति चौवीसदंडक सम्पूर्णम् ॥

(२८) कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्रकी भक्तिका फल।

अन्तर बाहर ग्रन्थ नहिं, ज्ञान ध्यान तप लीन।
सुगुरु विन कुगुरु नमें, पड़े नर्क हो दीन ॥ १ ॥
दोषरहित सर्वज्ञ प्रभु हित उपदेशी नाथ।
श्री अरिहंत सुदेव , तिनको नमिये माथ ॥ २ ॥
रागद्वेष मलकर दुखी, हैं कुदेव जगरूप।
तिनकी वन्दन जो करैं, पड़ें नर्क भवकूप ॥ ३ ॥
आत्मज्ञान वैराग्य सुख, दया क्षमा सत शील।
भाव नित्य उज्जल करै, है सुशास्त्र भवकील ॥ ४ ॥
रागद्वेष इन्द्री विषय, प्रेरक सर्व कुशास्त्र।
तिनको जो वंदन करे, लहै नर्क विटगात्र ॥ ५ ॥

---

(२९) खोटे कर्मोंका फल।

मद्य, मांस, मधु भक्षण करनेका फल—

जो मतवारे होत ह, पीय मद्य दुख दाय।
उन्हे पिलावत नरकमें, तांबो लाल तपाय ॥ १ ॥
और चढ़ावत शूल पै, नरक निवासी कूर।
इस भव परभव मद्य है, दुखदाई भरपूर ॥ २ ॥
जिन अंगन सों यह करे, औरनके तन खण्ड।
तिन अंगन कों नरकमें, करहिं असुर शतखण्ड ॥ ३ ॥
मांस प्राणि भंडार है, निर्दय खात सदीव।
तन रोगी कर मरण है, होवे नारकि जीव ॥ ४ ॥

मधु भक्षणके पापत, परै नरकमें आप ।
भुंजै दुख चिरकाल लों, लहै अधिक सन्ताप ॥ ५ ॥
मधु भक्षण तें जीवकी, दया दूर भगि जात ।
पाप पंक संयोगतें, सम्यग् दरश नशात ॥ ६ ॥

हुक्का, गांजा, भांग पीनका फल—

अगनीको अंगार ले, गांज तमाखू चस ।
धरी भरी पीयी चिलम, हुक्कापै धर हर्ष ॥
ते नरकनिकी भूमिम, उपजें घ्राणत अघोर ।
तांबो खूब तपायके प्यावें असुर कठोर ॥

आत्मघातका फल—

आतमघातीको लखो, कैसो होत हवाल ।
हनवेको हुंकरत हैं नारकि अति विकराल ॥

मनुष्यघातका फल—

विष दे अथवा और विधि, करके क्रोध प्रचण्ड ।
जिन मानुष मारे यहां, तिनके है शतखण्ड ॥

गर्भपातका फल—

कामी हो जिसने करो, परनर ते व्यभिचार ।
गर्भ भयो तब लाज वश, कियो पात अघकार ॥
तिनकी देखो नरकमें, होत दशा है कौन ।
लै त्रिशूल तन छेदियां, हाय २ दुख भौन ॥

मेंढा वधका फल—

मेंढापै जिसने यहां, छुरी चलाई क्रूर ।
लै करोत काटें लखो, तिनको दुख भरपूर ॥

जलचर मारनेका फल—

अग्नि कुंडमें रोपके, गलमें संकल डार।
दंड खड़गले हाथमें, मारे तहं भयकार ॥
निर्दयी जाल बिछायके, पकड़ मच्छ अतिदीन।
चरित ताको हो मगन, पड़ते नर्क कमीन ॥

पक्षी मारनेका फल—

पंखी मार पड्यो नरक, कूम्भी पाकन मांहि।
ऊपर कौए नोंचते, भीतर पीड़ा पाहिं ॥

शिकार करनेका फल—

हरिण शशादिक निवल जे, जंतु दीन अति भूर।
तिनसे दिल बहलावको, करत शिकार जो क्रूर ॥
तिन पुरुषनकी नरकमें, लखो दुर्दशा हाय।
व्याघ्रादिक हिंसक पशू, नोंच २ के खाय ॥

कसाई कर्मका फल—

करें कसाई क्रूरजे, हिंसा कर्म अघोर।
कुम्भीमें ते ऊपजें, करें भयंकर शोर ॥

घुना धान्य व्यवहारका फल—

वींधा अन्न अशोधकें, जो कूटैं दिनरात।
अर खावें होकर मगन, नर्क महा दुख पात ॥

रात्रिको भट्टी जलानेका फल—

भट्टी रात्रि जलायकें, करें विविध पकवान।
जीव अनंता गिर मरैं, बांधे पाप अजान ॥

नर्क पड़त दुःख बहु सहत, जलत कढ़ाई बीच ।
अर्द्ध दग्ध होकर करैं, हाय हाय ते नीच ॥

परको बंधनकरनेका फल—

निज कुटुम्बके हेतु जिन, परको बंधन कीन ।
माया कीन्ही अति घनी, बांधे पाप अहीन ॥
अशुभ कर्मके उदयते, कुगति लहैं ते जीवं ।
छेदन बंदन ताड़ना, बेधन सहैं सदीव ॥

परको ताड़नेका फल—

लाठी मूसल विकट अति, चाबुक आदि प्रहार ।
निर्दय हो तन पीड़ते, बांधत पाप अपार ॥
पड़त नर्क संकट सहैं, लहैं मार विकराल ।
रोवत हैं रक्षक नहीं, बीतत बहुतहिं काल ॥

इन्द्रिय छेदनका फल—

हाय पाप मैं क्या किया, छेदा मानुष चिन्ह ।
नर्क पड़ा असहाय हो, सहत दुःख हो खिन्न ॥

अधिक बोझा लादनेका फल—

चढ़ गाड़ी रथपै यहां, लादो बोझ अपार ।
तिनकी नरकानिमें दशा देखो हृदय विचार ॥
अति कठोर पाथरिनकी, भूमिमाहिं रथ जोर ।
बैलं बनाके जोतके, मारें मार कठोर ॥

अन्न पान निरोधका फल—

बालक वृद्ध पशु वधू, जो अपने आधीन ।
खानपान कम देत हैं, समय टाल अति दीन ॥

इस हिंसाके पापतैं: पड़े नर्क दुःख पात ।
नारकि बहु विध मारते, देवैं छाती लात ॥

अनछानें जलपानका फल—

अनछानो पानी पियो, तिनकी गतिं लख यार ।
उलट्यो कर शिलमें धर्यो तापै मुद्गर मार ॥

रात्रिभोजनका फल—

हंसत हंसत निशिमें भखो, कन्दमूल मद मांस ।
नरकनिमें देवें तिनहिं, बुरी वस्तुको ग्रास ॥

झूठ बोलनेका फल—

झूठ वंचन बोले घने, क्रूर कपटकी खान ।
तिनकी जिव्हा असुरगन, काटें छेदें जान ॥

विश्वासघातका फल—

देय भरोसा जिन यहां. कीना कपट अपार ।
नर्क पड़ें नारकि तिन्हें, पटकें मारें मार ॥
झूठी सौगंध खाय जे, चुगली करैं बिगाड़ ।
नरकनमें जोरावरी, भूपै देत पछाड़ ॥

व्यापारमें झूठ बोलनेका फल—

वस्तु खरीदी अल्पमें, कहे अधिक हमदीन ।
घोर झूठ कहि पापले, पहुंचे नर्क कमीन ॥

झूठी गवाहीका फल—

देत गवाही झूठ जो, अपने स्वारथ काज ।
पाप बांध नरकहिं पड़े, करते आतम अकाज ॥

लोह मई कंटकनिकी, शय्यापै पौढ़ाय ।
मारैं खड़ग स्वहस्तलै हाय! हाय! बिललाय ॥

अधिकारके गर्वका फल—

दगा द्रोहकरि जिन यहां, राज सत्वको पाय ।
दण्डित कीने दीनने, नर्कन पहुंचे जाय ॥
अगनि माहिं तिनको तहां, बैठावें दुखदाय ।
और करोंती लेयके, चीरें मस्तक हाय ॥

खोटी निंदाका फल ।

सज्जनकी चुगली करी, अर निन्दा अति घोर ।
नरक माहिं तिस पापतें, परसत भूमि कठोर ॥
मार पड़त तहां बहुत विधि देख थरहरें आप ।
हाहा करि तहां कहत हैं, अब न करेंगे पाप ॥

चुगली आदि पापोंका फल—

जिन चुगली कीन्हीं यहां, किये घनेरे पाप ,
नरक गयेतें देखलो काटैं बिच्छू सांप ॥
नयन देखी अरु बिन सुनी, करैं पराई बात ।
पापपिंड जे मरत हैं, ते चण्डाल कहात ॥

पापोपदेशका फल—

दे [illegible]देश सुपापके आप करावैं पाप ।
[illegible]धित स्थान हैं, देवें बहु संताप ॥

खोटा दस्तावेज बनानेका फल—

परके ठगने कारण, झूठी लेख लिखाहिं ।
तीव्र लोभसे नर्क जा, अधिकाहिं दुख लहाहिं ॥

धरोहर कमती देनेका फल—

कर विश्वास सुद्रव्य बहु, राखा कोई पास।
झूठ बोल कमती दिया, सहे नर्क बहु त्रास॥

गुप्तमंत्र प्रगट करनेका फल—

दो जन बातें करत हैं, देख सैनसे कोय।
कर प्रकाश हानी करत, पड़त नर्क दुःख होय॥

चोरीका फल—

रस्ते चलते जिन्होंने, लूटे लोग अपार।
नरक जाय कोल्हू पिले, और सही बहु मार॥

चोरीकी प्रेरणाका फल—

चोरी जिन दूसरनते करवाई धर प्यार।
देखो मुद्गर मारतें, नरक माहिं बहु बार॥

चोरीका माल लेनेका फल—

जो चोरीके मालको, जानबूझके लेंहिं।
उल्टे लटकावत तिन्हें, और त्रास बहु देहिं॥

खोटा न्याय करनेका फल—

बैठ भूप दरबारमें, न्याय धर्म कर हीन।
बिन अपराधी दण्डिया, पड़ा नर्क हो दीन॥
उलट्यो मस्तक रोपके, रस्सीतें कस काय।
ताऊपर मुद्गरनकी, मार पड़े अधिकाय॥

चोखी वस्तुमें खोटी वस्तु मिलाके बेचनेका फल—

चोखीमें खोटी मिला, कह चोखीका दाम।
बेचत पाप कमाइया, पड़े नर्क दुःखधाम॥

छेदत शिर भाला लिये, दिखा काय विकराल।
पाप कियो भव पीछले, अब उदयागत काल॥

हीनाधिक तोलनेका फल—

कम देना लेना अधिक, कपट रचा धर लोभ।
तीव्र पाप ते नरक जा, सहन कर चित क्षोभ॥
धकधंकात आगी पड्यो, हाय हाय चिल्लाय।
तापे ले मुद्गर कठिन, मारें दया विहाय॥

तीर्थ भण्डार और देव द्रव्य खानेका फल—

श्री जिन सेवा कारण तीर्थ धर्मके काज।
पैसा रुपया द्रव्य जो, रक्षक जैन समाज॥
रक्षक यदि भक्षक भये, तीव्र लोभ लहि पाप।
नर्क जाय बहुकाल लों, भुगतै बहु संताप॥

परस्त्री संगका फल—

निज नारी अर्द्धांङ्गिनी, दुख सुखमें सहकार।
तासों प्रेम निवारकें, डोलत परतिय द्वार॥
भोग परस्त्री रक्त हो, घोर नर्कमें जाय।
तप्त लोहकी पूतली, तिनते दई सटाय॥

वेश्या कर्मका फल—

वेश्या विषय बिकारसे कर व्यभिचार विहार।
नरक भूमिमें उपजकें, पावत कष्ट अपार॥
मायाचारी हो यहां, धन लूटै भरपूर।
सो वेश्या पड़ नरकमें, सहै दुःख अति क्रूर॥

कामचेष्टा करनेका फल—

कीन्ह बहुत घिनावने कामरूप अविचार।
तिनकी देखो वेदना, नरकनिकी भयकार॥

कामातितृष्णाका फल—

निशदिन काम कथा करे, धरै चित्त अतिकाम।
न्याय अन्याय गिने नहीं, पड़े नरकके धाम॥
रज्जुपाशते बांधिके, अग्नि चितामें डारि।
सहते पीर घिनावनी, जलत अंग दुखकारि॥

व्यभिचारिणी स्त्रीका फल—

मोहित ह्वै पर पुरुष संग, कीनो जो व्यभिचार।
ता नारीकी दशाको, देखो सुजन विचार॥
अग्नि शिखा विच डारिके, छेदत अंग उपङ्ग।
देत दुःख नहिं कह सकत, ऐसे करत कुढङ्ग॥

अनंगक्रीड़ा करनेका फल—

पुत्र जननके कारणे प्रगट कामके अंग।
तिन्हैं छांड़ काम भजन, राचैं और कुअंग॥
महा पापसे नर्क जा होते नित्य अधीर।
अंग छेद पीड़ा अधिक, सहते विक्रिय शरीर॥

अति आरम्भका फल—

होय लोलुपी जगतमें, बहु आरम्भ बढ़ाय।
हिंसा कीनी रूपमें, ते नरकनिमें जाय॥

दान अंतरायका फल—

देत देखके दानको, दुखी होय जो मूढ़।
नरकनिमें ताकी दशा, देखो मुखमें सूल॥

सप्तव्यसनका फल—

जुआ चोरी मांस मद, वेश्या रमण शिकार ।
पररमणीरत व्यसन ये, सात सेय दुखकार ॥
पड़ै नरकम नारकी, तांबो प्यावें ताय ।
मार मारके खड्गसे, करैं दुर्दशा आय ॥

पतिको कष्ट देनेका फल—

जे नारी अति दुष्ट चित, स्वामीको दुख देय ।
तीव्रभावतें नरक लहि, बहुतहिं कष्ट सहेय ॥

पतिकी आज्ञा न माननेका फल—

हितकारी पतिके वचन, करै निरादर जोय ।
नर्कवास भयभीत लहि, मार धाड़ तहं होय ॥

अपनी सौतके बचेको दुःख देनेका फल—

दया रहित जे नारि हैं, बालक सौत निहार ।
द्वेष बुद्धिसे [illegible] दे प[illegible]चे नर्क मंझार ॥
छेदन भेदन दुख [illegible] तहं पावत दिन रैन ।
जो परको दुख देत है, कैसे पावे चैन ॥

माता पिताकी आज्ञा भंग करनेका फल—

जगमें हितकारी बड़े, मात पिताके बैन ।
करैं निरादर दुष्ट सुत, पावैं नर्क अचैन ॥

माता पिताके द्रोहका फल—

मात पिताने मोहवश, पाले पोषे पूत ।
ते नारिनके वश परे, दुखदाई भये ऊत ॥
तिनकी छाती लात दे, भाला मारे शूर ।
मात पिताके द्रोहतें, पावें दुःख भरपूर ॥

(३०) मोहरस स्वरूप ।

भववन भटकत पथिक जन, हाथी काल कराल ।
पीछे लागो हो दुखित, पड़ा कूप विकराल ॥ १ ॥
पकड़ शाख वट वृक्षकी, लटको मुंह फैलाय ।
ऊपर मधु छत्ता लगा, पड़ी बूंद मुंह आय ॥ २ ॥
निशि दिन दो चूहे लगे, काटत आयु डाल ।
नीचे अजगर फाड़ मुख है निगोद भव जाल ॥ ३ ॥
चार सर्प चारों गति, चारों ओर निहार ।
है कुटुंब माखी अधिक, चुंटत तन हरबार ॥ ४ ॥
श्री गुरु विद्याधर मिले, देख दुखी भव जीव ।
हो दयाल टेरत उसे, मत सह दुःख अतीव ॥ ५ ॥
बून्द मधु है विषय सुख, ताके लालच काज ।
मानत नहिं उपदेशको, कर रह्यो आत्म अकाज ॥ ६ ॥
आयु डाल कुछ कालमें, कट जावेगी हाय ।
नीचे पड़ बहुकाल लों, भुगते फल दुखदाय ॥ ७ ॥

---

(३१) लेश्या स्वरूप ।

माया क्रोध रु लोभ मद, है कषाय दुखदाय ।
तिनसे रंजित भाव जो, लेश्या नाम कहाय ॥ १ ॥
षट् लेश्या जिनवर कही, कृष्ण नील कापोत ।
तेज पद्म छट्टी शुकल, परिणामहिं तें होत ॥ २ ॥
कठियारे षट् भावधर, लेन काष्टको भार ।

वन चाले भूखे हुए, जामन वृक्ष निहार ॥ ३ ॥
कृष्ण वृक्ष काटन चहे नील जुकाटन डाल ।
लघु डाली कापोत उर, पीत सर्व फल माल ॥ ४ ॥
पद्म चहै फल पक्कको, तोडूं खाऊं सार ।
शुक्ल चहै धरती गिरे, लूं पके निरधार ॥ ५ ॥
जैसी जिसकी लेश्या, तैसा बांधे कर्म ।
श्री सद्गुरु संगति मिले, मनका जावे भर्म ॥ ६ ॥

---

(३२) द्वादशानुप्रेक्षा ।

(पं० मुन्नालालजी विशारद महरोनी कृत)

उद्बोधन ।

भवदाहसे संतप्तजनको शांतिकारी भावना ।
इन्द्रिय विषय तन, भोगसे वैराग्यकारी भावना ॥
मुनि चित्त प्यारी, कुगति हारी, श्रेयकारी भावना ।
"मणि" हो निराकुल चित्तभावहु. नित्य बारह भावना ॥

उत्तेजन ।

हे आत्मन् ! तन, धन विनश्वर, क्या तुझे दिखता नहीं ? १
यमसे अक्षित क्या जीवको, कोई शरण दिखता कहीं ? २
क्या है सुखी निश्चिन्त कोई इस दुखद संसारमें ? ३
सुख स्वार्थके साथी स्वजन, क्या दीखते दुख भारमें ? ४
परद्रव्य तुझसे भिन्न हैं तू एक इनको जानता ! ५
मलमूत्रमय दुर्गंध तनको, रूप पना मानता ! ६

करता निरन्तर योगसे, आश्रव शुभाशुभ कर्मका। ७
नहिं ध्यान है कुछ भी तुझे, संवर करन व्रत, धर्मका। ८
जे पूर्व संचित कर्म ते विन निर्जरा नाहीं कर्में। ९
समता विना तू नित्य भ्रमता हो दुखी तिहुंलोकमें। १०
सब हैं सुलभ जगमें सु दुर्लभ ज्ञान-सम्यक् पावना। ११
सुखकर सुधासम धर्म लख "मणि" नित्य भावहु भावना। १२

वारम्बार चिन्तवन—

धन, बिभव, जीवन, राज्य, परिजन, सकल अथिर असार हैं।
इन्द्रिय जनित-सुख स्वप्नवत् क्षण सुखद पुन दुखकार हैं॥
यौवन जरासे ग्रसित है अरु भोग रोगोंसे भरे।
जग इन्द्रजालसमान है "मणि"! भूल क्यों इसमें परे। (अनित्य)
छह खण्डपति अरु इन्द्रका भी पतन जब अनिवार है।
तब रोक सक्ता कौन तुझको मृत्युसे, परिवार है॥
जगगहनवनमें कर्म हत जनको नहीं कोई शरण।
निजभाव निजको हैं शरण "मणि" धर्म वा श्री गुरु शरण॥ २
तिय, पुत्र विन कोई दुखी, तन रोगसे कोई दुखी।
निर्धन बिना धनके दुखी, धनवान तृष्णासे दुखी॥
चहुँगति विपतिमय जगतमें "मणि" चाहसे सब हैं दुखी।
तज चाह निज कल्याणमें लागे सदा वे ही सुखी॥ (संसार) ३
उत्पत्तिमें अरु मरणमें सुख, दुःख, योग, वियोगमें।
यह है अकेला जीव "मणि" दारिद्र, रोग सुभोगमें॥
जाता अकेला नरकमें सुरसुख अकेला लूटता।
करता अकेला कर्म अरु बँधता अकेला छूटता॥ (एकत्व) ४

सुरलोक ऊपर मागमें अरु अंतमें शिवलोक है ॥ (लोक) १०

दुर्लभ्य नित्य निगोदसे पर्याय थावर पावना ।
दुर्लभ्य त्रस पर्याय पंचेंद्रिय मनुज श्रावकपना ॥
दुर्लभ सु आयु, निरोगता, सत्संग संयम भावना ।
दुर्लभ मिलो यह योग "मणि" लहि "बोधि" कर्म खिपावना ॥ ११

जो है अहिंसारूप वह ही धर्म जगत शरण्य है ।
निज शुद्ध भाव अभिन्न नित्य पवित्र मित्र–अनन्य है ॥
स्वर्धेनु, चिन्तामणि कल्पतरु धर्मके किंकर सभी ।
सब इष्ट दायक धर्म है "मणि" धर्म मत भूलो कभी ॥ (धर्म) १२

उपसंहार—यह अनित्य असहाय जगत बहु दुखमय जानो । मत अकेलो जीव बन्धु सब अन्य प्रमानो ॥ दह अशुचि नहिं नेह योग्य आश्रव दुखकारी । संवर समता रूप निर्जरा शिव सुखकारी ॥ इस चौदह राजू लोकमें दुर्लभ निज निधि पावना । जग शरण धर्म "मणि" चिंतिये इम नित बारह भावना ।

---

(३३) करुणाष्टक भाषा ।

(पं० पन्नालाल विशारद महरौनी कृत)

हे त्रिभुवन गुरु जिनवर, परमानन्दैक हेतु हितकारी ।
करहु दया किंकरपर, प्राती ज्यों होय मोक्ष सुखकारी ॥ १ ॥
हे अर्हन् भवहारी, भव थितिसे मैं भयो दुखी भारी ।
दया दीन पर कीजे, फिर नहिं भव वास होय दुखकारी ॥ २ ॥
जग उद्धार प्रभो ! मम कीजे, उद्धार विषम भव जलसे ।

बार बार यह विनती करता हूँ मैं पतित दुखी दिलसे ॥ ३ ॥
तुम प्रभु करुणासागर तुम ही अशरण शरण जगत स्वामी।
दुखित मोह रिपुसे मैं यातैं करता पुकार जिन नामी ॥ ४ ॥
एक गांवपति भी जब करुणा करता प्रबल दुखित जनपर।
तब हे त्रिभुवनपति तुम करुणा क्या नहीं करोगे मुझपर ॥ ५ ॥
विनती यही हमारी मेटो संसार भ्रमण भयकारी।
दुखी भयो मैं भारी तातैं करता पुकार बहु वारी ॥ ६ ॥
करुणामृत कर शीतल भव तप हारो चरण कमल तेरे।
रहें हृदयमें मेरे जब तक हैं कर्म मुझे जग घेरे ॥ ७ ॥
पद्मनन्दि गुण-वंदित भगवन्! संसार शरण उपकारी।
अंतिम विनय हमारी करुणा कर करहु भव जलधि पारी ॥ ८ ॥

---

[३४] मंगलाष्टक।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुट-प्रद्योतरत्नप्रभा।
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रभावनांभोधावबस्थायिनः ॥
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः।
स्तुत्या योग्यजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ १ ॥
नाभेयादि जिनप्रशस्तवदनाः ख्याताश्चतुर्विंशति।
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश: ॥
ये विष्णु प्रतिविष्णुलाङ्गलधराः सप्तोत्तराविंशति।
त्रैलोक्याभिपदास्त्रिषष्टि पुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ २ ॥
ये पंचौषधिऋद्धयः श्रुततपे वृद्धिंगताः पञ्च ये।

ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ विद्याश्चारिणः ॥
पंचज्ञानधराश्च येऽपि विपुला ये बुद्धिऋद्धीश्वराः ।
सप्तैते सकलाश्च ते मुनिवराः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ३ ॥
ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु ॥
इक्ष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ४ ॥
कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे ।
चंपायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेर्हतः ॥
शेषाणामपिचोर्जयन्ति शिखरे नेमीश्वरस्यार्हतः ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ५ ॥
यो गर्भावतरोत्सवे भगवतां जन्माभिषेकोत्सवे ।
यो जातः परिनिष्क्रमस्य विभवे यः केवलज्ञानभाक् ॥
या कैवल्यपुरःप्रवेशमहिमा संपादिता भाविता ।
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥६॥
जायंन्ते जिन चक्रवर्तिबलभृद्भोगीन्द्रकृष्णादयोः ।
धर्मादेव दियङ्गनाङ्गविलसच्छश्वद्यशश्चन्दनाः ॥
तद्धीना नरकादियोनिषु नरा दुःखं सहन्ते ध्रुवम् ।
स स्वर्गात् सुखरामनयिकपदं कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ७ ॥
सर्प्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते ।
संपद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः ॥
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे ।
धर्मादेव नभोपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ८ ॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्करम् ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणां मुखाः ॥
ये श्रृणवन्ति पठंति ते च सुजना धर्मार्थकामान्विता ।
लक्ष्मीराश्रिय ते विपापरहिता कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ९ ॥
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं ।
मुक्तिश्री नगराधिनाथ जिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः ॥
धर्मः सूक्तिसुधाधि देव महिता चैत्यालयश्चालकः ।
प्रोक्तं तत्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ १० ॥
दिव्योऽष्टौ च जयादिकाः द्विगुणिताः विद्यादिकाः देवताः ।
श्री तीर्थंकर मातृकाश्च जनकाः यक्षाश्च यक्ष्वास्तथा ॥
द्वात्रिंशत्त्रिदशा गृहस्थितिसुराः दिकन्यकाश्चाष्टधा ।
दिक्पाला दशचेत्यमी सुरगणः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ११ ॥

---

(३५) शील माहात्म्य ।

जिनराजदेव कीजिये मुझ दीनपर करुणा । भविवृन्दको अब दीजिये इस शीलका शरणा ॥ टेक ॥ शीलकी धारामें जो स्नान करें हैं । मलकर्मको सो धोयके शिवनार वरें हैं ॥ वृतराज से वेताल व्याल काल डरें हैं । उपसर्ग वर्ग घोर कोट कष्ट टरें हैं ॥१॥ तप दान ध्यान जापजपन जोग आचारा । इस शीलसे सब धर्मके मुंहका है उजारा ॥ शिवपंथ ग्रन्थ मंथके निर्ग्रन्थ निकारा । विन शील कौन कर सके संसारमें पारा ॥ २ ॥ इस शीलसे निर्वाण नगरकी है अबादी । त्रेषट शलाका कौन थे ही

शील सवांदी ॥ सव पूज्यके पदवीमें हैं परधान ये गादी।
अठारा सहस्र भेद भने वेद अवादी ॥३॥ इस शीलसे सीताका
हुवा आगसे पानी। पुर द्वार खुला चलनिमें भरकूप सों पानी ॥
नृप ताप टरा शीलसे रानी दियां पानी। गंगामें ग्राहसों बची इस
शीलसे रानी ॥ ४ ॥ इस शील ही से सांप सुमनमाल हुआ है।
दुख अंजनाका शीलसे उद्धार हुआ है ॥ यह सिन्धुमें श्रीपालको
आधार हुआ है। वप्राका परम शील ही से पार हुआ है ॥ ५॥
द्रोपदीका हुआ शीलसे अम्बरका अमारा। जा धातुदीप कृष्णने
सब कष्ट निवारा ॥ सब चन्दना सतीकी व्यथा शीलने टारी।
इस शीलसे ही शक्ति विशल्याने निकारी ॥६॥ वह कोटि शिला
शीलसे लक्ष्मणने उठाई। इस ही से नागन था कृष्ण कन्हाई ॥
इस शीलने श्रीपालजीकी कोढ़ मिटाई अरु रैनमंजूसाको
लिया शील बचाई ॥७॥ इस शीलसे रनपाल कुंवरकी कटी वेरी।
इस शीलसे दिप सेठके नन्दनकी निर्वैरी ॥ शूलीसे सिंह पीठ
हुआ सिंह ही सेरी। इस शीलसे करमाल सुमनमाल गलेरी ॥८॥
सामन्तभद्रजीने यही शील सम्हारा। शिवपिंडतें जिनचन्द्रका
प्रतिबिम्ब निकारा ॥ मुनि मानतुंगजीने यही शील सुधारा। तब
आनके चक्रेश्वरी सब बात सम्हारा ॥ ९ ॥ अकलंकदेवजीने
इसी शीलसे भाई। ताराका हरा मान विजय बौद्धसे पाई ॥
गुरु कुन्दकुन्दजीने इसी शीलसे भाई। गिरनारपै पाषाणकी
देवीको बुलाई ॥ १० ॥ इत्यादि इसी शीलकी महिमा है घनेरी।
विस्तारके कहनेमें बड़ी होयगी देरी ॥ पल एकमें सब कष्टको
यह नष्ट करेरी। इस ही से मिली रिद्धिसिद्धि वृद्धि सवेरी ॥११॥

विन शील खता खाते हैं सब कांछके ढीले। इस शील विना तंत्र मंत्र जंत्र हीकीले॥ सब देव करें सेव इसी शीलके हीले। इस शील ही से चाहे तो निर्वाणपदी ले॥ ११॥ सम्यक्त्व सहित शीलको पालें हैं जो अन्दर। सो शील धर्म होय है कल्याणका मन्दिर॥ इससे हुवे भवपार है कुल कोल और बन्दर। इस शीलकी महिमा न सके भाष पुरन्दर॥ १२॥ जिस शीलके कहनेमें थका सहस बदन है। जिस शीलसे भय पाय भगा क्रूर मदन है। सो शील ही भविवृन्दको कल्याण मंदन है। दश पैंड़ ही इस पैंड़से निर्वाण सदन है॥ १३॥

---

(३६) बाईस परीषह।

छप्पय—क्षुधा तृषा हिम ऊष्ण डसमसक दुख भारी। निरावरण तन अरति वेद उपजावन नारी॥ चरया आसन शयन दुष्ट वायक बध बन्धन। याचैं नहीं अलाभ रोग तृण परस होय तन॥ मल जनित मान सनमान वश प्रज्ञा और अज्ञान कर। दरशन मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर॥ १॥

दोहा—सूत्र पाठ अनुसार ये कहे परीषह नाम।
इनके दुख जो मुनि सहैं तिनप्रति सदा प्रणाम॥२॥

१ क्षुधा परीषह—अनसन ऊनोदर तप पोषत पक्षमास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बेन योग्य भिक्षा विधि सूख अङ्ग सब शिथिल भये हैं॥ तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन सहत साधु नहीं नेक नये हैं। तिनके चरण कमलप्रति प्रति दिन हाथ जोड़ हम शीश नये हैं॥ ३॥

२ तृषा परीषह–पराधीन मुनिवरकी भिक्षा पर घर लेय कहैं कुछ नाहीं । प्रकृति विरुद्ध पारण भुंजत बढ़त प्यास की त्रास तहांही ॥ ग्रीषमकाल पित्त अतिकोपै लोचन दोय फिरे जब जाहीं । नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि जयवन्ते वर्तो जग-माहीं ॥ ४ ॥

३ शीत परीषह- शीत काल सबही जन कम्पत खड़े तहां वन वृक्ष डहे हैं । झंझा वायु चलै वर्षाऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं ॥ तहां धीर तटनी तट चौपट ताल पाल परकर्म दहे हैं । सहैं सँभाल शीतकी बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं ॥५॥

४ उष्ण परीषह–भूखप्यास पीड़े उर अन्तर प्रजुलै आंत देह सब दागै । अग्नि सरूप धूप ग्रीषमकी तातीवायु झालसी लागै ॥ तपैं पहाड़ ताप तन उपजति कोपै पित्त दाह ज्वर जागै । इत्यादिक गर्मीकी बाधा सहैं साधु धीरज नहीं त्यागैं ॥६

५ डन्समस्क परीषह–डन्स मस्क माखी तनु काटैं पीडैं वन पक्षी बहुतेरे । डसैं व्याल विषहारे विच्छू लगैं खजूरे आन घनेरे ॥ सिंह स्याल सुन्डाल सतावैं रींछ रोझ दुख देहिं घनेरे । ऐसे कष्ट सहैं समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥७॥

६ नग्न परीषह–अन्तर विषयवासना वरते बाहर लोक लाज भय भारी । यातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नाहिं सकैं दीन संसारी ॥ ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह जीतैं साधुशील व्रतधारी । निर्विकार बालकवत निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी ॥८॥

७ अरति परीषह–देशकालका कारण लहिकै होत अचैन अनेक प्रकारैं । तब तहां छिन्न होत जगवासी कलमलाय

थिरतापद छांडै ॥ ऐसी अरति परीषह उपजत तहां धीर धीरज उरधारें । ऐसे साधुनको उर अन्तर वसो निरन्तर नाम हमारे ॥९

८ स्त्री परीषह—जो प्रधान केहरिको पकडै पन्नग पकड पानसे चांवैं । जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन सूर दीनता जांपैं । ऐसे पुरुष पहाड उडावन प्रलय पवन त्रिय वेद पयापैं । धन्य धन्य वे सूर साहसी मन सुमेर जिनका नहिं कांपै ॥१०॥

९ चर्य्या परीषह—चार हात परवान परख पथ चलत दृष्टि इत उत नहिं तानैं । कोमल चरण कठिन धरतीपर धरत धीर बाधा नहीं मानैं ॥ नाग तुरङ्ग पालकी चढते ते सर्वादि याद नहीं आनैं। यों मुनिराज सहैं चर्य्या दुःख तब दृढ कर्म कुलाचल भानैं ॥११॥

१० आसन परीषह-गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसैं जहां शुद्ध भू हेरैं । परमितकाल रहैं निश्चल तन बारबार आसन नहीं फेरैं ॥ मानुष देव अचेतन पशुकृत बैठे विपति आन जब घेरे । ठौर न तजैं भजैं थिरतापद ते गुरु सदा बसो उर मेरे ॥ १२ ॥

११ शयन परीषह—जो प्रधान सोनेके महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं । ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवैं ॥ पाहनखण्ड कठोर कांकरी गडत कोरकायर नहीं [illegible] शयन परीषह जीतैं ते मुनि कर्मकालिमा धोवैं ॥ १[illegible]

१२ आक्रोश परीषह—जगत जीव यावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी । तिन्हें देख दुर्वचन कहैं खल

पाखंडी ठग यह अभिमानी ॥ मारो थाहि पकड पापीको तपसी भेष चोर है छानी। ऐसे वचन बाणकी वेला क्षमा ढाल ओढ़ैं मुनि ज्ञानी ॥ १४ ॥

१५ वध बंधन परीषह-निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मौर। कोई खैंच खंबसे बांधै कोई पावकमें परजारैं ॥ तहां कोप करते न कदाचित पूरव कर्मबिपाक बिचारैं। समरथ होय सहैं वध बंधन ते गुरु भव भव शरण हमारैं॥

याचना परीषह-घोर वीर तपकरत तपोधन भये क्षीण सूखी गलबांहीं। अस्थि चाम अवशेष रहो तन नसांजाल झलकैं तिसमाहीं॥ औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर जांचत नाहीं। दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारैं करैं न मलिन धरम परछाहीं ॥ १६ ॥

१५ अलाभ परीषह-एकवार भोजनकी वेला मौन साध बस्तीम आव। जो न बनै योग्य भिक्षाविधि तो महन्त मन खेद न लावैं॥ ऐसे भ्रमत वहुत दिन बीतैं तब तपबृद्धि भावना भावैं। यों अलाभकी परम परीषह सहैं साधु सो ही शिव पाव ॥ १७ ॥

१६ रोग परीषह-बात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं। रोग संयोग शोक जब उपजत जगत जाव कायर होजाहीं॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुण सहैं सूर उपचार न चाहीं॥ आतमलीन विरक्त देहसों जैनयती निज नेम निवाहीं ॥ १८ ॥

१७ तृणस्पर्श परीषह-सूखेतृण अरु तीक्ष्णकांटे कठिन कांकरी पांव विदार। रज उड़ आन पड़े लोचनमें तीर फांस तनु पीर बिथार ॥ तापर पर सहाय नहीं बांछत अपने करसें काढ़ न डारें। यों तृणपरस परीषह विजयी ते गुरु भव भव शरण हमारें ॥ १९ ॥

१८ मल परीषह-यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन नग्न रूप वन थान खडे हैं ॥ चलै पसेव धूपकी बेला उड़त धूल सब अंग भरे हैं ॥ मलिन देहको देख महामुनि मलिनभाव उर नाहिं करें हैं। यों मलजनित परीषह जीतें तिनहि हाथ हम सीस धरे हैं ॥ २० ॥

१९ सत्कार पुरस्कार परीषह-जो महान विद्यानिधि विजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं। तिनकी विनय वचनसे अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करें हैं ॥ तो मुनि तहां खेद नहीं मानत उर मलीनता भाव हरे हैं ॥ ऐसे परम साधुके अहनिशि हात जोड हम पांय परे हैं ॥ २१ ॥

२० प्रज्ञा परीषह-तर्क छंद व्याकरण कलानिधि आगम अलङ्कार पढजानैं। जाकी सुमति देख परवादी विलखत होंय लाज उर आनैं ॥ जैसे सुनत नाद केहरिका वनगयंद भाजत भयमानैं। ऐसी महाबुद्धिके भाजन पर मुनीश मद रंच न ठानैं ॥

२१ अज्ञान परीषह-सावधान वर्ते निशिवासर संयमशूर परम वैरागी। पालत गुप्ति गये दीर्घ दिन सकल संग ममता परत्यागी ॥ अवधिज्ञान अथवा मनपर्य्यय केवल ऋद्धि न अजहूं जागी। यों विकल्प नहीं करें तपोनिधि सो अज्ञान विजयी बडभागी ॥ २३ ॥

२२ अदर्शन परीषह-मैं चिरकाल घोर तपकीनों अजों ऋद्धि अतिशय नहीं जागै। तपबल सिद्ध होत सब सुनियत सो कुछ बात झूठसी लागै ॥ यों कदापि चितमें नहीं चिंतत समकित शुद्ध शांति रस पागै। सोई साधु अदर्शन विजई ताके दर्शनसे अघ भागै ॥ २४ ॥

किस २ कर्मके उदयसे कौन २ परीषह होती हैं-

ज्ञानावरणीतें दोइ प्रज्ञा अज्ञान होइ एक महा मोहतें अदर्शन बखानिये। अन्तराय कर्मसेती उपजै अलाभ दुख सप्त चारित्र मोहनी केवल जानिये नगन निषद्या नारि मान सन्मानगारि यांचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये। एकादश बाकी रहीं वेदना उदयसे कहीं बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये ॥

अडिल्ल एकबार इनमाहिं एक मुनि के कही। सब उनीस उत्कृष्ट उदय आवें सही ॥ आसन शयन विहाय दाय इन माहिंकी। शीत उष्णमें एक तीन य नाहिंकी ॥ २६ ॥

तृतीय खंड।

(१) लघु अभिषेक पाठ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्यजगत्त्रयेशं
स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम् ॥
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु
र्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिनचरणोंमें पुष्पांजलि छोड़नी चाहिए)

श्रीमन्मन्दरसुंदरे शुचिजलैर्धौतै सुदर्भाक्षतैः
पीठे मुक्तिवरं निधाय, रचितं त्वपादपद्मस्रजः।
इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकङ्कणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा नाना प्रकारके सुंदर आभूषण धारण करना चाहिये)

सौगन्ध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन संवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्यमादौ।
आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवन्द्य पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्।

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अपने अंगमें चन्दनके नव तिलक करना चाहिये।)

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः। संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥ (इसको पढ़कर अभिषेकके लिये भूमिका प्रक्षालन करें)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम्।
अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥

(जिस पीठपर (सिंहासनपर) विराजमान करके अभिषेक करना होवे उसका प्रक्षालन करना चाहिये ।)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यं ।
श्रीमत्स्वयं क्षयतयस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णलिखित जिनभद्रपीठे ॥

(इस श्लोकको पढ़कर पीठपर श्रीकार लिखना चाहिये ।)

इन्द्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणि-वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्रचन्द्राः।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके॥

(नीचेलिखे मंत्रोंको पढकर क्रमसे दश दिक्पालोंके लिये अर्घ चढ़ावो ।)

१ ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा ।
२ ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।
३ ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।
४ ॐ आं क्रौं ह्रीं नैर्ऋत आगच्छ आगच्छ नैर्ऋताय स्वाहा ।
५ ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।
६ ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।
७ ॐ आं क्रौं ह्रीं कुवेर आगच्छ आगच्छ कुवेराय स्वाहा ।
८ ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा ।
९ ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणीन्द्राय स्वाहा ।
१० ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

इति दिक्पालमंत्राः ।

दध्युज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण ।
त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाह मारार्तिकं तवविभोरवतारयामि ॥

सम्पूर्णशारदशशाङ्कमरीचिजालस्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि॥

(इस श्लोकको पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकांतिमवधारयतामतीव।
दध्नां गता जिनपते प्रतिमां सुधारा सम्पद्यतां सपदि वांछितसिद्धये वः॥

(इस श्लोकको पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः सुरवरासुरमर्त्यनाथैः।
तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्यधारा सद्यः पुनातु जिनबिम्ब गतैव युष्मान्॥

(इस श्लोकको पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हतमुज्वलाभिः।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला कालेयकुङ्कुमरसोत्कटवारिपूरैः॥

(इस श्लोकको पढ़कर सर्वौषधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुः समाद्यैरामोदवासितसमस्तदिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेनपयसा जिनपुङ्गवानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि॥

(इस श्लोकको पढ़कर केसर कस्तूरी कर्पूरादिसे बनाये हुये सुगंधित जलसे स्नपन करना चाहिये।)

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपति जिनेन्द्रम्॥

(इस श्लोकको पढ़कर शेष बचे हुये सम्पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये।)

---

१. घृत दुग्ध दधि आदिके मिलानेसे सर्वौषधि होती है तथा कर्पूरादि सुगन्धद्रव्योंके मिलानेसे भी सर्वौषधि होती है।

मुक्ति श्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकम् ।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम् ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलता संवृद्धिसम्पादकम् ।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गंधोदकम् ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अपने अङ्गमें गंधोदक लगाना चाहिये ।)

इति श्री लघुरभिषेकविधिः समाप्तः ॥

---

(२) विनयपाठ ।

इहि विधि ठाडो होयके प्रथम पढ़े जो पाठ ॥
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्म जु आठ ॥ १ ॥
अनंत चतुष्टयके धनी तुमही हो शिरताज ॥
मुक्तिवधूके कंथ तुम तीन भुवनके राज ॥ २ ॥
तिहुँजगकी पीडाहरण भवदधि शोषनहार ॥
ज्ञायक हो तुम विश्वके शिवसुखके करतार ॥ ३ ॥
हरता अघ-अंधियारके करता धर्मप्रकाश ॥
थिरता पद दातार हो धरता निजगुण रास ॥ ४ ॥
धर्मामृत उर जलधसों ज्ञान भानु तुम रूप ॥
तुमरे चरण-सरोजको नावत तिहुं जगभूप ॥ ५ ॥
मैं वंदौं जिनदेवको कर अति निरमल भाव ॥
कर्म बंधके छेदने और न कोई उपाय ॥ ६ ॥
भविजनको भविकूपतैं तुमही काढ़नहार ॥
दीनदयाल अनाथपति आतम गुण भंडार ॥ ७ ॥

चिदानंद निर्मल कियो धोय कर्मरज मैल ॥
सरल करी या जगतमैं भविननको शिव गैल ॥ ८ ॥
तुम-पद-पंकज पूजतैं विघ्न रोग टर जाय ॥
शत्रु मित्रताको धरैं विष निरविषता थाय ॥ ९ ॥
चक्री खग अरु इन्द्रपद मिलैं आपतैं आप ॥
अनुक्रम कर शिवपद लहैं नेम सकल हन पाप ॥ १० ॥
तुम विन मैं व्याकुल भयो जैसे जल विन मीन ॥
जन्म जरा मेरी हरो करो मोह स्वाधीन ॥ ११ ॥
पतित बहुत पावन किये गिनती कौन करेय ॥
अजनसे तारे कुधी सु जय जय जय जिनदेव ॥ १२ ॥
थकी नाव भविदधिविषैं तुम प्रभु पार करेय ॥
खेवटिया तुम हो प्रभु सो जय जय जय जिनदेव ॥ १३ ॥
राग सहित जगमें रुले मिले सरागी देव ॥
वीतराग भैटो अबै मेटों राग कुटेव ॥ १४ ॥
कित निगोद कित नारकी कित तिर्यंच अज्ञान ॥
आज धन्य मानुष भयो पायो जिनवर थान ॥ १५ ॥
तुमको पूजें सुरपति अहिपति नरपति देव ॥
धन्य भाग मेरो भयो करनलगो तुम सेव ॥ १६ ॥
अशरणके तुम शरण हो निराधार आधार ॥
मैं डूबत भवसिंधुमें खेओ लगायो पार ॥ १७ ॥
इंद्रादिक गणपति थकी तुम विनती भगवान ॥
विनती आपनी टारि कै कीजे आप समान ॥ १८ ॥
तुमरी नेक सुदृष्टसे जग उतरत है पार ॥

हाहा डूबी जात हौं नेक निहार निकार ॥ १९ ॥
जो मैं कहऊं औरसों तौ न मिटै उर झार ॥
मेरी तो मोसों बनी तातैं करत पुकार ॥ २० ॥
वंदों पांचों परमगुरु सुरगुरु वंदन जास ॥
विघनहरन मंगलकरन पूरन परम प्रकाश ॥ २१ ॥
चौविसों जिन पद नमों नमों शारदामाय ॥
शिवमग साधक साधु नमि रचों पाठ सुखदाय ॥ २२ ॥

(३) देवशास्त्रगुरुपूजा ।

ॐ जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः ।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं–अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारिसरणं पव्वज्जामि–अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हं स्वाहा ।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ २ ॥

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।

मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ३ ॥

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।

सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।)

(यदि अवकाश हो, तो यहांपर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना, नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढाना चाहिये।)

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।

धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥७॥

ॐ श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीमज्जिनेंद्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं

स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम्।

श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु-

र्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय

स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय।

स्वस्ति प्रकाशसहजोर्ज्जितदृङ्मयाय

स्वस्ति प्रसलकलितादभुतवैभवाय ॥ ९ ॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय

स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।

स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय

स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं ।

भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ॥

आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन् ।

भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ ११ ॥

अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि ।

वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।

अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ ।

पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १२ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः । श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः । श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांतिः । श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः । श्रीमल्लिः स्वस्ति स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः । श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः । (पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १ ॥

आगे प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ २ ॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ३ ॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ४ ॥
जङ्घावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तुप्रसूनबीजाङ्कुरचारणाह्वाः ।
नभोंऽगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ५ ॥
अणिम्निदक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि ।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥
सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ७ ॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ८ ॥
आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ९ ॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १० ॥

इति स्वस्तिमंगलविधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसन्तापहर्ता ।
त्रैलोक्याक्रान्तकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसम्पद्वरयुवतिकरालीढकण्ठः सुकण्ठै-
र्देवेन्द्रैर्वन्द्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजाः ॥१॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते ।
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जताम् ।
जय जय महामोहध्वान्तप्रभातकृतेऽ नम्
जय जय जिनेश त्व नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । (इत्याह्वाननम् ।) ॐ ह्रीं भगज्जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । (इति स्थापनम् ।) ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् । (इति सन्निधिकरणम्)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पादपङ्केरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं सम्पूजयामोऽधुना ॥३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान शुम्भत्पदान शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलोघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाऽहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचंदनैर्गंधविलुब्धभृङ्गैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वरिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्य्यान्वर्यान सुचर्याकथनैकधुर्य्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुदर्पकन्दर्पविसर्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंश[illegible]हिताय अर्हत्परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपा[illegible]स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातिदीपान् ।
दीपैःकनत्काञ्चनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयती‌न्यजेऽहम् ॥१॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगन्धगन्धैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसामगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान् ।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोग्यान् जिनेंद्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहम् ॥९॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा
स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनन्दनः।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥

चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवानन्मुनिः।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥
अनन्तो धर्मनामा च शान्तिः कुन्थुर्जिनोत्तमः।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥ ४ ॥
कर्म्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसम्भवः।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥६॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण)

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ८ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण)

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ९ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण)

अथ देवजयमाला प्राकृत ।

चत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु ।
तुहु चरणविहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥ १ ॥
जय रिसह रिसीसर णमियपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय ।
जय संभव संभवकय विओय । जय अहिणंदण णंदियपओय ॥२॥
जय सुमइ सुमइ सम्मयपयास । जय पउमप्पह पउमाणिवास ।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंतंतरंग । जय सीयल सीयलवयणभंग ।
जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज । जय वासुपुज्ज पुज्जणाणपुज्ज ॥४॥
जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण ।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त ॥५॥
जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय । जय अर अर माहर विहियसमय ।
जय मल्लि मल्लि आदामगंध । जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥६॥
जय णमि णमियामरणियरसामि । जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि ।
जय पास पासछिंदणकिवाण । जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥७॥

घत्ता ।

इह जाणिय णामहिं, दुरियविरामहिं, परहिंवि णमिय सुरावलिहिं ।
अणहणहिं अणाइहिं, समियकुवाइहिं, पणविमि अरहंतावलिहिं ॥
ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

अथ शास्त्रजयमाला प्राकृत ।

संपइ सुहकारण, कम्मवियारण, भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि, सत्तपयास्समि, सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥१॥

जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार। गणिंदविगुंफिय गंथपयार।
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणिं ॥१॥
अवग्गहईहअवायजुएहि। सुधारणभेयहिं तिण्णिसएहि।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥२॥
सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार। सुबारहभेय जगत्तयसार।
सुरिंदणरिंदसमच्चिओ जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥३॥
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्णपुराकिउलद्धि।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥४॥
जु लोयअलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णवि कालसरूव भणेइ।
चउग्गइलक्खण दुज्जउ जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥५॥
जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावयधम्महिं जुत्ति जणेइ।
णिउग्गुवितिज्जउ इत्थु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥७॥
सुजीवअजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु।
चउत्थुणिउग्गु विभासिय णाणिं। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥८॥
तिभेयहिं ओहि विणाण विचित्तु। चउत्थु रिजोविउलंमइ उत्तु।
सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥९॥
जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु।
पयच्चहुभत्तिभरेण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१०॥
पयाणि सुबारहकोडिसयेण। सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण।
सहस्सअठावण पंच वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥
इकावण कोडिउ लक्ख अठेव। सहस चुलसीदिसया छक्केव।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥११॥

घत्ता-इह जिणवरवाणि विसुद्धमई । जो भवियणणियमण धरई ।
सो सुरणरिंदसंपय लहिवि । केवलणाण विउत्तरई ॥१३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ गुरुजयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तव कम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥ १ ॥
वंदामि महारिसि सीलवंत । पचेंदियसंजम जोगजुत्त ।
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति । जे चउदहपुव्वह मुणि थुणंति ॥२॥
पादाणु सारवार कुट्ठवुद्धि । उप्पण्णजाह आयासरिद्धि ।
जे पाणाहारी तोरणीय जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥
जे मोणिधाय चंदाहणीय । जे जत्थत्थवणि णिवासणीय ।
जे पंचमहव्वय धरणधीर । जे समिदि गुत्ति पालणहि वीर ॥४॥
जे वड्ढहि देह विरत्तचित्त । जे रायरोसभयमोहचत्त ।
जे कुगइहि सवरु विगयलोह । जे दुरियविणासण कामकोह ॥५॥
जे जल्लमल्ल तिणलित्त गत्त । आरम्भ परिगह जे विरत्त ।
जे तिण्णकाल वाहर गमंति । छट्ठट्ठम दसमउ तउचरंति ॥ ६ ॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति । जे णीरसभोयण रइ करंति ।
ते मुणिवर वंदउँ ठियमसाण । जे कम्म डहइवरसुक्कझाण ॥७
बारह विह संजम जे धरंति । जे चारिउ विकहा परहरंति ।
बावीस परीषह जे सहंति । संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥

जे धम्मबुद्ध महियलि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिस गमंति ।
जे सिद्धिविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास आहार लिंति ॥९॥
गोदूहण जे वीरासणीय । जे धणुह सेज वज्जासणीय ।
जे तवबलेण आयास जंति । जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥१०॥
जे सत्तुमित्त समभावचित्त । ते मुणिवरवंदउ दिढचरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त । ते मुणिवरवंदउं जगपवित्त ॥११॥
जे सुज्झा णिज्झा एकचित्त । वंदामि महारिसि मोखपत्त ।
रयणत्तयरंजिय सुद्धभाव । ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥१२॥
घत्ता-जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधूअणुराईया ।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते रिसिवर मई झाईया ॥१३॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

---

(४) देवशास्त्रगुरु भाषा पूजा ।

अडिल्ल-प्रथमदेव अरहन्त सु श्रुतसिद्धान्तजू ।
गुरु निर्ग्रंथ महन्त मुकतिपुरपन्थजू ॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा-पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीकसुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
भर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि. अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा—मलिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं ॥
जे त्रिजग उदरमँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं।
अर्हंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ २ ॥

दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं ॥२॥
यह भवसमुद्र अपार तारण—के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं।
अर्हंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ ३ ॥

दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ॥ ३ ॥
जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥

लहि कुन्दकमलादिक पहुप. भव भव कुवेदनसों बचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं॥ ४ ॥
दोहा–विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
तासों पूजों परमपद; देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥४॥
अति सबल मद कंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुड़समान है॥
उत्तम छहोंरसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय चरुं ॥ ५ ॥
जे त्रिजग उद्यम नाश कीनें मोहतिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति पभावली॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं॥ ६ ॥
दोहा–स्वपरप्रकाशक जोति अति दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद. देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ॥६॥
जो कर्म–ईंधन दहन अग्निसमूहसम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धि ताकरि सकलपरिमलता हँसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहिं पचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ७ ॥
दोहा–अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ७॥

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीकसुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा॥
भर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि. अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं॥ १॥

दोहा—मलिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं॥
जे त्रिजग उदरमँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं।
अर्हंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं॥ २॥

दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं॥२॥
यह भवसमुद्र अपार तारण—के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं।
अर्हंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं॥ ३॥

दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ३॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं॥ ३॥
जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं॥

लहि कुन्दकमलादिक पहुप. भव भव कुवेदनसों बचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ ४ ॥

दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
तासों पूजों परमपद; देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥४॥

अति सबल मद कंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुड़समान है ॥
उत्तम छहोंरसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय चरुं ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीनें मोहतिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ ६ ॥

दोहा—स्वपरप्रकाशक जोति अति दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ॥६॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूहसम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धि ताकरि सकलपरिमलता हँसै ॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहिं पचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ७ ॥

दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं ॥ ७ ॥
लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, परम अम्रतरस सचूं।
अर्हंतश्रुतसिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ८ ॥
दोहा–जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रसलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं ॥ ८ ॥
जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं ॥
इहभाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूं।
अर्हंत श्रुत सिद्धांत गुरु, निर्ग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ॥ ९ ॥
दोहा–वसुविधि अर्घ संजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा–देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥ १ ॥

पद्धड़ि छन्द।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि। जीते अष्टादशदोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर। कहवतके छयालिस गुण गंभीर ॥२॥
शुभ समवसरणशोभा अपार। शत इंद्र नमत कर शीस धार।
देवाधिदेव अर्हंत देव। वंदो मनवचतनकरि सु सेव ॥३॥

तिनकी धुनि है ओंकाररूप । निरअक्षरमय महिमा अनूप ।
दश अष्ट महाभाषा समेत । लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥४॥
सो स्यादवादमय सप्त भंग । गणधर गूँथे बारह सु अंग ।
रवि शशि न हरै सो तमहराय । सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥५
गुरु आचारज उवझाय साध । तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध ।
संसारदेह वैराग धार । निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस । भवतारनतरन जहाज ईस ।
गुरुकी महिमा वरनी न जाय । गुरु नाम जपों मनवचकाय ॥७॥
सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरे ।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता व स्थिरता हो, वह नीचे लिखे अनुसार वीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करै । यदि स्थिरता नहीं हो, तो इस पूजाके आगे पत्र २०९ में जो अर्घ लिखा है, उसको पढ़कर अर्घ चढ़ावै ।

---

(५) वीसतीर्थंकर पूजा भाषा ।

दीप अढ़ाई मेरुपन, अब तीर्थंकर वीस ।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र अवतर अवतर ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।

इन्द्रफणींद्रनरेंद्रवंद्य, पद निर्मलधारी।
शोभनीक संसार, सार गुण हैं अविकारी॥
क्षीरोदधिसम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार।
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेहमँझार॥
श्रीजिनराज हो भव, तारणतरणजिहाज॥ १॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं।

(इस पूजामें यदि बीस पुंज करना हो तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये।)

ॐ ह्रीं सीमंधर-युग्मंधर-बाहु-सुबाहु सजात-स्वयंप्रभु-ऋषभानन-अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभु-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभु-वीरषेण-महाभद्र-देवयशाऽजितवीर्य्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

तीन लोकके जीव, पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये॥
बावन चंदनसों जजूं (हो), भ्रमनतपन निरवार। सीमं०॥२॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जग-नामी॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो), पूजों तुम गुणसार। सीमं०॥३॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं॥३॥

भाविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो ।
जतिश्रावकआचार कथनको, तुम्हीं बड़े हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदनप्रहार । सीमं० ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥४॥

कामनाग विषधाम-नाशको गरुड़ कहे हो ।
छुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार । सीमं० ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं ॥५॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमांहि भरयो है ।
मोह महातम घोर, नाश परकाश करयौ है ॥
पूजों दीपप्रकाशसों हो) ज्ञानज्योतिकरतार । सीमं० ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशाय दीपं ॥६॥

कर्म आठ सब काठ,-भार विस्तार निहारा ।
ध्यान अगनिकर प्रगट, सर्व कीनों निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो, दुःख जलै निरधार । सीमं० ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं ।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं ।
सबको छिनमें जीत, जैनके मेरु खरे हैं ॥
फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछित फल दातार । सी० ॥८॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं ।

जल फल आठों दरव, अरघ कर प्रीत धरी है ।
गणधर इन्द्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है ॥

'द्यानत' सेवक जानके (हो), जगतें लेहु निकार । सीमं० ॥९॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि० स्वाहा।

अथ जयमाला आरती ।

सोरठा–ज्ञानसुधाकर चन्द, भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतमभान अमन्द, तीर्थंकर वीसों नमों ॥ १ ॥

सीमन्धर सीमन्धर स्वामी । जुगमन्धर जुगमन्धर नामी ।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे । करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥
जात सुजात केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं । अनन्त वीर्य वीरजकोषं ॥ २ ॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं । सुगुण विशाल विशाल दयालं ।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं । चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥ ३ ॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता । श्रीभुजंग भुजंगम भरता ।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं । नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥ ४ ॥
वीरसेन वीरं जग जानै । महाभद्र महाभद्र बखानै ।
नमों जसोधर जसधरकारी । नमों अजितवीरज बलधारी ॥ ५ ॥
धनुष पांचसै काय विराजै । आव कोड़िपूरब सब छाजै ।
समवसरण शोभित जिनराजा । भवजलतारनतरन जिहाजा ॥६॥
सम्यक् रत्नत्रयनिधि दानी । लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी ।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सोहैं । सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥७॥

दोहा–तुमको पूजै वंदना, करै धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ विद्यमानवीसतीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥१॥

ॐ ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभुऋषभानन-अनन्तवीर्यसूरप्रभुविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननचन्द्रबाहुभुजंगमई-श्वरनेमिप्रभुवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येति विंशतिविद्यमान-तीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

---

(६) अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ।

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वन्दे भावनव्यन्तरान्द्युतिवरान्कल्पामरान्सर्वगान् ॥
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै-
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये ॥१॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ॥१॥

अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां।
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम् ॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥२॥

जम्बूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठकनकप्रावृड्घनाभाजिनः।

सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना
भूतानागतवर्त्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ ३ ॥
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुण्डले मानुषाङ्के ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४
द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ
द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ ।
शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तहेमप्रभा-
स्ते सज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥५
ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धिअकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घं निर्वपामि ॥

इच्छामि भंते—चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण-चेइयाणि ताणि सव्वाणि । तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोयसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्लाणेण । णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समा-हिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

(इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्णिकमाध्याह्निकअपराह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्या-

नुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(कायोत्सर्ग करना और नीचे लिखे मंत्रका नौवार जाप करना)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥
ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

---

(७) सिद्धपूजा।

उर्द्धवाधो रयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितम्।
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

निरस्तकर्मसम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवम्॥ १॥

(सिद्धयन्त्रकी स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं
हीनादिभावरहितं भववीतकायम्।

रेवापगावरसरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं ॥१
आनन्दकन्दजनकं घनकर्ममुक्तं
सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतम्।
सौरभ्यवासितभुवं हरिचन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं।
सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठ,
सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालम्।
सौगन्ध्यशालिवनशालिवराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशिनिभंवरसिद्धचक्रम् ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ॥३
नित्य स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञ
द्रव्यानपेक्षममृत मरणाद्यतीतम्।
मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं।
ऊर्द्धस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं
ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम्।
क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं।

आतङ्कशोकभयरोगमदप्रशान्तं ।

निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम् ॥

कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै–

र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितान्तं ।

त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपम् ॥

सद्द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां ।

धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं ।

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै–

र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवन्द्यम् ।

नारिङ्गपूगकदलीफलनारिकेलैः ॥

सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं ।

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः सङ्गं वरं चन्दनं ।

पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकम् ॥

धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये ।

सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम् ॥९

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं ॥९

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं ।

सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ॥

कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं ।
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति ।

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं ।
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोऽपि तीर्थङ्कराः ॥
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥ ११

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शान्त निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥
सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१॥
विदूरितसंसृतभाव निरङ्ग । समामृतपूरित देव विसङ्ग ॥
अबन्ध कषायविहीन विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥२॥
निवारितदुष्कृतकर्मविपास । सदामलकेवलकेलिनिवास ॥
भवोदधिपारग शान्त विमोह । प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥३॥
अनन्तसुखामृतसागर धीर । कलङ्करजोमलभूरिसमीर ॥
विखण्डितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥४॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक । विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥
विहार विराव विरङ्ग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥५॥
रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ।
सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥६॥
नरामरवन्दित निर्मलभाव । अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव ॥
सदोदय विश्वमहेश विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥

विदंभ वितृष्ण विदोष विनिंद्र। परात्पर शंकर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥८
जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिंतित निर्मल निरहंकार।
अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥९॥
विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१०॥
असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदीन्द्रवंद्यम्।
निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति
सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥११॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

अडिल्ल छन्द—अविनाशी अविकार परमरस धाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो॥
शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो॥१॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे।
नित्य निरंजन देव सरूपी ह्वो रहे॥
ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिके।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिरनायके॥२॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशते, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरे सो पाइये, परम सिद्ध भगवान॥ ३॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सोलहकारणका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे॥ १॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं॥ १॥

दशलक्षणधर्मका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे॥ २॥
ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसं-
-यमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घ्यं॥ २॥

रत्नत्रयका अर्घ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे शिवरत्नमहं यजे॥ ३॥
ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोद-
-शप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

अथ पञ्चपरमेष्ठिजयमाला (प्राकृत)

मणुय–णाइन्द–सुरधरियछत्तत्तया। पञ्चकल्लाणसुक्खावली पत्तया॥
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं। ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥१॥
जेहिं झाणग्गिवाणेहि अइथट्ठयं। जन्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं॥
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं। ते महा दिंतु सिद्धावरं णाणयं॥२॥
पञ्चहाचारपञ्चग्गिसंसाहया। वारसंगाइं सुयजलहिं अवगाहया॥
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया। सुरिओ दिंतु मोक्खं गया संगया॥
घोरसंसारभीमाडवीकाणणे। तिक्खवियरालणहपावपञ्चाणणे॥
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया। वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया॥४

उग्गतवयरणकरणेहिं झीणं गया । धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया ॥
णिब्भरं तवसिरीऐ समालिंगया । साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥९॥
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए । गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए ॥
लहइ सो सिद्धसुक्खाइ वरमाणणं । कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥१०॥

आर्य्या—अरहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहू पञ्चपरमेट्ठी ।
एयाण णमुक्कारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्योऽर्घं-महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते पञ्चगुरुभत्ति काओसग्गो कओ, तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडि हेरसंजुत्ताणं अरहंताणं । अट्ठगुण सपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं । अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं । आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं । तिरयण गुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं । णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि । दुःखक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं । इत्याशीर्वादः । (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्) ।

---

[९] समुच्चयचौवीसी पूजा ।

(कविवर वृन्दावनजीकृत)

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपार्स जिनराय ।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज पूजितसुरराय ॥
विमल अनंत धर्मजसउज्जल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय ।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्सप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनिमनसम उज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनककटोरी धीर, दीनीं धार धरा॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनन्दकंद सही।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंगभरी।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरी॥ चौवीसों॥ २॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं।

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे।
मुकताफलकी उनमान, पुंज धरों प्यारे॥ चौवीसों०॥ ३॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं।

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे॥ चौवीसों०॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं।

मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने॥ चौवीसों॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं।

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिरमोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागै॥ चौवीसों०॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ।

दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हों ॥ चौवीसों ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा० ॥

शुचि पक्क सरव फल सार, सब ऋतुके ल्यायो ।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौवीसौं० ॥८॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ॥

जलफल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोच्छ वरों ॥
चौवीसों श्रीजिनचन्द, आनंदकंद सही ।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं ।

जयमाला ।

दोहा–श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमरपददेत ॥ १ ॥

घत्ता–जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा ।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसौं जिनराज वरा ॥ २ ॥

जय रिषभदेव रिषिगन नमंत। जय अजित जीत वसुअरि तुरन्त।
जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर। ३॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुति तनरसाल।
जय जय सुपास भवपासनाश। जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥४॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५ ॥

जय विमल विमलपददेनहार । जय जय अनंत गुनगन अपार ।
जय धर्म धर्म शिवशर्मदेत । जय शांति शांतिपुष्टीकरेत ॥ ६ ॥
जय कुंथु कुंथुवादिक रखेय । जय अर जिन वसुअरिक्षय करेय ॥
जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल । जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल ॥७॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम । जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम ॥
जय पारसनाथ अनाथनाथ । जय वर्द्धमान शिवनगरसाथ ॥ ८ ॥

घत्ता–चौवीस जिनंदा आनँदकंदा, पापनिकंदा सुखकारी ।
तिनपदजुगचन्दा उदय अमंदा, वासववंदा हितधारी ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सोरठा–भुक्तिमुक्तिदातार, चौवीसों जिनराजवर ।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै ॥१०॥

इत्याशीर्वादः । (पुष्पांजलिं क्षिपेत)

---

(१०) सप्तऋषिपूजा ।

छप्पय–प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर ।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुन्दर चौथो वर ॥
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि ।
सप्तम जयमित्राख्य सर्वचारित्रधामगनि ॥
ये सातौं चारणऋद्धिधर, करूं तासु पद स्थापना ।
मैं पूजूं मनवचकायकरि, जो सुख चाहूं आपना ॥

ॐ ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वरा ! अत्रावतर अवतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

गीता छन्द ।

शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायके ॥
भव तृषा कंद निकंद कारण, शुद्ध घट भरवायके ॥
मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं ।
ता करें पातिक हरें सारे सकल आनंद विस्तरूं ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुंदरजयवानविनयलालसजय-मित्रर्षिभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं ॥ १ ॥
श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द मन्द घिसायके ।
तहु गन्ध प्रसरति दिगदिगन्तर, भर कटोरी लायके ॥ म०
ॐ ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालस-जयमित्रर्षिभ्यो चन्दनं ॥ २ ॥
अति धवल अक्षत खण्डवर्जित मिष्ट राजनभोगके ।
कलधौत थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोगके ॥ म०॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतान् निर्वपामि ॥३॥
बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके ।
केतकी चम्पा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥
पकवान नाना भांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये ।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुटकर थारी लये ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥
कलधौत दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृतसारसो ।
अति ज्वलित जगमग जोति जाकी, तिमिर नाशनहार सो ॥म०॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

दिक्चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही ।
सो लाय मन वच काय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके ।
द्रावड़ी दाड़िम चारु पुंगी, थाल भर भरवायके ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना ।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

वन्दू ऋषिराजा, धर्मजहाजा, निजपर काजा, करत भले ।
करुणाके धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी, भरम दले ॥
काटत यमफन्दा, भविजन वृन्दा, करत अनंदा, चरणनमें ।
जो पूजें ध्यावें, मङ्गल गावें, फेर न आवें भववनमें ॥

पद्धड़ी छन्द ।

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत । त्रस थावरकी रक्षा करंत ॥
जय मिथ्यातमनाशक पतङ्ग । करुणारसपूरित अङ्गअङ्ग ॥ १ ॥
जय श्रीस्वरमनु अकलङ्करूप । पद सेव करत नित अमर भूप ॥
जय पञ्च अक्ष जीते महान । तप तपत देह कञ्चन समान ॥२॥
जय निचय सप्त तत्त्वार्थभास । तप रमातनो तनमें प्रकाश ।
जय विषय रोध सम्बोध भान । परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥३
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल । लखि इन्द्रजालवत जगतजाल ॥

जय तृष्णाहारी रमण राम। निज परणतिमें पायो विराम ॥ ४ ॥
जय आनँदघन कल्याणरूप। कल्याण करत सबको अनूप ॥
जय मदनाशन जयवान देव। निरमद विरचित सब करत सेव ॥५॥
जय जेय विनयलालस अमान। सब शत्रु मित्र जानत समान ॥
जय कृशितकाय तपके प्रभाव। छवि छटा उड़ति आनंददाय ॥६॥
जयमित्र सकल जगके सुमित्र। अनगिनत अधम कीने पवित्र ॥
जय चन्द्रवदन राजीव–नयन। कबहूं विकथा बोलत न वयन ॥७॥
जय सातों मुनिवर एक सङ्ग। नित गगन गमन करते अभङ्ग ॥
जय आये मथुरापुरमँझार। तहँ मरीरोगको अति प्रचार ॥८॥
जय जय तिन चरणोंके प्रसाद। सब मरी देवकृत भई बाद ॥
जय लोक करे निर्भय समस्त। हम नमत सदा तिन जोर हस्त ॥९॥
जय ग्रीषम ऋतु पर्वतमझार। नित करत अतापन योग सार ॥
जय तृषा परीषह करत जेर। कहुं रंच चलत नहिं मन सुमेर ॥१०
जय मूल अठाइस गुणन धार। तप उग्र तपत आनन्दकार ॥
जय वर्षा ऋतुमें वृक्षतीर। तहँ अति शीतल झेलत समीर ॥११॥
जय शीत काल चौपटमँझार। कै नदी सरोवर तट विचार ॥
जय निवसतध्यानारूढ़ होय। रन्चक नहिं मटकत रोम कोय ॥१२
जय मृतकासन वज्रासनीय। गोदूहन इत्यादिक गनीय ॥
जय आसन नाना भांति धार। उपसर्ग सहत ममता निवार ॥१३
जो जपत तिहारो नाम कोय। तिस पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय ॥
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार। दारिद्रतनो दुख होय क्षार ॥१४
जय चोर अग्नि डांकिन पिशाच। अरु ईतिभीत सब नसत सांच ॥
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक ॥

रोला–ये सातों मुनिराज महातपलछमी धारी ।
परम पूज्य पद धरें सकल जगके हितकारी ॥
जो मन वच तन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावैं ।
सो जन मनरंङ्गकाल अष्ट ऋद्धनको पावै ॥

दोहा–नमत करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज ।
पञ्च परावर्तननितें, निरवारो ऋषिराज ॥
ॐ ह्रीं सप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

---

(११) अथ सोलहकारण पूजा ।

अडिल्ल–सोलहकारण भाव तीर्थंकर जे भये ।
हरषे इन्द्र अपार मेरूपै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं ।
हमहू षोड़शकारण भावैं भावसौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोड़शकारणानि ! अत्रावतरावतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणानि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणानि ! अत्र मम सन्निहितौ भव भव वषट् ।

चौपाई–कंचनझारी निर्मल नीर । पूजौं जिनवर गुणगंभीर ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दर्शविशुद्धि भावना भाय । सोलह तीर्थंकरपददाय ।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धआदिषोडशकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशाय जलं ॥

चंदन घिस कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवरके पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः चंदनं० ॥

तंदुल धवल सुगंध अनूप। पूजौं जिनवर तिहुँजगभूप।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शनवि० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अक्षतान् नि० ॥

फूल सुगंध मधुपगुंजार। पूजौं जिनवर जगआधार।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पुष्पं नि० ॥

सदनेवज बहुविध पकवान। पूजौं श्री जिनवर गुणखान।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शनवि० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः नैवेद्यं नि० ॥

दीपकजोति तिमर छयकार। पूजू श्रीजिन केवलधार।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥

दर्शविशुद्ध भावना भाय। सोलह तीर्थंकरपद दाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो दीपं नि० ॥

अगर [illegible] शुभ खेय। श्रीजिनवर आगैं महकेय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणेभ्यो निर्वपामि ॥७॥

श्रीफल आदि बहुत फलसार। पूजौं जिन वांछितदातार।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥८॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणेभ्यो फलं ॥ ८ ॥

जल फल आठों दरब चढ़ाय। 'द्यानत' व्रत करौं मनलाय,-परम-
गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा—षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास।
पापपुण्य सब नाशकै, ज्ञानभानु परकास ॥ १ ॥

दर्शनविशुद्ध धरै जो कोई। ताको आवागमन न होई ॥
विनय महा धारे जो प्रानी। शिववनिताकी सखी बखानो ॥२॥
शील सदा दिढ़ जो नर पालै। सो औरनकी आपद टालै ॥
ज्ञानाभ्यास करै मनमांहीं। ताके मोहमहातम नाहीं ॥३॥
जो संवेगभाव विस्तारै। सुरगमुकतिपद आप निहारै ॥
दान देय मन हरष विशेखै। इह भव जस परभव सुख देखै ॥४॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा। चूरै करमशिखर गुरु भाषा ॥
साधुसमाधि सदा मन लावै। तिहुंजगभोगि भोग शिव जावै ॥५॥
निशदिन वैयावृत्य करैया। सो निहचै भवनीर तरैया ॥
जो अरहंतभगति मन आनै। सो जन विषय कषाय न जानै ॥६॥
जो आचारजभगति करै है। सो निर्मल आचार धरै है ॥
बहुश्रुतवंतभगति जो करई। सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥७॥

प्रवचनभगति करै जो ज्ञाता । लहै ज्ञान परमानंददाता ॥
षट्आवश्य काल जो साधै । सो ही रतनत्रय आराधै ॥ ८ ॥
धरमप्रभाव करै जे ज्ञानी । तिन शिवमारग रीति पिछानी ॥
वत्सलअंग सदा जो ध्यावै । सो तीर्थंकरपदवी पावै ॥९॥

दोहा-एही सोलहभावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देवइन्द्रनरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय ॥१०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घं ।

(अर्घके बाद विसर्जन भी करना चाहिये)

---

(१२) दशलक्षणधर्मपूजा ।

अडिल्ल-उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं ।
शौच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं ॥
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं ।
चहुंगतिदुखतैं काढ़ि मुक्तिकरतार हैं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्रावतर अवतर ! संवौषट् ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा-हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभ ।
भव आताप निवार, दसलच्छन पूजों सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामि ॥१॥

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा । भवआ० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामि ॥२॥

अमल अखंडित सार, तंदुल चंद्रसमान शुभ ॥ भवआ० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

फूल अनेक प्रकार, महकैं ऊरघलोक लों ॥ भवआ० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरस-युत ॥ भवआ० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी ॥ भवआ० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता ॥ भवआ० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥

फलकी जाति अपार, घ्रान नयन-मनमोहने ॥ भवआ० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

आठों दरब सम्हार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अंगपूजा।

सोरठा–[१]पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।

धरिये क्षमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

---

१ कहीं, २ सोरठा कहकर प्रत्येक धर्मकी स्थापना करते हैं और फिर आगेकी चौपाई तथा गीता कहकर अर्घ चढ़ाते हैं और कहीं२ सोरठाके अन्तमें भी अर्घ चढ़ाते हैं और चौपाई गीताके अन्तमें भी अर्घ चढ़ाते हैं। यथार्थमें सोरठा और चौपाई गीताके अन्तमें एक २ धर्मका अलग २ एक २ अर्घ चढ़ाना चाहिये।

चौपाई मिश्रित गीताछंद ।

उत्तमक्षमा गहो रे भाई । इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो । गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै ।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरव किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्राणि, साम्य जल ले सीयरा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

मान महांविषरूप, करहि नीचगति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्राणी सदा ॥ २ ॥

उत्तम मार्दव गुन मन माना । मान करनको कौन ठिकाना ॥
वस्यो निगोदमाहिंतैं आया । दमरी रूंकन भाग विकाया ॥

रूंकन विकाया भागवशतैं, देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चंडाल हुआ, भूप कीडोंमे गया ॥
जीतव्य–जोवन–धनगुमान, कहा करै जलवुदवुदा ।
करि विनय बहुश्रुत बड़े जनकी, ज्ञानका पावे उदा ॥२॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना वसे ।
सरल स्वभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥

उत्तमआर्जवरीति बखानी । रंचक दगा बहुत दुखदानी ॥
मनमें हो सो वचन उचरिये । वचन होय सो तनसौं करिये ॥

तत्त्वार्थसूत्रमें सत्यसे पहले शौचधर्मको कहा है, इस कारण इस पूजामें भी हमने तत्त्वार्थसूत्रके पाठानुसार शौचधर्मको पहले कर दिया है।

करिये सरल तिहुंजोग अपने, देख निर्मल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अँगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंधविसेखता।
भय त्यागि दूध विलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥ ३॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥३॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसारमें॥ ४॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना। लोभ पापको बाप बखाना॥
आसपास महां दुखदानी। सुख पावै संतोषी प्राणी॥
प्राणी सदा शुचि शीलजपतप ज्ञानध्यानप्रभावतैं।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष स्वभावतैं।
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै॥
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौचगुन साधू लहै॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥४॥

कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी॥ ५॥
उत्तम सत्य वरत पालीजे, परविश्वास घात नहिं कीजे।
सांचे झूठे मानुष देखो, आपनपूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लीजिये॥
ऊंचे सिंहासन बैठ वसुनृप, धर्मका भूपति भया।
वच झूठसेती नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया॥ ५॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥५॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो ।
संजम रतन संभाल, विषयचोर बहु फिरत हैं ॥ ६ ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे । भवभवके भाजैं अघ तेरे ।
सुरग नरक पशुगतिमें नाहीं । आलसहरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझें, तू रुल्यो जगकीचमें ।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जममुखबीचमें ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥
तप चाहैं सुरराय, कर्म सिखरको वज्र है
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सक्ति सम ॥ ७ ॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना । कर्मशिखरको वज्र समाना ।
बस्यो अनादिनिगोदमंझारा । भूविकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्रीजैनवानी तत्वज्ञानी, भई विषमपयोगता ॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरै ।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरै ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥
दान चार परकार, चार संघको दीजिये ।
धन बिजुली उनहार, नरभव लाहो लीजिये ॥ ८ ॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा । औषध शास्त्र अभय अहारा ।
निश्चय रागद्वेष निरवारै । ज्ञाता दोनों दान संभारै ॥
दोनों संभारै कूपजलसम, दरब घरमें परिनया ।

निजहाथ दीजे साथ लीजे, खायाखोया वह गया ॥
धनि साधु शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधको।
विन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोधको ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मोङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

परिग्रह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये ॥ ९ ॥
उत्तम आकिंचन गुण जानौ। परिग्रहचिंता दुख ही मानौ।
फाँस तनकसी तनमें सालै। चाह लंगोटीकी दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर विना मुनिमुद्रा धरैं।
धनि नगनपर तन-नगन ठाड़े, सुर असुर पायन परैं ॥
धरमांहि तिसना जो घटावैं, रुचि नहीं संसारसौ।
बहु धन बुराहू भला कहिये, लीन पर उपगारसौ ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मोङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ॥९॥

शीलवाड़ि नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥१०॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो। माता बहिन सुता पहिचानो ॥
सहैं वानवर्षा बहु सूरे। टिकैं न नैन वान लखि कूरे ॥
कूरे त्रियाके अशुचितनमें, कामरोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं, मसानमांहीं, काक ज्यों चौंचै भरैं।
संसारमें विषवेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरमदशपैंड़ि चढ़िकैं, शिवमहलमें पग धरा ॥१०॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ॥१०॥

अथ जयमाला !

दोहा–दशलक्षण वंदौं सदा, मनवंछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हमपर होहु सहाय ॥१॥

उत्तम क्षमां जहां मन होई। अंतरबाहर शत्रु न कोई॥
उत्तममार्दव विनय प्रकासै। नाना भेद ज्ञान सब भासै॥ १ ॥
उत्तमआर्जव कपट मिटावै। दुरगति त्यागी सुगति उपजावै॥
उत्तमशौच लोभ परिहारी। संतोषी गुनरतनभँडारी॥ ३ ॥
उत्तमसत्यवचन मुख बोले। सो प्रानी संसार न डोलै।
उत्तमसंयम पाले ज्ञाता। नरभव सफल करै ले साता॥ ४ ॥
उत्तमतप निरवांछित पाले। सो नर करमशत्रुको टालै॥
उत्तमत्याग करै जो कोई। भोगीभूमि-सुर-शिवसुख होई॥२॥
उत्तमआंकिंचनव्रत धारै। परमसमाधिदशा विसतारै॥
उत्तमब्रह्मचर्य मन लावै। नरसुरसहित मुकतिफल पावै॥ ६ ॥

दोहा–करै करमकी निर्जरा. भवपींजरा विनाशि।
अजर अमरपदको लहै, 'द्यानत' सुखकी राशि ॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना)

(१३) पंचमेरुपूजा ।

तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्वदा ।
तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा ॥
दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनतमूल विराजही ।
पूजौं असी निजधाम प्रतिमा, होहि सुख, दुख भाजही ॥१॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिअस्सीचैत्यालयस्थजिनप्रातिमासमूह ! अत्रावतरावतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिअस्सीचैत्यालयस्थाजिनप्रातिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।—

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिअस्सीचैत्यालयस्थजिनप्रातिमासमूह ! अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट् ।

अथाष्टक ।

चौपाई आंचलीबद्ध (१९ मात्रा)

सीतलमिष्टसुवास मिलाय । जलसौं पूजौं श्री जिनराय ॥
महांसुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥
पांचों मेरु असी निजधाम । सब प्रतिमाजीको करों प्रणाम ॥
महांसुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनविम्बेभ्यो जलं ॥१॥

जल केशरकरपूरमिलाय । चन्दनसौं पूजौं श्रीजिनराय ॥
महांसुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों ॥२॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थाजिनविम्बेभ्यः चंदनं ।

अमल अखंड सुगंध सुहाय · अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥३॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थबिम्बेभ्यो अक्षतान् ।

वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौं पूजौं जिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥४॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पुष्पं ॥

मनवांछित बहु तुरत बनाय । चरुसौं पूजौं श्री जिनराय।
महांसुख होय देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥५॥
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं ॥

तमहर उज्जल जोति जगाय दीपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पांचों० ॥६॥
ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं ॥

खेउं अगर परिमल अधिकाय । धूपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥७॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं ॥

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय । फलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय । पांचों० ॥८॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः फलं ॥

आठ दरबमय अरघ बनाय । 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महांसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पांचों० ॥९॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

प्रथम सुदर्शन स्वाम, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमें प्रगट॥ १॥

वेसरी छंद।

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै। भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥ १॥
ऊपर पंच-शतकपर सोहै। नंदनवन देखत मन मोहै॥चै०॥३॥
साढ़े बासठ सहस ऊंचाई। वन सौमनस शोभा अधिकाई॥४॥
ऊंचा जोजन सहस छतीसं। पांडुकवन सोहै गिरिसीसं॥चै०॥५॥
चारों मेरु समान बखानो। भूपर भद्रसाल चहुं जानो॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥६॥
ऊंचे पांच शतकपर भाखे। चारों नंदनवन अभिलाखे॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥७॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा। वन सौमनस चार बहुरंगा॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥८॥
उच्च अठाइस सहस बताये। पांडुक चारों नव शुभ गाये॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥९॥
सुरनर चारन वंदन आवैं। सो शोभा हम किह मुख गावैं॥
चैत्यालय अस्सी सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी॥१०॥

दोहा-पंचमेरुकी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत,' फल जानैं प्रभू, तुरत महासुख होय॥११॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबंधिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये)

(१४) रत्नत्रयपूजा ।

दोहा—चहुंगतिफणिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार ।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यक्त्रयी निहार ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्रावतरावतर । संवौषट् ।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा—क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहना ।
जनमरोगनिरवार, सम्यक्रत्नत्रय यजों ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्युरोगविनाशनाय जलं ॥ १ ॥

चंदन केसर गारि, परिमल महा सुगंधमय । जन्मरो० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं ॥ २ ॥

तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदासके । जन्मरो० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ॥ ३ ॥

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करें । जन्मरो० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत । जन्मरो० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमें । जन्मरो० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ॥६॥

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी। जन्मरो० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं ॥ ७ ॥

फलशोभा अधिकार लौंग छुहारे जायफल। जन्मरो० ॥८॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि ॥८॥

आठदरव निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये। जन्मरो० ॥९॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

सम्यकदर्शनज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी।
पार उतारन जान, 'द्यानत' पूजौं व्रतसहित ॥१०॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

दर्शनपूजा।

दोहा—सिद्ध अष्टगुणमय प्रगट, मुक्तमहलसोपान।
जिहबिन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। सन्निहितौ भव भव वषट्।

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल क्षय करै।
सम्यकदर्शनसार, आठ अंग पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यकद० ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अक्षत अनुप निहार, दारिद नाशै सुख भरै। सम्यक० ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकद० ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकद० ॥५॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

दीपज्योति तमहार घटपट परकाशै महां । सम्यकद० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धूप घ्राणसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै । सम्यकद० ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफलआदि विथार, निहचे सुरशिवफल करै । सम्यकद० ॥८॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्यकद० ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति ॥९॥

जयमाला ।

दोहा- आपआप निहचै लखै, तत्वप्रीति व्योहार ।
रहितदोष पचीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥

चोपाइमिश्रित गीता छन्द ।

सम्यकदर्शन रतन गहीजे । जिनवचमैं संदेह न कीजे ।
इहभव विभवचाह दुखदानी । परभवभोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ।
परदोष ढकिये धरम डिगतेको सुथिर कर हरखिये ॥
चहुसंघको वात्सल्य कीजे धर्मकी परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिकै, इहां फेर न आवना ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसहितपञ्चविंशतिदोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

ज्ञानपूजा।

दोहा—पञ्चभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान।

मोह-तपन-हर-चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् ॥

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल क्षय करै।

सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यकज्ञा० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अक्षत अनुप निहार, दारिद नाशे सुख करै। सम्यकज्ञा० ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपा० स्वाहा ॥३॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकज्ञा० ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै। सम्यकज्ञा० ॥५॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपा० स्वाहा ॥५॥

दीपज्योतितमहार, घटपट परकाशे महां। सम्यकज्ञा० ॥६॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धुप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकज्ञा० ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकज्ञा० ॥८॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्यक्ज्ञा० ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपा० स्वाहा ॥९॥

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप जानैं नियत ग्रंथपठन व्योहार ।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द ।

सम्यक्ज्ञान रतन मन भाया । आगम तीजा नैन बताया ॥
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानौं । अक्षर अर्थ उभय संग जानौं ॥
जानौं सुकाल पढ़ो जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तपरीति गही बहु मान देकैं, विनयगुन चित लाइये ॥
ए आठ भेद करम उछेदक, ज्ञानदर्पण देखना ।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझे, और सब पटपेखना ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपा० स्वाहा ॥२॥

चारित्र पूजा ।

दोहा—विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार ।
तीर्थंकर जाकौं धरैं, सम्यक्चारितसार ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्रतिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं त्र॰॰दशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल क्षय करै ।
सम्यक्चारित धार, तेरहविध पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय जलं ॥ १ ॥
जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यकचा० ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय चंदनं निर्वपा० ॥ २ ॥
अक्षत अनुप निहार, दारिद नाशै सुख करै। सम्यकचा० ॥३॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय अक्षतान् निवपा० ॥ ३ ॥
पुहपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकचा० ॥४॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय पुष्पं निर्वपा० स्वाहा ॥४॥
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरैं थिरता करै। सम्यक० । ५ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय नैवेद्यं निर्वपा० स्वाहा ॥५॥
दीपजोति तमहार, घटपट प्रकाशै महां। सम्यकचा० ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधिसम्यकचारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥
धूप घ्राण सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकचा० ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशसम्यकचारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥
श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यक० ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय फलं निर्वपा० स्वाहा। ८ ॥
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यक० ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय अर्घ्यं निर्वपा० स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार।
स्वपर दया दोनो लिये, तेरहविध दुखहार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

सम्यकचारित रतन सँभालो। पांच पाप तजिकें व्रत पालो।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै। नरभव सफल करहु तन छीजै ॥

छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नर्कनिगोदमाहिं, कषायविषयनि टालिये॥
शुभ करमजोग सुघाट आयो पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो शिवपुरी कुशलात है॥ २॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधिसम्यकचारित्राय महार्घ्यं निर्वपा०॥३॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा–सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, इन विन मुकत न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जले दव–लोय॥ १॥

तामै ध्यान सुथिर बन आवै। ताके करमबंध कट जावै।
तापै शिवतिय प्रीति बढ़ावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ २॥
ताकों चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमांहीं॥
जनमजरामृतु दोष मिटावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ३॥
सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलहकारण आराधै॥
सो परमातम पद उपजावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ४॥
सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई॥
सो रागादिक भाव वहावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ५॥
सोई लोकालोक निहारै। परमानंददशा विस्तारै॥
आप तिरै औरन तिरवावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ६॥

दोहा–एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीनभेद व्योहार सब, द्यानतको सुखदाय॥ ७॥

सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये।

(१५) श्रीनन्दीश्वरपूजा।

अडिल्ल–सरव पर्वमें बड़ो अठाई पर्व है।
नन्दीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरव है॥
हमें शक्ति सो नाहिं इहां करि थापना।
पूजों जिनगृह प्रतिमा है हित आपना॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा।
तिहुं धार दयी निरवार, जामन मरन जरा॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनँदभाव धरों॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

भवतपहर शीतलवास, सो चंदननांहीं।
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठांही॥ नंदी०॥ २॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंजधरे सोहै ॥
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को है ॥ नंदी० ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-
नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि ॥३॥

तुम कामविनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं ।
लहुं शील लच्छमी एव, छूटूँ सूकनसौं ॥ नंदी० ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-
नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥४॥

नेवज इन्द्रियबलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥ नन्दी० ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-
नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि ॥५॥

दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसै ॥
टूटै करमनकी राश, ज्ञानकणी दरसै ॥ नन्दी० ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाश-
ज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ॥ ६ ॥

कृष्णागरुधूपसुवास दशदिशिनारि वरै ।
अति हर्षभाव परकाश, मानों नृत्य करै । नंदी० ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-
नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥

बहुविधफल ले तिहुंकाल, आनंद राचत हैं ।
तुम शिवफल देहु दयाल, तो हम जाचत हैं ॥

नंदीश्वरश्रीजिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनंदभाव धरों ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अर्पत हों।
'द्यानत' कीनो शिवखेत, भूप समर्पत हों ॥ नंदी० ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—कातिक फागुन साढ़के, अंत आठ दिनमाहिं।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाहिं ॥ १ ॥

एकसौ तरेसठ कोड़ि जोजनमहा।
लाख चौरासिया एक दिशमें कहा ॥
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भवन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥ २ ॥

चारदिशि चार अंजनगिरि राजहीं।
सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुंदरं ॥ भवन० ॥ ३ ॥

एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल जलभरी ॥
चहुंदिशा चार वन लाखजोजन वरं ॥भवन०॥४॥

सोल वापीनमधि सोल गिरि दधिमुखं।

सहस दश महां जोजन लसत ही सुखं ॥
बावरीकौन दोमाहिं दो रतिकरं । भवन०॥ ५ ॥
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे ।
चार सोले मिले सर्व बावन लहे ॥
एक इक शीशपर एक जिनमदिरं । भवन ॥ ६ ॥
बिंब अठ एकसौ रतनमई सोहही ।
देवदेवी सरव नयनमनं मोह ही ॥
पांचसै धनुष तन पद्मआसनपरं ॥ भवन०॥ ७ ॥
लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं ।
स्यामरंग भौंह सिरकेश छबि देत हैं ॥
वचन बोलत मनों हँसत कालुषहरं ॥ भवन ॥८ ॥
कोटिशशि भानद्युति तेज छिप जात हैं ।
महांवैराग परिणाम ठहरात हैं ॥
नयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं । भवन०॥ ९ ॥

सोरठा ।

नंदीश्वर निजधाम, प्रतिमामहिमाको कहैं ।
'द्यानत' कीनों नाम, यहै भक्ति शिवसुख करै ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये]

— —

(१६) निर्वाणक्षेत्र पूजा ।

सोरठा—परम पूज्य चौवीस, जिँह जिँह थानक शिव गये ।
सिद्ध भूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

गीता छंद ।

शुचि क्षीरदधिसम नीर निर्मल, कनकझारीमें भरौं ।
संसारपार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगिरि गिरनार चंपा, पावापुरि कैलासकौं ।
पूजौं सदा चौवीसजिननिर्वाणभूमिनिवासकौं ॥१॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं ॥ १ ॥

केशर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौं ।
भवपापको संताप मेटौ, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥२॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं ॥ २ ॥

मोतीसमान अखंड तंदुल, अमल आनँदधरि तरौं ।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे॥३॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान् ॥३॥

शुभफूलरास सुवासवासित, खेद सब मनके हरौं ।
दुखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं ॥ ४ ॥

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरों ।
यह भूखदूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करों ॥सम्मे०॥५॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपक प्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरों ।
संशयविमोहविभर्म–तमहर, जोरकर विनती करों ॥सम्मे०॥६॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं ॥ ६ ॥

शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरों ।
सब करमपुंज जलाय दीजे, जोर कर विनती करों ॥ सम्मे० ॥७॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं ॥७ ॥

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारंगतिसों निरवरों ।
निहचै मुकतफल देहु मोकों, जोर कर विनती करों ॥ सम्मे० ॥८॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं ॥ ८ ॥

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरों ।
'द्यानत' करो निर्भय जगततैं, जोर कर विनती करों ॥ सम्मे० ॥९॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

सोरठा–श्रीचौवीसजिनेश, गिरिकैलासादिक नमों ।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निर्वाणतैं ॥ १ ॥

नमों रिषभ कैलासपहारं । नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥
वासुपूज्य चंपापुर वंदों । सनमति पावापुर अभिनंदों ॥ २ ॥

वंदौं अजित अजितपददाता । वंदौं संभवभवदुखघाता ॥
वंदौं अभिनन्दन गणनायक । वंदौं सुमति सुमतिके दायक ॥२॥
वंदौं पदम मुकतिपदमाधर । वंदौं सुपार्श्व आशपासाहर ॥
वंदौं चंदप्रभु प्रभु चंदा । वंदौं सुविधि सुविधिनिधिकंदा ॥ ४ ॥
वंदौं शीतल अघतपशीतल । वंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल ॥
वंदौं विमल विमल उपयोगी । वंदौं अनंत अनंतसुखभोगी ॥५॥
वंदौं धर्म धर्म विस्तारा । वंदौं शांति शांतमनधारा ॥
वंदौं कुंथु कुंथुरखवालं । वंदौं अरि अरहर गुनमालं ॥ ६ ॥
वंदौं मल्लि काममल चूरन । वंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥
वंदौं नमि जिन नमित सुरासुर । वंदौं पार्स पासभ्रमजरहर ॥७॥
वीसौं सिद्धभूमि जा ऊपर, सिखर समेद महागिरि भूपर ॥
एकवार वंदै जो कोई । ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥ ८ ॥
नरगतिनृप सुर शक्र कहावै । तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै ॥
विघनविनाशक मंगलकारी । गुण विलास वंदै नरनारी ॥ ९ ॥

छंद घत्ता ।

जो तीरथ जावै पापमिटावै ध्यावै गावै भक्ति करै ।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरै ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ।

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये ।)

(१७) देवपूजा।

दोहा–प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम पद पूजा करत हूं, हमपै करुना होहि ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवन् अत्र अवतरावतर। संवौषट्[1]।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेंद्र-भगवन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः[2]।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेंद्र-भगवन् अत्र मम सन्निहितो भव भव! वषट्[3]।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो, जल लायो।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल, प्राशुक निर्मल, गुन गायो ॥
प्रभु अंतरजामी त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, दया धरो ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेंद्र-भगवद्भ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

अघतपत निरंतर, अगनिपटंतर, मो उर अंतर, खेद कर्यो।
लै बावन चंदन, दाहनिकंदन, तुमपदवंदन, हरष धर्यो ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो भवातापनाशाय चंदनं० ॥

१ संवौषडिति देवोद्देशेन हविस्त्यागे। २ ठः ठः इति बृहद्ध्वनौ। ३ वषडिति देवोद्देश्यकहविस्त्यागे।

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करे ।
तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरे ॥प्रभु॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति ॥ ३ ॥

सुरनर पशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल, मोहि लिया ।
ताके शर लाऊं फूल चढ़ाऊं, भक्ति बढाऊं, खोल हिया ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नांहीं, भूख सदा ही, मो लागे ।
सद घेवर बावर, लाडू बहु धर, थार कनक भर तुम आगें ॥प्रभु

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्यो क्षुद्रोगनाशाय नैवेद्यं० ॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम, दुख पावें ।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप संवारा, जस गावें ॥ प्रभु० ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहिं पावत हैं ।
कृष्णागुरुधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं, ध्यावत हैं ॥
प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो ।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे, दया धरो ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं० ॥

सबतैं जोरावर, अंतराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं।
फलपुंज विविध भर, नयनमनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं॥ प्र०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं० ॥

आठों दुखदानी, आठनिशानी तुम ढिग आनि निवारन हों;
दीननिस्तारन, अधमउधारन, 'द्यानत' तारन कारण हो ॥ प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला ।

गुण अनंत को कहि सकै, छियालिसों जिनराय ।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय ॥ १ ॥

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी । दो आगम अध्यातम नामी ॥
तीन काल विधि परगट जानी । चार अनंतचतुष्टय ज्ञानी ॥२॥
पंच परावर्तन परकासी । छहों दरवगुनपर्जयभासी ॥
सातभंगवानी परकाशक । आठों कर्म महारिपुनाशक ॥ ३ ॥
नव तत्त्वनके भाखनहारे । दश लच्छनसौं भविजन तारे ॥
ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी । बारह सभा सुखी अकलेशी ॥ ४ ॥
तेरहविधि चारितके दाता । चौदह मारगनाके ज्ञाता ॥
पंद्रह भेद प्रमाद निवारी । सोलह भावन फल अविकारी ॥ ५ ॥
तारे सत्रह अंक भरत भुव । ठारै थान दान दाता तुव ॥
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन । बीस अंक गणधरजीकी धुन ॥६॥
इकइस सर्व घातविधि जानै । बाइस विध नवमे गुन थानै ॥
तेइस निधि अरु रतन नरेश्वर । सो पूजै चौवीस जिनेश्वर ॥७॥

नाश पचीस कषाय करी हैं । देशघाति छव्वीस हरी हैं ॥
तत्व दरब सत्ताइस देखे । मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥ ८ ॥
उनतिस अंक मनुष सब जाने । तीस कुलाचल सर्व बखाने ।
इकतिस पटल सुधर्म निहारे । बत्तिस दोष समायिक टारे ॥९॥
तेतिस सागर सुखकर आये । चौतिस भेद अलब्धि बताये ॥
पैंतिस अच्छर जप सुखदाई । छत्तिस कारन रीति मिटाई ॥१०॥
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें । अठतिस पद लहि नरक अपुनमें ॥
उनतालीस उदीरन तेरम । चालिस भवन इंद्र पूजें नम ॥११॥
इकतालीस भेद आराधन । उदै वियालीस तीर्थंकर भन ॥
तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं । द्वार चवालिस नर चौथेमहिं ॥१२॥
पैंतालीस पल्यके अच्छर । छियालीसों बिन दोष मुनीश्वर ॥
नरक उदै न छियालीस मुनिधुन । प्रकृति छियालिस नाश दशंम गुन ॥ १३ ॥
छियालीस घन राजु सात भुव । अंक छियालीस सरसों कहि कुव ॥
भेद छियालीस अंतर तपवर । छियालिसों पूरन गुन जिनवर ॥१४॥

अडिल्ल–मिथ्या तपन निवारन चन्द समान हो
मोहतिमिर वारनको कारन भानु हो ॥
काल कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो
'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यो पूर्णार्घं निर्वपामि ॥

(पूर्णार्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये)

(१८) सरस्वतीपूजा।

दोहा—जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजै जिनवचप्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

छीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चंगा ॥
तीर्थंकरकी ध्वनि, गणधरने सुनि, अंग रचें चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं ॥ १ ॥

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी।
शारदपद वंदौं, मन अभिनंदौं, पापनिकंदौं, दाह हरी ॥तीर्थं०॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चन्दनं निर्वपामीति।

सुखदासकमोदं, धारकमोदं, अतिअनुमोदं, चंद्रसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥ तीर्थ०॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामि॥३॥

बहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायौ, शील बढ़ायौ, सुख उपजायौ, दोष हरे ॥तीर्थ०॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामि॥४॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया, मिष्ट महा।
पूजूं थुति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥तीर्थं०॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

करि दीपक ज्योतं, तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक, ज्ञान बढ़ै॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामि० ॥६॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर, खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं, खेवत हैं ॥तीर्थ०॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामि० ॥७॥

बादाम छुहारो, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥तीर्थ०॥८

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामि ॥८॥

नयनसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्वलभारी*, मोल धरे।
शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतट धारा, ज्ञान करे॥
तीर्थंकरकी धुनि, गनधरनेसुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामि ॥९॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति, फल लावै।
पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावै ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामि ॥१०॥

अथ जयमाला।

सोरठा–ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

---

*यहां शुद्ध (हाथकी कांती बुनी पवित्र स्वदेशी) खादी धोकर चढ़ाना। हिंसासे बने परदेशी और रेशमके वस्त्र चढ़ाना पापका कारण है।

पहला आचारांग वखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजा सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥ १॥
तीजा ठाना अंग सुजानं। सहस वियालिस पदसरधानं॥
चौथो समवायांग निहारं। चौसठ सहस लाख इकधारं॥ २॥
पंचम व्याख्याप्रगपति दरशं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं। पांचलाख छप्पन हजारं॥ ३॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अंतकृतंदस ईसं। सहस अठाइस लाख तेइसं॥ ४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं। लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं। लाख तिरानवै सोल हजारं॥ ५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं। एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं। दोहजार सब पद गुरुशाखं॥६॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं। इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं॥
अड़सट लाख सहस छप्पन हैं। सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥७
इक सौ बारह कोड़ि वखानो। लाख तिरासी ऊपर जानो॥
ठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अङ्ग सर्व पद माने॥८॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं॥
साढ़े इकीस श्लोक बताये। एक एक पदके ये गाये॥ १०॥

घत्ता—जा वानीके ज्ञानमें, सूझे लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हौं धोक॥

इति सरस्वती पूजा।

(११) गुरुपूजा।

दोहा—चहुं गति दुखसागरविषै, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महां मुनिराज ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुं धार तिहुं गदटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया ॥
भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अधार साधु सु पूज नित गुन जपत हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि० ॥१॥

कर्पूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं।
सब पाप ताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं ॥
भवभोगतनवैराग धार निहार, शिवतप तपत हैं।
तिहु जगतनाथ अराध साधु सु, पूज नितगुन जपत हैं ॥२॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवतापविनाशनाय चंदनं नि०

तन्दुल कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं ॥भव भो०॥३॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

शुभफूलरासप्रकाश-परिमल,-सुगुरुपांयनि परत हौं।
निरवार मार उपाधि स्वामी, शील दिढ़ उर धरत हौं ॥भव०॥४॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं।
पकवान मिष्ट सलौन सुंदर, सुगुरु पायंन प्रीतिसौं।
कर क्षुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं ॥भव०॥५॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं
दीपक उदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा ॥भव०॥६॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०॥

वहु अगर आदि सुगन्ध खेऊं सुगुण पद पद्महिं खरे।
दुख पुन्ज काट जलाय स्वामी गुण अछय चित्तमें धरे ॥भव०॥७॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि०॥७
भर थार पूर बदाम बहुविधि, सुगुरुक्रम आगें धरौं।
मंगल महांफल करो स्वामी, जोर कर विंनती करौं ॥भव०॥८॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०८
जल गंध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली।
'द्यानत' सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली ॥भव०॥९॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—कनककामिनी विषयवश, दीसै सब संसार।
त्यागी वैरागी महां, साधु सुगुनभण्डार ॥ १ ॥

तीन घाटि नवकोड़ सब, वंदौं सीस नवाय।
गुन तिन अट्ठाईस कों, कहूँ आरती गाय ॥ २ ॥
एक दया पालैं मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं।
तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारौं आराधननिकरं ॥
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानै सुहितं।
सातभंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥
नवों पदारथ विधिसौं भाखैं, बंध दशों चूरन करनं।
ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरनं ॥
तेरह भेद काठिया चूरे, चौदह गुनथानक लखियं।
महाप्रमाद पंचदश नाशे, सोलकषाय सबै नशियं ॥ ४ ॥
बंधादिक सत्रह सब चूरे ठारह जन्म न मरन मुनं।
एक समय उनईस परीषह, वीस प्ररूपनिमें निपुणं ॥
भाव उदीक इकीसों जानै, बाइस अभखन त्याग करं।
अहिमिंदर तेईसों वंदैं, इन्द्र सुरग चौबीस वरं ॥ ५ ॥
पचीसों भावन नित भावै, छब्बिस अंगउपंग पढ़ैं।
सत्ताईसों विषय विनाशैं, अट्ठाईसों गुण सु बढ़ैं ॥
शीतसमय सर चौपटवासी, ग्रीषमगिरिसिर जोग धरैं।
वर्षा वृक्ष तरैं थिर ठाढ़े, आठ करम हनि सिद्ध वरैं ॥६॥

दोहा—कहाँ कहाँ लों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
हेमराज, सेवक हृदय, भक्ति करौ भरपूर ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि।

(२०) मक्सीपार्श्वनाथ पूजा।

दोहा—श्री पारस परमेशजी, शिखर शीर्ष शिवधार।
यहां पूजते भावसे, थापनकर त्रयवार॥

ॐ ह्रीं श्रीमक्सीपार्श्व जिन अत्र अवतर अवतर सम्वौषटाह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं॥

अथाष्टकं।

ले निर्मल नीर सुछान, प्राशुक ताहि करों।
मन वच तन कर वर आन, तुम ढिग धार धरों॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों।
मम जन्म जरामृत्यु नाश, तुम गुण गावत हों॥
ॐ ह्रीं श्री मक्सीपार्श्वनाथजिनेन्द्रेभ्यो जलं॥ १॥
घिस चन्दनसार सुवास, केसर ताहि मिले।
मैं पूजों चरण हुलास, मनमें आनन्द ले॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावतहों।
मम मोहाताप विनाश, तुम गुण गावत हों॥ सुगंधं॥ २॥
तन्दुल उज्ज्वल अति आन, तुम ढिग पुञ्ज धरों।
मुक्ताफलके उन्मान, लेकर पूज करों॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों।
संसार वास निरवार, तुम गुण गावत हों॥ अक्षतं॥ ३॥
ले सुमन विविधि एव, पूजों तुम चरणा।
हो काम विनाशक देव, काम व्यथा हरणा॥

श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हौं ।
मन वच तन शुद्ध लगाय, तुम गुण गावत हौं ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

सजथाल सुवे वजधार, उज्ज्वल तुरत किया ।
लाडू मेवा अधिकार, देखत हर्ष हिया ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच पूज करौं ।
मम क्षुधा रोग निर्वार, चरणों चित्त धरौं ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

अति उज्ज्वल ज्योति जगाय, पूजत तुम चरणा ।
मम मोहांधेर नशाय, आयो तुम शरणा ॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हौं ।
तुमहो त्रिभुवनके नाथ, तुम गुण गावत हौं ॥ दीपं ॥६॥

वर धूप दशांग बनाय, सार सुगंध सही ।
अति हर्ष भाव उर ल्याय, अग्नि मंझार दही ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हौं ।
वसु कर्महि कीजे क्षार, तुम गुण गावत हौं ॥धूपं ॥ ७ ॥

बादाम छुहारे दाख, पिस्ता ल्याय धरौं ।
ले आम अनार सुपक्व, शुचिकर पूज करौं ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हौं ।
शिवफल दीजे भगवान, तुम गुण गावत हौं ॥ फलं ॥८॥

जल आदिक द्रव्य मिलाय, वसुविधि अर्घ किया ।
धर साज रकेबो ल्याय, नाचत हर्ष हिया ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हौं ।
तुम भव्योंको शिव साथ, तुम गुण गावत हौं ॥ अर्घं ॥९॥

अडिल्ल—जल गंधाक्षत पुष्प सो नेवज ल्यायके।
दीप धूप फल लेकर अर्घ बनायके॥
नाचौं गाय बजाय हर्ष उर धारकर।
पूरण अर्घ चढाय सु जयजयकार कर ॥पूर्णार्घं॥१०॥

जयमाला।

दोहा—जयजयजय जिनरायजी, श्रीपारसपरमेश।
गुण अनंत तुममांहि प्रभु, पर कछु गाऊं लेश ॥ १ ॥

पद्धडि छन्द॥

श्रीबानारस नगरी महान। सुरपुर समान मानो सुथान।
तहां विश्वसेन नामा सुभूप। बामादेवी रानी अनूप॥२॥
आये तसु गर्भविषें सुदेव। वैशाखवदी दोइज स्वयमेव।
माताको सेवें सची आन। आज्ञा तिनकी धर शीश मान॥३॥
पुनः जन्म भयो आनंदकार। एकादशि पौष वदी विचार॥
तब इन्द्र आय आनंद धार। जन्माभिषेक कीनो सुसार॥४॥
शतवर्ष तनी तुम आयु जान। कुंवरावय तीस बरस प्रमाण॥
नव हाथ तुंग राजत शरीर। तन हरित वर्ण सोहै सुधीर॥५॥
तुम उरग चिन्ह वर उरग सोई। तुम राजऋद्धि भुगती न कोई॥
तपधारा फिर आनंद पाय। एकादशि पौष वदी सुहाय॥६॥
फिर कर्म घतिया चार नाश। वर केवलज्ञान भयो प्रकाश॥
वदि चैत्र चौथ वेला प्रभात। हरि समोसरण रचियो विख्यात॥७॥
नाना रचना देखन सुयोग। दर्शनको आवत भव्य लोग॥
सावन सुदि सप्तमि दिन सुधारि। तब विधि अघातिया नाश चारि॥८॥

शिव थान लयो वसुकर्म नाशि। पद सिद्ध भयो आनन्दराशि॥
तुम्हरी प्रतिमा मक्सी मझार। थापो भविजन आनंदकार॥९॥
तहां जुरत बहुत भवि जीव आय। कर भक्तिभावसे शीश नाय॥
अतिशय अनेक तहां होत जान। यह अतिशय क्षेत्र भयो महान॥१०॥
तहां आय भव्य पूजा रचात। कोई स्तुति पढ़ते भांति भांति॥
कोई गावत गांन कला विशाल। स्वरताल सहित सुंदररसाल॥११॥
कोई नाचत मन आनंद पाय। तत थेई थेई थेई थेई ध्वनि कराय॥
छम छम नूपुर बाजत अनूप। अति नटत नाट सुंदर सरूप॥१२॥
द्रुम द्रुम द्रुम बाजत मृदंग। सननन सारंगी बजति संग॥
झननन नन झल्लरि बजे सोई। घननन घननन ध्वनि घण्ट होई॥१३॥
इस विधि भवि जीव करैं अनंद। कहैं पुण्यबंध करैं पापमंद॥
हम भी वन्दन कीनी अबार। सुदि पौष पंचमी शुक्रवार॥१४॥
मन देखत क्षेत्र बढ़ो प्रयोग। जुरमिल पूजन कीनी सुजोग॥
जयमाल गाय आनंद पाय। जय जय श्रीपारस जगति राय॥१५॥

घत्ता—जय पार्श्वजिनेशं नुत नाकेशं चक्रधरेशं ध्यावत हैं।
मन वच आराधैं भव्य समाधैं ते सुरशिवफल पावत हैं॥

॥ इत्याशीर्वादः॥

(इति श्रीमक्सीपार्श्वनाथपूजा संपूर्णम्।)

(२१) श्री गिरनारक्षेत्र पूजा ।

दोहा–वंदौं नेमि जिनेश पद, नेम धर्म दातार ।
नेम धुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार ॥ १ ॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार ।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचौं, सब जीवन हितकार ॥ २ ॥
उर्जयंत गिरीनाम तस, कह्यो जगति विख्यात ।
गिरिनारी तासे कहत, देखत मन हर्षात ॥ ३ ॥

गिरिसुउन्नत सुभगाकार है । पंचकूट उतंग सुधार है ॥
बन मनोहर शिला सुहावनी । लखत सुंदर मनको भावनी ॥४॥
और कूट अनेक बने तहां । सिद्ध थान सुअति सुन्दर जहां ॥
देखि भविजन मन हर्षावते । सकल जन वन्दनको आवते ॥५॥

त्रिभंगी छंद ।

तहां नेमकुमारा व्रत तप धारा कर्म विदारा शिव पाई ।
मुनि कोडि बहत्तर सात शतक धर तागिरि ऊपर सुखदाई ॥
भये शिवपुरवासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धि धरा ।
तिनके गुण गाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धि करा ।

दोहा–ऐसो क्षेत्र महान, तिहि पूजत मन वच काय ।
स्थापन त्रय धारकर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्री गिरिनारि सिद्धक्षेत्रेभ्यो ॥ अत्र अवतर अवतर संवौषटाह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् संन्निधिकरणं ।

लेकर नीरसुक्षीरसमान महां सुखदान सुप्रासुक आई।
दे त्रय धार जजौं चरणा हरना मम जन्मजरा दु:खदाई॥
नेमपती तज राजमती भये बालयती तहांसे शिवपाई।
कोडि बहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सुजजौं हरषाई॥

ॐ ह्रीं श्रीगिरिनारि सिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं॥ १॥

चंदनगारि मिलायं सुगंध सु ल्याय कटोरीमें धरना। मोह महांतम मैंटन काज सु चर्चतु हों तुम्हारे चरणा॥ नेम०। सुगंधं॥ २॥
अक्षत उज्ज्वल ल्याय धरों तहां पुंज करो मनको हर्षाई।
देउ अक्षयपद प्रभु करुणाकर फेर न या भव बास कराई॥ अक्षतं॥३
फूल गुलाब चमेली वेल कदंब सुचंपक तीर सुल्याई।
प्राशुक पुष्प लवंग चढ़ाय सुगाय प्रभु गुणकाम नशाई॥ नेमपती०
॥ पुष्पं॥ ४॥

नेवज नव्य करों भर थाल सुकंचन भाजनमें धर भाई।
मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई॥
नेमपती०॥ नैवेद्यं॥ ५॥

दीप बनाय धरों मणिका अथवा घृतबाति कपूर जलाई।
नृत्य करों कर आरति ले मम मोह महातम जाय पलाई॥ नेमपती०
॥ दीपं॥ ६॥

धूप दशांग सुगंध मईकर खेवहुं अग्निमझार सुहाई।
लौकर अर्ज सुनो जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई॥ नेमि-
पती०॥ धूपं॥ ७॥

ले फल सार सुगंधमई रसनाहद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत

हों तुम्हारे चरणा प्रभु देहु हमें शिवकी ठकुराई ॥ नेमपती० ॥ फलं ॥ ८ ॥

ले वसु द्रव्यसु अर्घ करों थाल सु मध्य जहां हर्षाई।
पूजत हों तुम्हरे चरणा हरिये वसुकर्म बली दुःखदाई ॥ नेमपती० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

दोहा—पूजत हों वसु द्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय।
निजहित हेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढ़ाय ॥पूर्णार्घं॥१०॥

पंच कल्याणकार्घं।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो॥
तब इन्द्र करे उस थानी। इत पूजत हम हर्षानी॥
ॐ ह्रीं कार्तिक सुदि छठि गर्भमंगलप्राप्तेभ्यो अर्घं ॥ १ ॥

श्रावण सुदि छठि सुखकारी। तब जन्ममहोत्सव भारी॥
सुरराजगिरि अन्हवाई। हम पूजत इत सुख पाई॥
ॐ ह्रीं श्रावण सुदी छठ जन्ममंगलधारणेभ्यो ॥ अर्घं ॥ २ ॥

सित सावनकी छठि प्यारी। तादिन प्रभु दिक्षाधारी॥
तप घोर वीर तहां करना। हम पूजत तिनके चरणा॥
ॐ ह्रीं सावन सुदि छठ दिक्षाधारणेभ्यो ॥ अर्घं ॥ ३ ॥

एकम सुदि अश्विन मासा। तब केवलज्ञान प्रकाशा॥
हरि समवशरण तब कीना। हम पूजत इत सुख लीना॥
ॐ ह्रीं अश्विन सुदि एकम केवलकल्याणप्राप्ताय ॥अर्घं॥ ४ ॥

सित अष्टमि मास आषाढ़ा। तब योग प्रभूने छांडा॥
जिन लई मोक्ष ठकुराई। इत पूजत चरणा भाई॥
ॐ ह्रीं आषाढ़ सुदी अष्टमी मोक्षमङ्गलप्राप्ताय ॥ अर्घं ॥ ५ ॥

अडिल्ल—कोड़ि बहत्तरि सप्त सैकड़ा जानिये।
मुनिवर मुक्ति गये तहांसे सुपमाणिये ॥
पूजों तिनके चरण सु मनवचकायके।
वसुविधि द्रव्य मिलाय सुगाय बजायके ॥ पूर्णार्घं ॥

जयमाला।

दोहा-सिद्धक्षेत्र गग उच्च थल, भव जीवन सुखदाय।
कहों तास जयमालका, सुनते पाप नशाय ॥ १ ॥

जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान। गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान ॥
तहां झूनागढ़ है नगर सार। सौराष्ट्र देशके मध्य सार ॥ २ ॥
जब झूनागढ़से चले सोई। समभूमि कोस वर तीन होई ॥
दरवाजेसे चल कोस आध। इक नदी बहत है जल अगाध ॥३॥
पर्वत उत्तर दक्षिण सु दोय। मधि बहत नदी उज्ज्वल सु तोय ॥
ता नदी मध्य कई कुन्ड जान। दोनों तट मंदिर बने मान ॥४॥
तहां वैरागी वैष्णव रहांय। भिक्षा कारण तीरथ करांय ॥
इक कोस तहां यह मचो ख्याल। आगे इक वरनदी नाल ॥५॥
तहां श्रावकजन करते स्नान। धो द्रव्य चलत आगे सुजान ॥
फिर मृगीकुंड इक नाम जान। तहां वैरागिनके बने थान ॥ ६ ॥
वैष्णव तीरथ जहँा रचो सोई। विष्णुः पूजत आनंद होई ॥
आगे चल डेढ़ सु कोश जाव। फिर छोटे पर्वतको चढ़ाव ॥ ७ ॥
तहां तीन कुंड सोहैं महान। श्रीजिनके युग मंदिर बखान ॥८॥
मंदिर दिगम्बरके दुजान। श्वेताम्बरके बहुते प्रमाण ॥
जहां बनी धर्मशाला सु जोय। जलकुंड तहां निर्मल सुतोय ॥९॥

फिर आगे पर्वतपर चढ़ाव । चढ़ प्रथम कूटको चले जाव ॥
तहां दर्शनकर आगे सुजाय । तहां द्वितिय टोंकका दर्श पाय॥१०॥
तहां नेमनाथके चरण जान । फिर है उतार भारी महांन ॥
तहां चढ़कर पंचम टोंक जाय । अति कठिन चढ़ाव तहां लखाय॥११
श्रीनेमनाथका मुक्ति थान । देखत नयनों अति हर्ष मान ॥
इक विम्ब चरणयुग तहां जान । भवि करत वंदना हर्ष ठान ॥१२
कोई करते जय जय भक्ति लाय । कोई स्तुति पढ़ते तहं बनाय ॥
तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्य पाल । मम दुःख दूर कीजे दयाल ॥१३॥
तुम राज ऋद्धि भुगती न कोई । यह अथिररूप संसार जोई ॥
तज मातपिता घर कुटुमद्वार । तज राजमतीसी सती नार ॥१४॥
द्वादश भावना भाई निदान । पशुबंदि छोड़ दे अभय दान ॥
शेसावनमें दिक्षा सुधार । तप कर तहां कर्म किये सु क्षार ॥१५॥
ताही वन केवल ऋद्धि पाय । इन्द्रादिक पूजे चरण आय ॥
तहां समोशरणरचियो विशाल । मणिपंच वर्णकर अति रसाल ॥१६
तहां वेदी कोट सभा अनूप । दरवाजे भूमि बनी सुरूप ॥
वसु प्रतिहार्य छत्रादि सार । वर द्वादश सभा बनी अपार ॥१७॥
करके विहार देशों मंझार । भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥
पुनः टोंक पंचमीको सुजाय । शिव थान लहो आनंद पाय ॥१८
सो पूजनीक वह थान जान । वंदत जन तिनके पाप हान ॥
तहांसे सुबहत्तर कोड़ि और । मुनि सात शतक सब कहे जोर ॥१९
उस पर्वतसे शिवनाथ पाय । सब भूमि पूजने योग्य थाय ॥
तहां देश देशके भव्य आय । वंदन कर बहु आनंद पाय ॥२०॥
पूजन कर कीनो पाप नाश । बहु पुण्य बंध कीनो प्रकाश ॥

यह ऐसा क्षेत्र महान जान । हम करी वंदना हर्ष ठान ॥२१॥
उनईस शतक उनतीस जान । सम्वत अष्टमि सित फाग मान ॥
सब संग सहित वंदन कराय । पूजा कीनी आनंद पाय ॥२२॥
अब दुःख दूर कीजे दयाल । कहैं चद्र कृपा कजे कृपाल ॥
मैं अल्प बुद्धि जयमाल गाय । भवि जीव शुद्ध लीजे बनाय ॥२३

घत्ता—तुम दया विशाला सब क्षितिपाला तुम गुणमाला कण्ठधरी।
ते भव्य विशाला तज जगजाला नावत भाला मुक्तिवरी ॥

इत्याशीर्वादः ॥

---

(२१) सोनागिरि पूजा।

अडिल्ल—जम्बू द्वीप मंझार भरत शुभ क्षेत्र है। आर्यखंड सुजान भद्रतहँ देश है ॥ सोनागिरि अभिराम सुपर्वत है तहां।
पंचकोड़ि अरु अर्द्ध गये मुनि शिव जहां ॥ १ ॥

दोहा—सोनागिरिके शीसपर, बहुत जिनालय जान।
चन्द्रप्रभू जिन आदिदे, पूजों सब भगवान ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धक्षेत्र सोनागिर अत्र अवतर अवतर संवौषटाह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सारंग छंद।

पद्मद्रहको नीर ल्याय गंगासे भरके।
कनक कटोरी माहिं हेम झारिनमें धरके ॥
सोनागिरिके शीस भूमि निर्वाण सुहाई।
पंचकोड़ि अरु अर्द्ध मुक्ति पहुंचे मुनिराई ॥

चन्द्र प्रभु जिन आदि सकल जिनवर पद पूजों ।
स्वर्ग मुक्ति फल पाय जाव अविचक पद हूजों ॥
दोहा–सोनागिरिके शीसपर, जेते सब जिनराय ।
तिनपद धारा तीन दे, त्रिविध रोग नश जाय ॥
ॐ ह्रीं श्रीसोनागिरि निर्वाणक्षेत्रेभ्यो ॥ जलं ॥ १ ॥
केशर आदि कपूर मिले मलयागिरि चन्दन ।
परमल अधिकी तास और सब दाह निकन्दन ॥
दोहा–सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
ते सुगन्धकर पूजिये, दाह निकन्दन काज । सुगंधं ॥२॥
तंदुल धवल सुगन्ध ल्याय जल धोय पखारो ।
अक्षय पदके हेतु पुंज हृ दग तहां धारो ॥
दोहा–सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
तिन पद पूजा कीजिये · अक्षय पदके काज ॥अक्षतं॥३॥
वेला और गुलाब मालती कमल मंगाये ।
पारिजातके पुष्प ल्याय जिनचरण चढ़ाये ॥
दोहा–सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
ते सब पूजों पुष्प ले । मदन विनाशन काज ॥पुष्पं॥४॥
विंजन जो जगमाहि खांड घृत मांहि पकाये ।
मीठे तुरत बनाय हेम थारी भर ल्याये ॥
दोहा–सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
ते पूजों नैवेद्य ले । क्षुधा हरणके काज ॥ नैवेद्यं ॥५॥
मणिमय दीप प्रजाल धरौं पंकति भरथारी ।
जिन मंदिर तमहार करहु दर्शन नरनारी ॥

दोहा—सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
करों दीपले आरती । ज्ञान प्रकाशन काज ॥ दीपं ॥६॥
दशविधि धूप अनूप अग्नि भाजनमें डालों ।
जाकी धूम सुगन्ध रहे भर सर्व दिशालों ॥
दोहा—सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ॥
धूप कुम्भ आगे धरों । कर्म दहनके काज ॥ धूपं ॥७॥
उत्तम फल जगमाहिं बहुत मीठे अरु पाके ।
अमित अनार अचार आदि अमृत रस छाके ॥
दोहा—सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
उत्तम फल तिन ले मिलो । कर्म विनाशन काज ॥ फलं ॥ ८ ॥
जल आदिक वसु द्रव्य अर्घ करके धर नाचो ।
बाजे बहुत बजाय पाठ पढके सुख सांचो ॥
दोहा—सोनागिरिके शीसपर जेते सब जिनराज ।
ते हम पूजें अर्घ ले । मुक्ति रमणके काज ॥ अर्घं ॥९॥

अडिल्ल—श्री जिनवरकी भक्ति सो जे नर करत हैं । फल-वांछा कुछ नाहिं प्रेम उर धरत हैं ॥ ज्यों जगमाहिं किसानसु खेतीको करें । नाज काज जिय जान सुशुभ आपही झरें ॥ ऐसे पूजा दान भक्ति वश कीजिये । सुख सम्पति गति मुक्ति सहज-कर लीजिये ॥ ॐ श्री सोनागिरिसिद्धक्षेत्रभ्यो पूर्णार्घं ॥१०॥

अथ जयमाला ।

दोहा—सोनागिरिके शीसपर । जिन मंदिर अभिराम ।
तिन गुणकी जयमालिका । वर्णत आशाराम ॥ १ ॥

गिरि नीचे जिन मंदिर सुचार । ते यतिन रचे शोभा अपार ॥
तिनके अति दीर्घ चौक जान । तिनमें यात्री मेलें सु आन ॥२॥
गुमठी छज्जे शोभित अनूप । ध्वज पंकति सोहैं विविधरूप ॥
वसु प्रातिहार्य तहां धरे आन । सब मंगलद्रव्यनि की सुखान ॥३॥
दरवाजोंपर कलशा निहार । करजोर सुनय जय ध्वनि उचार ॥
अब पर्वतको चढ़ चलो जान । दरवाजो तहां इक शोभमान ॥४॥
तिस ऊपर जिन प्रतिमा निहार । तिन वंद पूज आगे सिधार ॥
तहां दुःखित भुखितको देत दान । याचक मन जहां हैं अप्रमाण ॥५
आगे जिन मंदिर दुहु ओर । जिन गान होत वादित्र शोर ॥
दरवाजो तहां दूजो विशाल । तहां क्षेत्रपाल दोऊ ओर लाल ॥६॥
दरवाजे भीतर चौक माहिं । जिन भवन रचे प्राचीन आहिं ॥
तिनकी महिमा वरणी न जाय । दो कुंड सुजलकर अति सुहाय ॥७
जिन मंदिरकी वेदी विशाल । दरवाजो तीजो बहुसुढाल ॥
ता दरवाजे पर द्वारपाल । लेलकुट खड़े भल हाथ माल ॥ ८ ॥
जे दुर्जनको नहीं जान देय । ते निंदकको ना दरश देय ॥
चल चंद्रप्रभुके चौकमाहिं । दालानें तहां चौ तर्फ आहिं ॥ ९ ॥
तहां भव्य सभामंडप निहार । तिसकी रचना नाना प्रकार ॥
तहां चंद्रप्रभुके दरश पाय । फल जात कह्यो नरजन्म आय ॥१०
प्रतिमा विशाल तहां हाथ सात । कायोत्सर्ग मुद्रा सुहात ॥
वंदे पूजें तहां देय दान । जननृत्य भजनकर मधुर गान ॥११॥
तायेई थेई थेई बाजत सितार । मृदंग बीन मुहचंग सार ॥
तिनकी ध्वनि सुन भवि होत प्रेम । जयकार करत नाचत सु एम ॥१२
ते स्तुति कर फिर नाय शीस । भवि चलें मनोंकर कर्म खीस ॥

यह सोनागिरि रचना अपार। वरणन कर को कवि लहै पार ॥१५॥
अति तनक बुद्धि आशासुपाय। वश भक्ति कही इतनो सुगाय॥
मैं मन्दबुद्धि किम कहौं पार। बुद्धिवान चूक लीजो सुधार ॥१६॥

दोहा–सोनागिरि जय मालिका, लघु मति कही बनाय।
पढ़े सुने जो प्रीतिसे, सो नर शिवपुर जाय ॥ १७ ॥

इत्याशीर्वादः। इतिश्री सोनागिरि पूजा सम्पूर्ण।

---

(२३) रविव्रतपूजा।

अडिल्ल–यह भवजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही। करहु भव्यजन लोग, सुमनदेकें सही। पूजो पार्श्व जिनेन्द्र त्रियोग लगायकें। मिटै सकल संताप मिले निध आयकें॥ मतिसागर इक सेठ कथा ग्रन्थन कही। उनही ने यह पूजा कर आनन्द लही॥ तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये। सुख संपति सन्तान, अतुल निध लीजिये॥

दोहा–प्रणमो पार्श्व जिनेशको, हाथ जोड़ सिर नाय। परभव सुखके कारने, पूजा करूं बनाय॥ एतवार व्रतके दिना, एही पूजन ठान। ता फल सुर सम्पति लहैं, अनुक्रमतें निर्वाण॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टकं–उज्जल जल भरकें अति लायो रतन कटोरन माहीं। धार देत अति हर्ष बढ़ावत जन्म जरा मिट जाईं॥ पारसनाथ जिनेश्वर पूजों रविव्रतके दिन भाई। सुख सम्पति बहु होय तुरत

ही, आनंद मंगलदाई ॥ ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ मलयागिर केशर अति सुंदर कुमकुम रंग बनाई । धार देत जिन चरनन आगे भव आताप नसाई ॥ पारसनाथ० ॥ सुगंधं ॥ मोती सम अति उज्वल तन्दुल ल्यावो नीर पखारो । अक्षय पदके हेतु भावसो श्री जिन-वर ढिग धारो ॥ पारस० ॥ अक्षतं ॥ वेला अर मचकुन्द चमेली पारजातके ल्यावो । चुन चुन श्री जिन अग्र चढ़ाऊं मन-वांछित फल पावो ॥ पारस० ॥ पुष्पं ॥ वावर फेनी गोंझा आदिक घृतमें लेत पकाई कंचन थार मनोहर भरके चरनन देत चढ़ाई ॥ पारस० ॥ नैवेद्यं ॥ मनमथ दीप रतनमय लेकर जग-मग जोत जगाई । जिनके आगे आरति करके मोह तिमिर नश जाई ॥ पारस० ॥ दीप ॥ चूरन कर मलयागिर चन्दन धूप दशांग बनाई । तट पावक में खेय भावसों कर्म नाश हो जाई ॥ पारसनाथ० ॥ धूपं ॥ श्रीफल आदि बदाम सुपारी भांत भांतके लावो । श्री जिन चरन चढ़ाय हरष कर तातें शिव फल पावो ॥ पारस० ॥ फलं ॥ जल गंधादिक अष्ट दरब ले अर्घ बनावो भाई । नाचत गावत हर्ष भावसों कंचन थार भराई ॥ पारस० ॥ अर्घं ॥ गीतका छंद ॥ मन वचन काय त्रिशुद्ध करके पार्श्वनाथ सु पूजिये । जल आदि अर्घ बनाय भवि जन भक्तिवन्त सुहूजिये ॥ पूज्य पारस-नाथ जिनवर सकल सुख दातारजी । जे करत हैं नरनार पूजा लहत सुःख अपारजी ॥ पूर्णार्घं ॥

अथ जयमाला !

दोहा ॥ यह जगमें विख्यात हैं, पारसनाथ महान। जिन-गुनकी जयमालका, भाषा करों बखान ॥ पद्धरी छंद ॥ जय जय प्रणमो श्री पार्श्व देव। इन्द्रादिक तिनकी करत सेव ॥ जय जय सु बनारस जन्म लीन। तिहुं लोक विषे उद्योत कीन ॥१॥ जय जिनके पितु श्री विश्वसेन। तिनके घर भये सुख चैन एन ॥ जय वामादेवी, माय जान। तिनके उपने पारस महान ॥ २ ॥ जय तीन लोक आनन्द देन। भविजनके दाता भये हैं पेन ॥ जय जिनने प्रभुका शरन लीन। तिनकी सहाय प्रभुजी सो कीन ॥ ३ ॥ जय नाग नागनी भये अधीन। प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन ॥ तजके सो देत स्वर्गे सुनाय। धरनेंद्र पद्मावति भये आय ॥ ४ ॥ जे चोर अंजना अधम जान। चोरी तज प्रभुको धरो ध्यान ॥ जे मृत्यु भयें स्वर्गे सु जाय। रिद्धि अनेक उनने सु पाय ॥ ५ ॥ जे मतिसागर इक सेठ जान। जिन रविव्रत पूजा करी ठान। तिनके सुत थे परदेशमांहिं। जिन अशुभ कर्म काटे सु ताहि ॥ ६ ॥ जे रविव्रत पूजन करी शेठ। ताफलकर सबसें भई भेंठ ॥ जिन जिनने प्रभुका शरन लीन। तिन रिद्धि-सिद्धि पाई नवीन ॥ ७ ॥ जे रविव्रत पूजा करहिं जेय। ते सुख्य अनंतानन्त लेय ॥ धरनेद्र पद्मावति हुय सहाय। प्रभु भक्ति जान तत्काल आय ॥ पूजा विधान इहिं विध रचाय। मन वचन काय तीनों लगाय ॥ जो भक्तिभाव जैमाल गाय। सोही सुख सम्पति अतुल पाय ॥ ९ ॥ बाजत मृदंग बीनादि सार। गावत नाचत नाना प्रकार ॥ तन नन नन नन नन ताल देत। सन

नन नन सुर भर सु लेत ॥ ०॥ ता थेइ थेइ थेइ पग धरत जाय । छम छम छम घुघरू बजाय ॥ जे करहिं निरत इहिं भांत भांत । ते लहहिं सुक्ख शिवपुर सु भात ॥ ११ ॥ दोहा-रविव्रत पूजा पार्श्वकी, करें भवक जन कोय । सुख सम्पति इहिं भव लहै, तुरत सुरग पद होय ॥ अडिल्ल । रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र पूज्य भव मन धरें । भव भवके आताप सकल छिनमें टरें ॥ होय सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि पदवी लहै । सुख सम्पति सन्तान अटल लक्ष्मी रहै ॥ फेर सर्व विधं पाय भक्ति प्रभु अनुसरें । नानाविध सुख भोग बहुरि शिव त्रियवरे ॥ इत्याशीर्वादः ॥

---

[२४] पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा ।

दोहा-जिहि पावापुर छिति अघति हत सन्मत जगदीश।
भये सिद्ध शुभ पानसो, जजों नाय निज शीश ॥

ॐ ह्रीं श्री पावापुर सिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर । अत्र तिष्ठ २ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्रममसन्निहितो भवभववषट् सन्निधिकरणं परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । अथ अष्टक ॥ गीतका छंद ॥ शुचि सलिल शीतो कलिल रीतो श्रमन चीतो लै जिसो । भर कनक झारी त्रिगद हारी दै त्रिधारी जित तृषौ ॥ वर पद्मवन भर पद्मसरवर बहिर पावाग्रामही । शिव धाम सन्मत स्वाम पायो जजों, सो सुख-दा मही ॥ ॐ ह्रीं श्री पावापुर क्षेत्रे वीरनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥जलं॥ भव भ्रमत भ्रमत अशर्म्म तपकी तपन कर तप ताईयो । तसु वलय कंदन मलय

चंदन उदय संग घिस ल्याइयो ॥ वरपद्म० ॥ सुगंधं ॥ तंदुल नवीन अखंड लीने लै महीने ऊजरे । माणि कुन्दइन्दु तुषारद्युत जित कण रकावीमें धरे ॥ वरपद्म० ॥ अक्षतं ॥ मकरंद लोभन सुमन शोभन सुरभ चोभन लेयजी । मद समर हरवर अमर तरके घ्रान दृग हरवेयजी ॥ वरपद्म० ॥ पुष्पं ॥ नैवेद्य णवन छुधा मिटावन सेव्य भावन युत किया । रस मिष्ट पूरत इष्ट सूरत लेय कर प्रभु हित हिया ॥ परपद्म० ॥ नैवेद्यं ॥ तम अज्ञ नाशक स्वपर भाशक ज्ञेय परकाशक सही । हिम पात्रमें धर मौल्य विनवर द्योत धर माणि दीपही ॥ वरपद्म० ॥ दीपं ॥ आमोदकारी वस्तु सारी विध दुचारी जारनी । तसु तूप कर कर धूप लै दश दिश सुरभ विस्तारनी ॥ परपद्म० ॥ धूपं ॥ फल भक्त पक्क सुचक्क सोहन सुक्क जनमन मोहने । वर रस पुरत लख तुरत मधुरत लेय कर अत सोहने । वरपद्म० ॥ फलं ॥ जल गंध आदि मिलाय वसु विध थार स्वर्ण भरायकें । मनं प्रमुद भाव उपाय कर । लै आय अर्घं बनायकें ॥ परपद्म० ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला।

दोहा—चरम तीर्थ करतार श्री, वर्द्धमान जगपाल । कल मल दल विध विकल हुय, गाऊं तिन जयमाल ॥१॥ पद्धडि छंद॥ जय जय सुवीर जिन मुक्ति थान । पावापुर वन सर शोभवान ॥ जे शित असाढ़ छट स्वर्ग धाम । तज पुष्पोत्तर सु विमान ठाम॥१ कुंडलपुर सिद्धारथ नृपेश । आये त्रिशला जननी उरेश ॥ शित चैत्र त्रियोदश युत त्रिज्ञान । जन्में तम अज्ञ निवार भान ॥ २ ॥ पूर्वान्ह धवल चतु दशि दिनेश । किय न्व्हन कनकगिरि शिर

सुरेश । वय वर्ष तीस पद कुमर काल । सुख द्रव्य भोग भुगते विशाल ॥ ३ ॥ मारगशिर अलि दशमी पवित्र । चढ़ चंद्रप्रभु शिवका विचित्र ॥ चलपुरसे सिद्धन शीश नाय । धारो संयम वर शर्म्मदाय ॥ ४ ॥ गत वर्ष दुदश कर तप विधान । दिन शित वैशाख दशैं महान । रिजुकूला सरिता तट स्व सोध । उपजायो जिनवर चरम बोध ॥ ५ ॥ तवही हरि आज्ञा शिर चढ़ाय । रचियो समवाश्रित धनद राय । चतुसंघ प्रभृत गौतम गनेश । युत तीस वरष विहरे जिनेश ॥ ६ ॥ भवि जीवन देशना विविध देत । आये वर पावानग्र खेत ॥ कार्तिक अलि अन्तिम दिवस ईश । कर योग निरोध अघातिपीश ॥ ७ ॥ है अकल अमल इक समय माहिं । पंचम गति पाई श्री जिनाह ॥ तव सुरपति जिन रवि अस्त जान । आये तुरंत चढ़ स्व विमान ॥ ८ ॥ कर वपु अरचा थुति विविध भांत । लै विविध द्रव्य परमल विख्यात ॥ तव ही अगनींद्र नवाय शीश । संस्कार देहकी त्रिजगदीश ॥ ९ ॥ कर भस्म वंदना स्व महीय । निवसे प्रभु गुन चितवन स्वहीय । पुन नर मुनि गनपति आय आय । वंदी सो रज सिर ल्याय ल्याय ॥ १० ॥ तवहींसें सो दिन पूज्यमान । पूजत जिनग्रह जन हर्ष मान । मैं पुन पुन तिस भुवि शीश धार । वंदो तिन गुणधर उरु मझांर ॥ ११ ॥ जिनहीका अत्र भी तीर्थ एह । वर्तत दायक अति शर्म्म गेह ॥ अरु दुषम काल अवसान ताहि । वर्तै गौभव थित हर सदाहि ॥ १२ ॥ कुसमलता छंद ॥ श्री सन्मत जिन अंघ्रि पद्म युग जजै भव्य जो मन वच काय । ताके जन्म जन्म संतत, अघ जावहिं इक छिन माहिं पलाय ॥ घनधा-

न्यादि शर्म्म इन्द्रीजन कहँ सो शर्म्म अतेन्द्री पाय। अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णी दौल रहै शिर नाय॥ इत्यादि आशीर्वादः॥

---

(२५) चंपापुर सिद्धक्षेत्र पूजा।

॥ दोहा ॥ उत्सव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि आय। जजों सुथल वसपूज्य सुत, चम्पापुर हर्षाय॥ १॥ ॐ ह्रीं श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्रावतरावतर संवौषट् इत्याह्वाननं॥ १॥ अत्र तिष्ठतिष्ठ ठः ठः स्थापनं॥ २॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं परिपुष्पांजलिं क्षपेत्॥

॥ अष्टक ॥ सम अमिय विगत त्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा। लख दुखद त्रिगद हरतार, दै त्रय धार धरा॥ श्री वासुपूज्य जिनराय, निर्वृत थान प्रिया। चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥ ॐ ह्रीं श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं॥ काश्मीर नीर मधगार, अती पवित्र खरी। शीतलचन्दन संगसार, लै भव तापहरी॥ श्री वासुपूज्य०॥ सुगंधं॥ २॥ मणिद्युत समखंड विहीन, तंदुल लै नीके, सौरभ युत नववर वीन, शाल महानीके॥ श्री वासुपूज्य०॥ अक्षतं॥ ३॥ अलि लुभन शुभन द्दग घ्राण, सुमन सुरन द्रुमके। लैवाहिम अर्जुनवान, सुमन दमन झुमके॥ श्री वासुपूज्य०॥ पुष्पं॥ ४॥ रस पुरत तुरत पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुध गदमद मदमन जान, लैविध युक्तकृती॥ श्री वासुपूज्य०॥ नैवेद्यं ५॥ तमअज्ञ प्रनाशक सूर, शिव मग परकाशी। लै रत्नदीप

युत पूर, अनुपम सुखराशी ॥ श्री वासु० ॥ दीपं ॥ ६ ॥ वर परमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी। तसुचूरण कर कर धूप, लैविध कंजहरी ॥ श्री वासु० ॥ धूपं ॥ ७ ॥ फल पक्व मधुररस वान, प्रासुक वहुविधके। रख सुखद रसन दृग घ्रान, लेप्रद पद सिधके ॥ श्रीवासु० ॥ फलं ॥ ८ ॥ जल फल वसु द्रव्य मिलाय, लैभर हिमथारी॥ वसु अंग धरा पर ल्याय, प्रमुद रव चितधारी ॥ श्री वासु० ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला

॥ दोहा ॥ भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वाण। तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवण सुख दान ॥ पद्धड़िछन्द ॥ जय जय श्री चम्पापुर सु धाम। जहां राजत नृप वसुपूज नाम॥ जनपौन पल्यसे धर्महीन। भवभ्रमन दुःखमय लख प्रवीन ॥१॥ उर करुणाधर सो तम विडार। उपज किरणावलि धर अपार॥ श्रीवासुपूज्य तिन तने बाल। द्वादशम तीर्थ कर्ता विशाल ॥२॥ भवभोग देहसें विरत होय। वय बाल माहिं ही नाथ सोय॥ सिद्धन नम महंव्रत भार लीन। तप द्वादश विध उग्रोग्र कीन॥ तहं मोह सत्तत्रय आयु येह। दशप्रकृति पूर्व ही क्षय करेह॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ़ होय। गुण नवम भाग नव माहिं सोय ॥ ४ ॥ सोलह वसु इक इक षट इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय॥ पुन दशम थान इक लोभटार। द्वादशम थान सोलह विडार ॥ ५ ॥ है अनंत चतुष्टय युक्त स्वाम। पायो सब सुखद-संयोग ठाम॥ तहं काल त्रिगोचर सर्व गेय। युगपत हि समय इक मंहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल दुविध वृष अमिय

वृष्टि। कर पोषै भव भवि धान्य श्रेष्टि॥ इक मास आयु अवशेष जान। जिन योगनकी सुप्रवर्त हान॥ ७॥ ताही थल तृतिशित ध्यान ध्याय। चतुदशम थान निवसे जिनाय॥ तहं दुचरम समय मझार ईश। प्रकृति जु वहत्तर तिनहि पीश॥८॥ तेरहनठ चरम समय मझांर। करके श्री जगतेश्वर प्रहार॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज अचल रिद्ध॥ ९॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित गुणेश। ह्वैरहे सदाही इमहिं वेश॥ तवहीसे सो थानक पवित्र। त्रैलोक्य पूज्य गायों विचित्र॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। वन्दौं पुन पुन भुवि शशिनाय॥ ताही पद वांछा उर मझांर। धर अन्य चाह बुद्धि विडार॥११॥ दोहा। श्री चम्पापुर जो पुरुष, पूजै मनवच काय। वर्णि "दौल" सो पायही, सुख संपति अधिकाय॥ इत्याशीर्वादः॥

इति श्री चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पूजा समाप्तम्।

---

(२६) महावीर जिनपूजा

(कवि वृन्दावनजकृत)

श्रीमत वीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतमौलि सुहाई॥
मैं तुमकौं इत थापतु हौं प्रभु, भक्तिसमेत हिये हरषाई।
हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्टहु शीघ्रहि आई॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्॥

अथाष्टक । छन्द अष्टपदी ।

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरौ । प्रभु वेग हरौ भवपीर, यातें धार करौं । श्रीवीर महां अतिवार, सन्‌मतिनायक हो । जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्‌मतिदायक हो ।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं ॥१

मलयागिरचन्दन सार, केसरसंग घसौं । प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसौं ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० ॥२

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीने थारभरी । तसु पुंज धरौं अविरुद्ध, पाऊं शिवनगरी ॥ श्रीवीर०, जय वर्द्धमान० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥३॥

सुरतरुके सुमनसमेत सुमन सुमन प्यारे । सो मनमथभंजन हेत, पूंजूं पद थारे ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं नि० ॥४

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी । पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्रीवीर० ॥ जयवर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥५॥

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हूं । तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हूं ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ।६।

हरिचंदन अगर कपूर, चूरि सुगन्ध करे । तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरे ॥ श्री वीर० ॥ जय वर्द्धमान ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० ॥७॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरौं। शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिंग भेट धरौं॥ श्रीवीर०॥ जय वर्द्धमान०॥
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०॥८॥

जलफल वसु सजि हिमथार, तनमन मोद धरौं। गुण गाऊं भवदाधितार, पूजत पाप हरौं॥ श्रीवीर० जयवर्द्धमान०॥ ९॥
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०॥९॥

पंचकल्याणक-राग टप्पा।

मोहि राखौ हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखौ हो सरना॥टेक॥ गरभ साढ़सित छट्ठ लियौ तिथि, त्रिशला उर अघहरना। सुर सुरपति तित सेव करत नित, मैं पूजूं भवतरना॥ मोहि राखौ०॥ १॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठिदिने गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

जनम चैत सित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सुरगिर सुरगुरु पूज रचायौ, मैं पूजूं भवहरना॥ मोहिराखो०॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदशीदिने जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

मगशिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमारघर पारन कीना, मैं पूजूं तुम चरना। मोहि राखौ०

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक क्षय करना। केवल लहि भवि भवसर तारे, जजूं चरन सुख भरना॥ मोहि०

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना। गनफ-निवृंद जजै तित बहु विधि, मैं पूजूं भयहरना ॥ मोहि राखो० ॥५॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावास्यायां मोक्षमङ्गलमंडिताय श्रीमहा-वीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

अथ जयमाला।

गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा।
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुन मणिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं ॥ १ ॥

घत्ता–जय त्रिशलानंदन हरिकृतवंदन, जगदानंदनचंद वरं।
भवतापनिकंदन तनमनवंदन, रहितसपंदन नयन धरं ॥२॥

तोटक–जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशन कंजवनं ॥
जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदृगांवरचूरकरं ॥ १ ॥
गर्भादिक मंगल मंडित हो। दुख दारिदको नित खंडित हो।
जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो ॥२॥
हरिवंश सरोजनकों रवि हो। बलवंत महंत तुमी कवि हो ॥
लहि केवल धर्मप्रकाश कियौ। अवलों सोई मारग राजति यौ ॥३॥
पुनि आपतने गुणमाहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुण गावत हैं। लय तानिनिसों मनभावत हैं ॥४॥
पुनि नाचत रंग अनेक भरी। तुव भक्तिविषै पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं। सुर लेत तहां तननं तननं ॥ ५ ॥

घननं घननं घनघंट बजैं। ढमदं ढमदं मिरदंग सजैं।
गगनांगणगर्भगता सुगतां । ततता ततता अतता वितता ॥ ६ ॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है। सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमें। इकरूप अनेक जु धार भमैं ॥ ७ ॥
कइ नारि सु वीन बजावतु हैं। तुमरौ जस उज्जल गावतु हैं।
करतालविषैं करताल धरैं। सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥
इन आदि अनेक उछाहभरी। सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।
तुमही जगजीवनके पितु हो। तुमही विनकारनके हितु हो ॥९॥
तुमही सब विघ्न विनाशन हो। तुमही निज आनंदभासन हो।
तुमही चितचिंतितदायक हो। जगमाहिं तुमी सब लायक हो ॥
तुमरे पनमंगलमाहिं सही। जिय उत्तम पुण्य लियौ सब ही।
हमको तुमरी सरनागत है। तुमरे गुनमैं मन पागत है ॥११॥
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये। जबलौं वसुकर्म नहीं नसिये।
तबलौं तुम ध्यान हिये वरतो। तबलौं श्रुतचिंतन चित्तरतो ॥१२॥
तबलौं व्रत चारित चाहत हौं। तबलौं शुभ भाव सुगाहत हौं।
तबलौं सतसंगति नित्य रहौ। तबलौं मम संजम चित्त गहौ ॥१३
जबलौं नहिं नाश करौं अरिको। शिवनारि बरौं समताधरिको।
यह द्यो तबलौं हमको जिनजी। हम जाचत हैं इतनी सुनजी ॥१४॥
घत्ता—श्रीवीर जिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भगतिभरा।
वृंदावन ध्यावै भक्ति बढ़ावै वांछित पावै शर्मवरा ॥ १५ ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥
दोहा—श्री सनमतिके जुगलपद, जो पूजहिं धर प्रीत।
वृन्दावन सो चतुरनर, लहैं मुक्त नवनीत ॥ १६ ॥

(२७) अकृत्रिमचैत्यालय पूजा ।

आठ किरोड़ रु छप्पन लाख । सहस सत्याणव चतुशत भाख ॥
जोड़ इक्यासी जिनवर धाम । तीनलोक आह्वान करान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुः-शतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्रावतरअवतर। संवौषट् ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-तुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

छीरोदधिनीरं उज्वल सीरं, छान सुचीरं, भरि झारी ।
अति मधुरलखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन, गुण भारी ॥
वसुकोटि सु छप्पन्न लाख सत्ताणव, सहस चारसत इक्यासी ।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले अविनासी ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामि ॥ १ ॥

मलयागर पावन, चंदन बावन, तापबुझावन, घसि लीनो ।
धरि कनककटोरी, द्वै कर जोरी, तुमपद ओरी, चित दीनो ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो चंदनं निर्वपामि ॥२॥

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने ।
धरि कंचनथाली, तुमगुणमाली, पुंजविशाली कर दीने ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अक्षतान् निर्वपामि ॥३॥

शुभ पुष्प सुजाति, है बहु भांती, अलि लिपटाती, लेय वरं ।
धरि कनक रकेबी करगह लेवी, तुमपद जुगकी, भेट धरं ॥
वसुकोटि सुछप्पन, लाख सत्ताणव, सहस चारसत, इक्यासी ।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले, अविनाशी ॥४॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः पुष्पं निर्वपामि ॥४॥

खुरमा जुगैंदोड़ा; बरफी पेड़ा, घेवर मोदक, भरि थारी ।
विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने, खंडमें लीने, सुखकारी ॥ वसु० ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामि ॥५॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति, नहिं सूझे ।
इहकारण पाकैं, दीप सजाकैं, थाल धराकैं, हम पूजैं ॥वसु०॥६॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो दीपं निर्वपामि ॥६॥

दशगंध कुटाकें, धूप बनाकें, निजकर लाकें, धरि ज्वालं ।
तसु धूम उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो धूपं निर्वपामि ॥७॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, द्राखवरं ।
इनआदि अनोखे, लखिनिरदोखे, थापलजोखे, भेट धरं ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-

चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः फलं निर्वपामि ॥८॥

जल चंदन तंदुल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल, थाल रचौं ॥
जयघोष कराऊं, बीन बजाऊं, अर्घ चढ़ाऊं, खूब नचौं ॥ वसु० ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमाजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

अथ प्रत्येक अर्घ ।

चोपाई—अधोलोक जिन आगमसाख। सात कोड़ि अरु बहतर लाख॥
श्रीजिनभवनमहां छवि देइ। ते सब पूजौं वसुविध लेई ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिमश्री-जिन चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥ १ ॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ। साढ़ेचारशतक अरु आठ ॥
ते सब पूजों अर्घ चढ़ाय। मनवचतन त्रयजोग मिलाय ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बान्धिचतुःशताष्टपञ्चाशतश्रीजिनचैत्या-लयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥ २ ॥

आडिल्ल—उर्द्धलोकके मांहिं भवनजिनजानिये।
लाख चौरासी सहस सत्यानव मानिये ॥
तापै धरि तेईस जजौं शिरनायकैं।
कंचनथालमंझार जलादिक लायकैं ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उर्द्धलोकसम्बन्धिचतुरशीतिसप्तनवतिसहस्रत्रयोविं-शति श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यम् ॥ ३ ॥

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहससत्याणव मानिये।
सतच्यारपै गिन ले इक्यासी, भवनजिनवर जानिये ॥

तिहुँलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं।
तिन भवनको हम अर्घ लेकैं, पूजि हैं जगदुख हरैं ॥४॥
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्त्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः पूर्णार्घ्य निर्वपामि ॥४॥

अथ जयमाला।

दोहा—अब बरणों जयमालिका, सुनो भव्य चित लाय।
जिनमंदिर तिंहु लोकके, देहुं सकल-दरसाय ॥ १ ॥

जय अमल अनादि अनंत जान। अनिमित जु अकीर्तम अचल मान।
जय अजय अखड अरूपधार। षट् द्रव्य नहीं दीसै लगार ॥२॥
जय निराकार अविकार होय। राजत अनंतपरदेश सोय।
जय शुद्ध सुगुण अवगाह पाय। दशदिशामाहिं इहविधि लखाय ॥३॥
यह भेद अलोकाकाश जान। तामध्य लोक नभ तीन मान।
स्वयमेव बन्यौ अविचल अनंत। अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥४॥
पुरुषाअकार ठाढ़ो निहार। कटि हाथ धारि द्वै पग पसार॥
दच्छिन उत्तरदिशि सर्व ठौर। राजू जु सात भाख्यौ निचोर ।५।
जय पूर्व अपर दिश घाटबाधि सुन कथन कहूं ताको जु साधि।
लखि श्वभ्रतलें राजू जु सात। मधिलोक एक राजू रहात ॥ ६ ॥
फिर ब्रह्मसुरग राजु जु पांच। भू सिद्ध एक राजू जु सांच।
दश चार ऊंच राजू गिनाय। षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय ॥७॥
तसु वातवलय लपटाय तीन। इह निराधार लखियो प्रवीन।
त्रसनाड़ी तामधि जान खास। चतुकोन एक राजू जु व्यास ॥८॥
राजू उतंग चौदह प्रमान। लखि स्वयं सिद्ध रचना महान।
तामध्य जीव त्रस आदि देय। निज थान पाय तिष्ठे भलेय ॥९॥

लखि अधोभागमें श्वभ्रस्थान। गिन सात कहे आगम प्रमान।
षट्ठानमाहिं नारकि बसेय। इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय॥१०॥
तसु अधो भाग नारकि रहाय। फुनि ऊर्द्धभाग द्वय थान पाय।
बस रहे भवन व्यंतर जु देव। पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव॥११॥
तिंह थान गेह जिनराज भाख। गिन सातकोटि वहतरि जु लाख।
ते भवन नमों मनवचनकाय। गतिश्वभ्रहरनहारे लखाय॥ १२॥
पुनि मध्यलोक गोलाअकार। लखि दीप उदधि रचना विचार।
गिन असंख्यात भाखे जु संत। लखि संभुरसन सबके जुअंत॥१३॥
इक राजुव्यासमें सर्व जान। मधिलोकतनों इह कथन मान।
सबमध्य दीप जंबू गिनेय। त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय॥१४॥
इन तेरहमें जिनधाम जान। सतचार अठावन हैं प्रमान।
खग देव असुर नर आय आय। पद पूज जांय शिर नाय नाय॥
जय उर्द्धलोकसुर कल्पवास। तिहँ थान छजे जिनभवन खास।
जय लाखचुरासीपै लखेय। जय सहस सत्याणव और ठेय॥१६॥
जय वीसतीन फुनि जोड़ देय। जिनभवन अकीर्तम जान लेय।
प्रतिभवन एक रचना कहाय। जिनबिंब एकसत आठ पाय॥१७॥
शतपंच धनुष उन्नत लसाय। पदमासनजुत वर ध्यान लाय।
शिर तीन छत्र शोभित विशाल। त्रय पादपीठ मणिजड़ित लाल १८
भामंडलकी छवि कौन गाय। फुनि चँवर दुरत चौसठि लखाय।
जय दुंदुभिरव अद्भुत सुनाय। जयपुष्पवृष्टि गंधोदकाय॥१९॥
जय तरुअशोक शोभा भलेय। मंगल विभूति राजत अमेय।
घटतूप छजे मणिमाल पाय। घटधूपधूम्र दिग सर्व छाय॥२०॥
जयकेतुपंक्ति सोहै महान गंधर्वदेव गुन करत गान।

सुर जनम लेत लखि अवधि पाय । तिस थान प्रथम पूजन कराय
जिनगेहतणो वरनन अपार । हम तुच्छबुद्धि किम लहत पार ।
जयदेव जिनेसुर जगत भूप। नमि 'नेम' मँगै निज देहरूप ॥२१॥
दोहा–तीनलोकमें सासते श्रीजिनभवन विचार ॥
मनवचतन करि शुद्धता, पूजों अरघ उतार ॥२२॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥२३॥
तिहुं जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकीर्त्तम अति सुखदाय ।
नर सुर खग करि वंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय ॥
धनधान्यादिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय ।
चक्री सुर खग इंद्र होयके, करम नाश सिवपुर सुख थाय ॥२४॥
(इत्याशीर्वाद–पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।)

---

(६९) श्री सम्मेदशिखरपूजाविधान ।

दोहा-सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उत्कृष्ट सुथान ॥ शिखिर सम्मेद सदा नमों, होय पापकी हान ॥ १ ॥ अगणित मुनि जहँ तें गए, लोक शिखिरके तीर । तिनके पद पंकज नमौं, नाशै भवकी पीर ॥ २ ॥ अडिल्ल छन्द–है उज्जल वह क्षेत्र सु अति निर्मल सही । परम पुनीत सुठौर महां गुनकी मही ॥ सकल सिद्धि दातार महां रमणीक है । वंदौ निजसुख हेत अचल पद देत है ॥ ३ ॥ सोरठा–शिखिर सम्मेद महान । जगमैं तीर्थ प्रधान है ॥ महिमा अदभुत जान । अल्पमती मैं किम कहौं ॥४॥

अडिल्ल छन्द–सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है । अति सु उज्जल तीर्थ महान है । करहि भक्तिसु जे गुन गाइकें । वरहि शिव सुरनर सुख पाइकें ॥ ५ ॥ सुर हरि नरपति आदि सु जिन वंदन कर । भवसागरतें तिरें नहीं भवदधि परें ॥ सुफल होय तो जन्म सु जे दर्शन करें । जन्म जन्मके पाप सकल छिनमें टरें ॥ ६ ॥ पद्धडि छंद–श्री तीर्थंकर जिनवर सु वीस । अरु मुनि असंख्य सब गुणन ईस ॥ पहुंचे जहंसे केवल सुधाम । तिन सबकों अब मेरी प्रणाम ॥ ७ ॥ गीतका छंद–सम्मेदगढ़ है तीर्थ भारी सबनको उज्ज्वल करे । चिरकालके जे कर्म लागे दर्शते छिनमें टरे ॥ है परम पावन पुन्य दायक अतुल महिमा जानिए । है अनूप सरूप गिरिवर तासु पूजा ठानिए ॥ ९ ॥ दोहा–श्री सम्मेदशिखिर महा । पूजों मनवच काय ॥ हरत चतुर्गति दुःख को, मन वांछित फलदाय ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतरसंवौषट् इत्याह्वाननम् । ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । ॐ ह्रीं श्री सम्मेद शिखिर सिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव सन्निधीकरणं ।

अष्टकं ।

अडिल्ल छंद–क्षीरोदधि सम नीर सु उज्जल लीजिये । कनक कलश में भरके धारा दीजिये ॥ पूजों शिखिर सम्मेद सुमन वचकाय जू । नरकादिक दुःख टरें अचल पद पाय जू ॥ ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥ पयसों घिस मलयागिर चन्दन ल्याइये । केसर आदि कपूर सुगंध मिलाइये ॥ पूजों शिखिर० । ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर

सिद्धक्षेत्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥ तंदुल धवल सु उज्वल खासे धोयके। हेम वरनके थार भरौं शुचि होय कैं॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्ध-क्षेत्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥ फूल सुगंध सु ल्याय हरषसों आन चढ़ायौ। रोग शोक मिट जाय मदन सब दूर पलायौ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेद-शिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥ षट् रस कर नैवेद्य कनक थारी भर ल्यायो॥ क्षुधा निवारण हेतु सु पूजौ मन हरषायो॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेद-शिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति उद्योत हो। पूजत होत स्वज्ञान मोह तम नाश हो॥ पूजो शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपा-मीति स्वाहा ॥६॥ दस विधि धूप अनूप अगिन मैं खेवहूं। अष्ट कर्मको नाश होत सुख पावहूं॥ पूजो शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥ केला लौंग सुपारी श्रीफल ल्याइये। फल चढ़ाय मन वांछित फल सु पाइये॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मे-दशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥ जल गंधाक्षित फूल सु नेवज कीजिये। दीप धूप फल लैं अर्घ चढ़ाइये॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्ध-क्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पद्धडी छन्द—श्रीवीस तीर्थंकर हैं जिनेन्द्र। अरु हैं असंख्य

बहुते मुनेंद्र ॥ तिनकों करजोर करों प्रणाम। तिनकों पूजों तज सकल काम ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं। ढार योगीरायसा—श्री सम्मेदशिखिर गिर उन्नत शोभा अधिक प्रमानों। विंशति तिंहपर कूट मनोहर अद्भुत रचना जानौ ॥ श्री तीर्थंकर बीस तहांते शिवपुर पहुंचे जाई। तिनके पद पंकज युग पूजों अर्घ प्रत्येक चढ़ाई। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥ प्रथम सिद्धवर कूट मनोहर आनंद मंगलदाई। अजित प्रभु जंह ते शिव पहुंचे पूजो मनवचकाई॥ कोड़ि जु अस्सी एक अर्ब मुनि चौवन लाख जुगाई। कर्म काट निर्वाण पधारे तिनको अर्घ चढ़ाई। ॐ ह्रीं श्री सम्मेद-शिखर सिद्धकूटतें श्री अजितनाथ जिनेन्द्रादि एक अर्ब अस्सी कोड़ि चौवन लाख मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्व-पामीति स्वाहा ॥१॥ धवल कूट सो नाम दूसरो है सबकों सुख-दाई। संभव प्रभुसो मुक्ति पधारे पाप तिमिर मिटजाई। धवलदत्त हैं आदि मुनीश्वर नव कोड़ाकोड़ि जानौ। लक्ष बहत्तर सहस बया-लिस पंच शतक ऋषि मानौ॥ कर्म नाश कर अमरपुरी गए बंदौ सीस नवाई। तिनके पद युग जजों भावसों हरष हरष चितलाई॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर धवलकूटतें संभवनाथ जिनेन्द्रादि नव कोड़ाकोड़ि बहत्तर लाख व्यालिस हजार पांचसे मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१॥ चौपाई—आनंद कूट महा सुख-दाय। प्रभु अभिनंदन शिवपुर जाय। कोड़ाकोड़ि बहत्तर जानौ। सत्तर कोड़ि लाख छत्तीस मानौ ॥ सहस बयालीस शतक जु सात। कहें जिनागम में इस भांत। ए ऋषि कर्म काट शिव गये,

तिनके पद युग पूजत भये ॥ ॐ ह्रीं श्री आनन्दकूटतैं अभिनन्दननाथ जिनेन्द्रादि मुनि बहत्तर कोड़ाकोड़ि अरु सत्तर कोड़ि छत्तीस लाख ब्यालीस हजार सातसैं मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥ अडिल्ल छंद–अवचल चौथौ कूट महां सुख धाम जी । जहं ते सुमति जिनेश गये निर्वानजी ॥ कोड़ाकोड़ि एक मुनीश्वर जानिये । कोड़ि चौरासी लाख बहत्तर मानिये ॥ सहस इक्यासी और सातसै गाईये । कर्म काट शिव गये तिन्हें सिर नाईये ॥ सो थानक मैं पूजौ मन वच काय जू । पाप दूर हो जाय अचल पद पायजू ॥ ॐ ह्रीं श्री अवचल कूटतें श्री सुमति जिनेन्द्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ि चौरासी कोड़ि बहत्तर लाख इक्यासी हजार सातसै मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥ अडिल्ल छंद–मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यौ । पद्मप्रभु जिनराय जहां शिवपद लह्यौ ॥ कोड़ि निन्यानवै लाख सतासी जानिये । सहस तेतालिस और मुनीश्वर मानिये॥ सप्त सैकड़ा सत्तर ऊपर बीस जू । कहैं जवाहरदाससु दोय कर जोरेजू ॥ ॐ ह्रीं श्री मोहनकूटतैं श्री पद्मप्रभु मुनि निन्यानवै कोड़ि सतासी लाख तेतालिस हजार सातसै सत्ताउन मुनि निर्वाणपदप्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥ सोरठा–कूट प्रभास महान । सुंदर जग मणि मोहनौ । श्री सुपार्श्व भगवान, मुक्ति गये अघ नाश कर ॥ कोड़ाकोड़ी उनचास कोड़ि चौरासी जानिये । लाख बहत्तर जान सात सहस अरु सातसै ॥ और कहे ब्यालीस जहतें मुनि मुक्तिहि गये । तिनकौं नमुं नित सीस दास जवाहर जोरकर ॥ ॐ ह्रीं प्रभासकूटतें श्री सुपार्श्वनाथ जि-

नेंद्रादि उनंचास कोडाकोडी बहत्तर लाख सात हजार सातसै ब्यालीस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ७ ॥ दोहा पावन परम उतंग हैं ललित कूट है नाम ॥ चंद्र प्रभु मुक्त गये, वंदौ आठौ जांम ॥ नवसै अरु वसु जानियौ, चौरासी ऋषि मान। क्रौड़ि बहत्तर रिषि कहे। असी लाख परवान ॥ सहस चौरासी पंच शत। पचवन कहे मुनीश। वसु कर्मनको नाशकर ॥ गये लोकके शीस ॥ ललितकूटतैं शिव गये। वंदों सीस नवाय ॥ तिनपद पूजों भाव सौं, निज हित अर्घ चढ़ाय ॥ ॐ ह्रीं ललितकूटतैं श्री चंद्रप्रभु जिनेन्द्रादि नवसै चौरासी अरब बहत्तर क्रोड असीलाख चौरासी हजार पांचसै पचवन मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥ पद्धडी छन्द—सुवरण-भद्र सो कूट जान। जहं पुष्पदंतकी मुक्त थान ॥ मुनि कोडा-कोड़ी कहे जु भाख। अरु कहे निन्यानवे चार लाख ॥१॥ सौ सात सतक मुनि कहे सात। रिषि असी और कहे विख्यात ॥ मुनि मुक्ति गये वसु कर्म काट। वंदौ कर जोर नवाय माथ ॥२॥ ॐ ह्रीं श्री सुप्रभुकूटतै पुष्पदंत जिनन्द्रादि एक कोडाकोडी निन्यानवै लाख सात हजार चारसै अस्सीमुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥ सुन्दरी छंद—सुभग विद्युतकूत सु जानियै। परम अद्भुतता परमानियै ॥ गये शिवपुर शीतलनाथजी। नमहुं तिनपद करी धरि माथजी ॥ मुनिवसु कोड़ाकोड़ी प्रमा-नियै। और जो लाख ब्यालिस जानियै ॥ कहे और जु लाख बत्तीस जू। सहस ब्यालिस कहे यतीश जू ॥ और तहंसे नौसै पांच सुजानिये। गये मुनि शिवपुरकों जु मानिये ॥ करहिं पूजा

जे मनलायकें। धरहि जन्म न भवमें आयकें॥ ॐ ह्रीं सुभग विद्युतकूटतें श्री शीतलनाथ जिनेंद्रादि अष्ट कोड़ाकोड़ी व्यालीस लाख वत्तीस हजार नौसै पांच मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१०॥ ढार योगीरासा–कूटजु संकुल परम मनोहर श्री श्रीयांस जिनराई। कर्म नाश कर अमरपुरी गये, वंदों शीस नवाई॥ कोड़ाकोड़ जु है छयानवै, छयानवे कोड़ प्रमानों॥ लाख छयानवै साढ़े नवसै, इकसठ मुनीश्वर जानो। ताऊपर व्यालीस कहे हैं श्री मुनिके गुन गावै। त्रिविध योग कर जो कोई पूजै सहजानंद पद पावै॥ ॐ ह्रीं संकुल कूटतें श्रीयांसनाथ जिनेन्द्रादि छयानवै कोड़ाकोड़ी छयानवै कोड़ छयानवे लाख साढ़ेनौ हजार व्यालीस मुनि सिद्ध पद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥११॥ कुसुमलता छंद–श्री मुनि संकुल कूट परम सुंदर सुखदाई। विमलनाथ भगवान जहां पंचमगति पाई॥ सात शतक मुनि और व्यालिस जानिये। सत्तर कोड़ सत लाख हजार छै मानिये॥ दोहा–अष्ट कर्मको नाश कर, मुनि अष्टम क्षिति पाय॥ तिनको मैं वंदन करों, जन्ममरण दुख जाय॥ ॐ ह्रीं श्री संकुलकूटतें श्री विमलनाथ जिनेंद्रादि सत्तर कोड़ सात लाख छैः हजार सातसै व्यालीस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ १२ ॥ अडिल–कूट स्वयंभू नाम परम सुंदर कहो। प्रभु अनंत जिननाथ जहां शिवपद लहो॥ मुनि जु कोड़ाकोड़ी छयानवै जानियै। सत्तर कोड़ जु सत्तर लाख बखानियै॥ सत्तर सहस जु और सातसै गाइये। मुक्ति गये मुनि तिन पद शीस नवाईये॥ कहे जवाहरदास सुनो मन लायकें। गिरवरकों नित पूजो मन हरषायकें॥ ॐ ह्रीं स्वयंभूकूटतें श्री अनंतनाथ

जिनेंद्रादि क्ष्यानवै कोड़ाकोड़ी सत्तर लाख सात हजार सातसै मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१३॥ चौपाई—कूट सुदत्त महां शुभ जानों। श्री जिनधर्म नाथको थानों॥ मुनि जु कोड़ा-कोड़ उनतीस। और कहे रूप कोड़ उनीस॥ नव्वै लाख नौ सहस सु जानों। सात शतक पंचानव मानों॥ मोक्ष गये वसु कर्मन चूरे। दिवस रैन तुमही मम पूरे॥ ॐ ह्रीं श्री सुदत्त कूटतें श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि उनतीस कोड़ाकोड़ी उनीस क्रोड़ नव्वै लाख नौ हजार सातसैं पंचानवें मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥१४॥ है प्रभासी कूट सुंदर अति पवित्र सो जानिये। सातनाथ जिनेन्द्र जहांते परम धाम प्रमानिये। ॐ ह्रीं प्रभास कूटतें श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि नौ कोड़ाकोड़ी नौ लाख नौ हजार नौसे निन्यानवे मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं॥१५॥ गीतिका छन्द—ज्ञानधर शुभ कूट सुंदर परम मनको मोहनो। जहते श्री प्रभु कुंथु स्वामी गये शिवपुरको गनो॥ कोड़ाकोड़ी क्ष्यानवे मुनि कोड़ि क्ष्यानवे जानिये। लाख बत्तीस सहस क्ष्यानवे अरु सौ सात प्रमानिये॥ दोहा—और कहे ब्यालीस. तुमरो हिये मझांर। जिनवर पूजो भाव सों, कर भवदधि तें पार॥ ॐ ह्रीं ज्ञानधरकूट तें श्रीकुंथुनाथ स्वामी और क्ष्यानवे कोड़ाकोड़ी क्ष्यानवे कोड़ि बत्तीस लाख क्ष्यानवे हजार अरु सातसौ व्यालीस मुनि सिद्धपदप्राप्ताय सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं॥ १६॥ दोहा—कूट जु नाटक परम शुभ, शोभा अपरम्पार। जहंते अरह जिनेन्द्रजी, पहुँचे मुक्त मंझार। कोड़ि निन्यानवे जानि मुनि, लाख निन्यानवे और। कहे सहस निन्यानवे, वंदों

कर जुग जोर ॥ अष्ट कर्मको नाश कर, अविनाशी पद पाय। ते गुरु मम हृदये वसौ, भवदधि पार लगाय ॥ ॐ ह्रीं नाटककूटतें श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि निन्वानवे कोड़ि निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१७॥ अडिल्ल छन्द—कूट संवल परम पवित्र जू ॥ गये शिवपुर मल्लि जिनेश जू ॥ मुनि जु छ्यानवे कोड़ि प्रमानिये, पद जजत हृदये सुख मानिये ॥ ॐ ह्रीं संवल कूटतें श्री मल्लिनाथ जिनेंद्रादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी मुनि सिद्धपदप्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१८ ढार परमादीकी चालमें—मुनिसुव्रत जिनराज सदा आनंदके दाई। सुंदर निर्जर कूट जहां तें शिवपुर पाई ॥ निन्यानव कोड़ा कोड़ कहे मुनि कोड़ सत्याना। नो लख जोर मुनेन्द्र कहे नौसे निन्याना। सोरठा—कर्मनाश ऋषिराज, पंचमगतिके सुख लहे। तारन तरन जिहाज, मो दुख दूर करौ सकल ॥ ॐ ह्रीं श्री निर्जर कूटतें श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्रादि निन्यानवे कोड़ाकोड़ी संतावन कोड़ नौ लाख नौ शतक निन्यानवे मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घं ॥१९॥ ढारजोगरासा—एह मित्रधर कूट मनोहर सुंदर अतिछवछाई। श्री नमिनाथ जिनेश्वर जहांतैं शिवपुर पहुँचे जाई ॥ नौसे कोड़ाकोड़ी मुनीवर एक अरब ऋषि जानौ। लाख सैंतालिस सात सहस अरु नौसे व्यालिस मानौ। दोहा—वसु कर्मनको नाशकर, अविनाशी पद पाय। पूजौ चरन सरोज ज्यों, मनवांछित फल पाय ॥ ॐ ह्रीं श्री मित्रधर कूटतें श्री नमिनाथ जिनेंद्रादि मुनि नौसे कोड़ाकोड़ी एक अर्ब सैंतालिस लाख सात हजार नौसे व्यालिस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ २० ॥

दोहा–सुवर्ण भद्र जु कूटतैं, श्री प्रभु पारसनाथ । जहंतैं शिवपुरको गये, नमों जोड़ि जुग हाथ ॥ ॐ ह्रीं सुवर्णभद्र कूटतैं श्री पार्श्वनाथ स्वामी सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥११॥ या विधि वीस जिनेंद्रके, वीसौं शिखिर महान ॥ और असंख्य मुनि सहजही । पहुंचे शिवपुर थान । ॐ ह्रीं श्री वीस कूट सहित अनंत मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१२॥ ढारकातिककी–प्राणी हो आदीश्वर महाराजजी, अष्टापद शिव थान हो । वासपूज जिनराजजी चंपापुर शिवपद जान हो ॥ प्राणी नेम प्रभु गिरनारतैं, पावापुर श्री महावीर हो ॥ प्राणी पूजौं अर्घ चढ़ाय कै, इह नाशै भयभीत हो । प्राणी पूजौं मनवच कायके ॥ ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ कैलाशगिरतैं, श्री महावीरस्वामी पावापुर तैं, श्री वासुपूज चम्पापुर तैं, नेमिनाथ गिरनार तैं सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ २३ ॥ दोहा–सिद्धक्षेत्र जे और हैं, भरत क्षेत्रके मांहि ॥ और जु अतिशय क्षेत्र हैं, कहे जिनागम मांहि । तिनको नाम जु लेतही, पाप दूर हो जाय । ते सब पूजौं अर्घ लै, भव भवकूं सुखदाय । ॐ ह्रीं भरत क्षेत्र सम्बन्धी अतिशय क्षेत्रेभ्यो अर्घं । सोरठा–दीप अढ़ाई मांहि सिद्धक्षेत्र जे और हैं । पूजौं अर्घ चढ़ाय भवभवके अघ नाश हैं ॥ ॐ ह्रीं अढाई द्वीप सम्बन्धी सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ २४ ॥

अथ जयमाल ।

चौपाई–मन मोहन तीरथ शुभ जानौ । पावन परम सु क्षेत्र प्रमानौ ॥ उनतीस शिखिर अनूपम सोहे । देखत ताहि सुरासुर मोहे । दोहा–तीरथ परम सुहावनौ, शिखिर सम्मेद

विशाल ॥ कहत अल्प बुध उक्तसो, सुखदायक जयमाल ॥ २ ॥ चौपाई–सिद्धक्षेत्र तीरथ सुखदाई । वंदत पाप दुर हो जाई । शिखिर शीसपर कूट मनोग । कहे वीस अतिशय संयोग ॥ ३ ॥ प्रथम सिद्ध शुभ कूट सुनाम । अजितनाथ कौं मुक्ति सु धाम ॥ कूट तनौ दर्शन फल कहौ । कोड़ि बत्तीस उपास फल लहौ ॥ ४ ॥ दुजो धवल कूट है नाम । संभव प्रभु जहतैं निर्वाण ॥ कूट दरश फल प्रोषध मानौ । लाख छयालिस कहै बखानौ ॥ ५ ॥ आनंद कूट महां सुखदाई । जहं तैं अभिनन्दन शिव जाई ॥ कूट तनौ वंदन इम जानौ । लाख उपास तनौ फल मानौ ॥ ६ ॥ अवचल कूट महासुख वेश । मुक्ति गए तहं सुमति जिनेश ॥ कूट भावधर पूजे कोई । एक क्रोड़ प्रोषध फल होई ॥ ७ ॥ मोहन कूट मनोहर जान । पद्मप्रभु जंहतैं निर्वाण ॥ कूट पुन्य फल लहे सुजान । कोड़ उपास कहै भगवान ॥ ८ ॥ मन मोहन शुभ कूट प्रभास । मुक्ति गये जंहतै श्रीयांस ॥ पूजै कूट महां फल होय । कोड़ बत्तीस उपवास जु सोय ॥ ९ ॥ चन्द्रप्रभु कौ मुक्ति सु धाम । परम विशाल ललित घट नाम ॥ दर्शन कूट तनौ इम जानौ । प्रोषध सोला लाख बखानौ ॥ १० ॥ सुप्रभ कूट महां सुखदाई । जंहते पुष्पदंत शिव जाई ॥ पूजै कूट महा फल होय । कोड़ उपास कहौ जिनदेव ॥ ११ ॥ सो विद्युतवर कूट महान । मोक्ष गये शीतल धर ध्यान ॥ पूजै त्रिविध योग कर कोई । कोड़ उपास तनौ फल होई ॥ १२ ॥ संकुल कूट महां शुभ जानौ । जंहते श्री श्रीयांस भगवानौ ॥ कूटतनौ अंब दर्शन सुनौ । कोड उपास जिनेश्वर भनौ ॥ १३ ॥ संकुल कूट

परम सुखदायि । विमल जिनेश जहां शिव जाई ॥ मनवच दर्श करै जो कोई, कोड़ उपास तनौ फल होई ॥ १४ ॥ कूट स्वयंभू सुभगसु ठाम । गये अनंत अमरपुर धाम । यही कूट को दर्शन करै । कोड उपास तनौ फल धरै ॥ १५ ॥ है सुदत्तवर कूट महान । जंहते धर्मनाथ निर्वाण ॥ परम विशाल कूट है सोई, कोड उपवास दर्श फल होई ॥ १६ ॥ कूट प्रभास परम शुभ कही । शांति प्रभु जंहते शिव लही ॥ कूट तनौ दर्शन है सोई । एक कोड प्रोषध फल होई ॥ १७ ॥ परम ज्ञानधर है शुभ कूट । शिवपुर कुंथु गये अघ छूट ॥ इनकौ पूजै दोई कर जोर । फल उपवास कहो इक कोड़ ॥ १८ ॥ नाटक कूट महां शुभ जान । जंहते अरह मोक्ष भगवान ॥ दर्शन करै कूटको जोई । क्ष्यानवै कोड़ उपास फल होई ॥ १९ ॥ संवलकूट मल्लि जिनराय । जंहते मोक्ष गये निज काय ॥ कूट दरश फल कही जिनेश । कोड़ि एक प्रोषध फल वेस ॥ २० ॥ निर्जर कूट महां सुखदाई । मुनिसुव्रत जंह ते शिव जाई ॥ कूट तनौ दर्शन है सोई । एक कोड़ प्रोषध फल होई ॥ २१ ॥ कूट मित्रधरतें नमि मोक्ष । पूजत पांय सुरासुर जक्ष ॥ कूट तनौ फल है सुखदाई । कोड़ उपास कही जिनराई ॥२२॥ श्रीप्रभु पार्श्वनाथ जिनराय, दुरगति तें छूटे महाराज ॥ सुवर्णभद्र कूट कौ नाम । जहं तैं मोक्ष गये जिन धाम ॥ २३ ॥ तीन लोक हित करत अनूप । मंगल मय जगमैं चिद्रूप ॥ चिंतामणि स्वर वृक्ष समान । रिद्ध सिद्ध मंगल सुख दान ॥ २४ ॥ पारस और काम सुर धेनु । नानाविध आनंदकौं देनु । व्याधि विकार जांहिं सब भाज । मन चिंते पूरे सब काज ॥ २५ ॥ भव-

दधि रोग विनाशक होई। जो पद जगमैं और न कोई॥ निर्मल परम धाम उत्कृष्ट। वन्दत पाप भजै अरि दुष्ट ॥ २६ ॥ जो नर ध्यावत पुन्य कमाय। जश गावत ऐ कर्म नशाय॥ कूट अनादि कर्मके पाप। भजै सकल छिनमें संताप ॥ २७ ॥ सुर नर इन्द्र फणिन्द्र जु सवें और खगेन्द्र महेन्द्र जु नमे, नित सुर सुरी करें उच्चार। नाचत गावत विविध प्रकार ॥ १८ ॥ बहु विध भक्ति करै मन लाय। विविध प्रकार वाजित्र बजाय ॥ १९ ॥ द्रुम द्रुम द्रुम बाजै मृदंग। घन घन घंट बजे मुहचंग॥ झन झंन झनिया करै उच्चार। सरसारंगी धुन उच्चार ॥ ३० ॥ मुरली वीन बजै घन मिष्ट। पटहांतुरी स्वरान्वत पुष्ट॥ नित सुरगुण थुति गावत सार। सुरगण नाचत बहुत प्रकार ॥ ३१ ॥ झननन झननन नूपुर तान। तननन तननन टोरत तान। ता थेई थेई थेई थेई थेई चाल। सुर नाचत निज नावत सुभाल॥ ३२॥ गावत नाचत नाना रंग॥ लेत जहां सुर आनंद संग॥ नित प्रति सुर जहां वंदत जाय॥ नाना विध मंगल कौं गाय॥ ३३ ॥ अनहद धुन सुन मोद जु सोय। प्रापत व्रतकी अत ही होय॥ तातैं हमकूं है सुख सोई। गिरवर वंदों कर धर दोई ॥ ३४ ॥ मारुत मंद सुगंध चलेय। गंधोदक तहाँ वरषै सोय॥ जियकी जात विरोध न होई। गिरवर वंदै कर धर दोई। ॥ ३५ ॥ ज्ञान चरित तपसाधन होई, निज अनुभौको ध्यान धरेई॥ शिव मंदिरको द्वारौ सोई, गिरवर वंदै कर धर दोई॥ ३६ ॥ जो भव वन्दे एक जुवार, नरक निगोद पशु गति टार॥ सुर शिवपदकूं पावै सोय। गिरवर वंदै कर धर दोय ॥ ३७ ॥ ताकी

महिमा अगम अपार। गणधर कथन न पावैं पार। तुम अद्भुत मैं मति कर हीन। कही भक्तिवश केवल लीन॥ ३८॥ घत्ता—श्री सिधक्षेत्रं अति सुख देतं॥ सेवतु नासौ विघ्न हरा॥ अरु कर्म विनाशैं सुःख पयासै केवल भासै सुःख करा॥ ३९॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो महार्घं। दोहा— शिखिरसम्मेद पूजो सदा, मन वच तन नर नारि॥ सुः शिवके जे फल लहैं। कहते दास जवारी॥ ४०॥

इत्यादि आशीर्वादः।

चतुर्थ खंड।

(१) शांतिपाठः

(शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करना चाहिये।)

दोधकवृत्तम्।

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तमम्बुजनेत्रम्॥ १॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि॥ २॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ ३॥
तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि?
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च॥ ४॥

वसन्ततिलका ।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः शक्रादिभिः सुरगणैःस्तुतपादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थंकराःसततशांतिकरा भवन्तु॥ १

इन्द्रवज्रा ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेंद्रः ॥६॥

स्रग्धरावृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधियो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेंद्र धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप-प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्ट प्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गति सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

---

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ॥ भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ (यह श्लोक क्षेपक है, इसे बोलना न चाहिये ।)

आर्यावृत्तम् ।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ १० ॥

आर्या—अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥११॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥१२॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत)

---

(२) विसर्जन पाठ ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आव्हानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥ ४ ॥

---

(३) भाषा स्तुतिपाठ।

तुम तारणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पद पूजा करूं।
कैलासगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥ २ ॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली।
यह विरद सुनकर शरण आयो, कृपा कीजे नाथजी ॥३॥
तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन, चंद्रपुरि परमेश्वरो।
महासेननंदन, जगतवंदन, चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पांच कल्याण पूजों, शुद्ध मनवचकायजू।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥
तुमबाल ब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसैन्या वश करो।
चारित्र रथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥ ७ ॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो।
अश्वसेननन्दन जगतवंदन, सकलसंघ मंगल कियो ॥ ८ ॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमान विदारकैं।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रके पद, मैं नमो शिरधारकैं ॥ ९ ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो।
सिद्धार्थनन्दन जगतवन्दन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥
छत्र तीन सोहै सुरनर मोहै, वीनती अवधारिये।
कर जोड़ि सेवक वीनवे प्रभु, आवागमन निवारिये ॥ ११ ॥

अब होउ भव भवं स्वामी मेरे, मैं सदा सेवक रहों ।
कर जोड़ यो वरदान मांगो, मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥
जो एकमांहि एक राजै, एकमांहि अनेकनो ।
इक अनेककी नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥१३॥

चौपाई ।

मैं तुम चरणकमलगुणगाय । बहुविध भक्ति करी मन लाय ॥
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४॥
कृपा तिहारी ऐसी होय । जामन मरन मिटावो मोय ।
बारबार मैं विनती करूं । तुम सेयें भवसागर तरूं ॥ १५ ॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय । तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवनके देव । मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥
मैं आयो पूजनके काज । मेरो जन्म सफल भयो आज ॥
पूजा करकै नवाऊं शीस । मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥१७॥

दोहा–सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीबकी बीनती, सुन लीज्यो भगवान ॥ १८ ॥
दर्शन करते देवका, आदि मध्य अवसान ।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय ।
जो सूरजमें ज्योति है, तारनमें नहिं सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमांहि पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ २१ ॥
बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजाविधि जानूं नहीं, शरण राखि भगवान ॥ २२ ॥

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त ।

(४) श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्रम् ।

(भगवज्जिनसेनाचार्यकृतं)

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम् । नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः । स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः । विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः । विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः । विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः । अनन्तचिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः । मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः । ब्रह्मविद्ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥ शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धांतविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥ १० ॥ सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः । परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः । पूतात्मा परमज्यो-

विर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ १ ॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः । तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥ २ ॥ अनन्वदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः॥३॥ निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिनिरामयः। अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥ ४ ॥ अग्रणीर्ग्रामणी-र्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् । शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः । वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृ-द्भूतभावनः । प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७॥ हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः । स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः । सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥ सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः । विश्रुतो विश्वतःपादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥ सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः । स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गरिष्ठगीः ॥ १ ॥ विश्वभृद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः । विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२॥ विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् । विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥ विनेयजनताबन्धुर्विलीना-शेषकल्मषः । वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥ क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक्सलिलात्मकः, वायुमूर्तिरसङ्गात्मा

वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥ सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः । ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥ ६ ॥ व्योममूर्तिमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः । सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥ ७ ॥ मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तकः । स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥ ८ ॥ कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः । नित्यो मृत्युंजयो मृ युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः । महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥ १० ॥ सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥

महाशोकध्वजो शोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः । पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ १ ॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः । कृतक्रियः ॥ २ ॥ गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गु ाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥ गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥ अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥ ५ ॥ पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥ निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः । निष्कलङ्को निरस्तैना निर्धूताङ्गो निरास्रवः ॥ ७ ॥ विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः । सुसंवृत्तः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनयतत्त्ववित् ॥ ८ ॥ एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः

॥ ९ ॥ पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥ १० ॥ कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११॥

इति महादिशतम् ॥ ४ ॥

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः । निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥ १ ॥ सिद्धिदः सिद्धिसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धिसाधन । बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥ वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः । वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः॥३॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः। युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥ ४ ॥ अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महीन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् । अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्ध्यं परमेश्वरः ॥ ६ ॥ अनन्तर्द्धिरमेयार्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः। प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः॥७॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः। महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः । महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥ ९ ॥ महामतिर्महानीतिर्महाक्षांतिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकवि ॥१०॥ महामहामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपु । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥ ११ ॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥५॥

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः। महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ १ ॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः। महामैत्री महामेयो महापायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महायतिः। महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः॥३॥ महाध्वरधरो धुर्यो महोदार्यो महिष्टवाक्। महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः। महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥ ५ ॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः। महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः। महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः। असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८ सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः। दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥ ९ ॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिर्परमः परमोदयः। प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥ १० ॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्रणादः प्रणतेश्वरः। प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोध्वर्युरध्वरः॥११॥ आनन्दो नंदनो नंदो वन्द्यो निंद्योऽभिनंदनः। कामहा कामदः काम्यः कामधेनुरारिंजयः ॥१२॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत्। अंतकृत्कांतगुः कांताश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥ १ ॥ अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः। जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥ २ ॥ जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः। महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो

मनुरुत्तमः । अभेद्योऽनत्ययोऽन श्वानधिकोऽधिगुरु सुधी ॥ ४ ॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुक । विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कमणोऽनघः ॥५॥ क्षमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यः ज्ञानिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः । श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७ सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः । सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्य सत्यपरायणः॥८॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः । अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥ सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्य सदोदय ॥ १० ॥ सुघोष सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् । सुगुप्तागुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥ ११ ॥

इति अमंस्कृत दिशतम् ॥ ७ ॥

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः । मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपति ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् । अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः । पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिनईशिता । मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः ॥ ४ ॥ धर्मयूपो दयायोगो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः । धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः । सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः । अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥ वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः । प्रशान्तोऽनन्तधाम-

र्विमङ्कः मरुद्धानघः ॥ ८ ॥ अनीहगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः। अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः। सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥ शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः। अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः। त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः। सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः। आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥ कल्याणप्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः। विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः। जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः। सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभ ॥ ६ ॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः। सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः। ७। तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः। हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥ ९ ॥ द्युम्नाभो जातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः। सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः। १० ॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः। शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥ ११ ॥ शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।

शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः। सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥ १३॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ९ ॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः। निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धि शीलसागरः तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः। कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥ अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकः प्रमामयः। लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥ मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः। प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः। आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥ ६ ॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्। सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः। उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः। धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः। भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः। कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥ अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥ १२ ॥ समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्म-

देशकः ॥१३॥ शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥ १४ ॥

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥ १० ॥

इत्यष्टाधिकसहस्रनामावली समाप्ता।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भवेत् ॥ २ ॥ त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्। त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥ ३ ॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गं स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ॥४॥ त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः। षड्भेदभावतत्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः। दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥ ६ ॥ युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया। भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः। यः स पाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः। पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥ स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं। ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥ स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः। निष्ठितार्थोभवान्स्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥ ११ ॥ यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्। ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥ यो नेतॄनपि नेतुमप्रतिहतं नन्तव्यपक्षेक्षणः। सश्रीमाञ्जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥ १२ ॥ तं देवं

त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं। प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनम् ॥ मानस्तम्भत्रिलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं। प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥ ११ ॥

इति श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचितादिपुराणान्तर्गतं जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

---

(५) मोक्षशास्त्रम् (तत्त्वार्थसूत्रम्)।

(आचार्यश्रीमदुमास्वामिविरचितम्)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानत ॥ ७ ॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ।१०। आद्ये परोक्षम् । ११ ॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।१४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०। भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशु-

द्विक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः ॥ २५ ॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥ २७॥ तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥ गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽसिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥ द्विविधानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥ स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ।। २८ ।। एकसमयाऽविग्रहाः ।।२९ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ।।३०।। सम्मूर्छनगर्भोपपादाज्जन्म ।।३१।। सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।३२।। जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ।।३३।। देवनारकाणामुपपादः ।।३४।। शेषाणां सम्मूर्छनम् ।। ३५ ।। औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ।। ३६ ।। परं परं सूक्ष्मम् ।। ३७ ।। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।३८।। अनन्तगुणे परे ।।३९।। अप्रतीघाते ४ ।। अनादिसम्बन्धे च ।।४१।। सर्वस्य ।। ४२ ।। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।। ४३ ।। निरुपभोगमन्त्यम् ।। ४४ ।। गर्भ सम्मूर्छनजमाद्यम् ।। ४५ ।। औपपादिकं वैक्रियिकम् ।। ४६ ।। लब्धिप्रत्ययं च ।। ४७ ।। तैजसमपि ।।४८।। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।४९।। नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ।।५०।। न देवाः ।।५१।। शेषास्त्रिवेदाः ।।५२।। औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।। ५३ ।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ।। १ ।। तासु त्रिंशत्पचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ।। २ ।। नारकानित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ।। ३ ।। परस्परोदीरितदुःखाः ।। ४ ।। संक्लिष्टासुरोदीरितदुखाश्च प्राक चतुर्थ्याः ।। ५ ।। तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमासत्त्वानां परा स्थितिः ।। ६ ।। जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।७।। द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो

वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यव-तैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायताः हिमवन्म-हाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्ज्जु-नतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध-विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणाद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥ गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरि कान्तासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाःसरित-स्तन्मध्यगाः ॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृत्ता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशताविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगुणाविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांता ॥२५ उत्तरा दक्षिणतुल्याः॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामु त्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८ एकाद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१ । भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्याम्ले-च्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकु-

रुभ्य: ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१० व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतोहीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३ ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्ति-
र्यग्योनयः ॥ २७ ॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपम-
त्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके
॥ २९ ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादश-
त्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन
नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा
पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तराः ॥३४॥
नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्
॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥ परा
पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ तदष्टभा-
गोऽपरा ॥४१॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥२॥
जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः
॥ ५ ॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥
असंख्येयाः प्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥ आकाशस्यानन्ताः
॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥ ११ ॥
लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदे-
शादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम्
॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्यु
पग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥
शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुःखजीवितमर-
णोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तनापरिणा-

मक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥२७॥ भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुणपर्य्ययवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इंद्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्म-

देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ मायातैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाऽकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययौ नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादा पञ्च ॥ ६ ॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ

वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणांतिकीं सल्लेखना जोषिता ॥ २२ ॥ शंकाकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणाऽतिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानासंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥ पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥ गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबंधनसङ्घातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ । शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥ २० ॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः सर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४ ॥ सद्वेद्य-

स्वाध्यायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६। उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥ आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य॥३१॥ वेदनायश्च ॥३२॥निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४०॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४१॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रांतिः॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥ बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ । तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥

धर्मास्तिकायाऽभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्वार्थधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसंधिविवर्जितरेफम् । साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥ दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्वार्थे पठिते सति । फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥ २ ॥ तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम् वंदे गणींद्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्र समाप्तम् ।

---

(६) श्रीमुनिराजका बारहमासा ।

(पं० जियालालजी रचित)

मैं वन्दूं साधु महन्त बड़े गुणवंत सभी नित ध्याके । जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥ टेक ॥ चित चैतमें व्याकुल रहै काम तन दहै न कुछ बन आवै । फूली बन राई देख मोह भ्रम छावै ॥ जब शीतल चले समीर स्वच्छ हो नीर, भवन सुख भावे । किस तरह योग योगीश्वरसे बन आवे ॥ तिस अवसर श्रीमुनि ज्ञानी, रहे अचल ध्यानमें ध्यानी । जिन काया लखी बिरानी, जग ऋद्धि खाक सम जानी ॥ उस समय धीर धर रहैं, अमरपद लहैं ध्यान शुभ ध्याके । जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥१॥ जब आवत है वैशाख, होय तन खाख तापसे जलके । सब करैं घाम विश्राम पवन झल झल के ॥ ऋतु गरमीमें

संसार, पहिन नर नार वस्त्र मलमलके। वे जलसे करते नेह जो हैं जिय थलके॥ जिस समय मुनी महराजे, तन नगन शिखर गिरि-राजे। प्रभु अचल सिंहासन राजै, कहो क्यों न करमदल लाजै॥ जो घोर महातप करैं, मोक्षपद धरे बसैं शिवजाके। जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके॥ २॥ जब पडे जेठमें ज्वाला होय तन काला धूपके भारी। घर बाहर पग नहिं धरैं कोई घरबारी॥ पानीसे छिरके घाम, करे विश्राम सकल नर नारी। थर खसकी टटिया छिपैं लूहकी मारी॥ मुनिराज शिखरगिरि ठाडे, दिनरैन ऋद्धि अति बाढ़े। अति तृषा रोग भय बढ़े, तब रहैं ध्यानमें गाढ़े॥ सब सूखे सरवर नीर, जलेजु शरीर, रहैं समझाके। जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके॥३॥ आषाढ़ मेघका जोर बोलते मोर, गरजते बादल। चमके बिजुरी कड़ कड़े पडे धारा जल॥ अति उमडे नदियां नीर गहर गंभीर भरे जलसे थल। भोगीको ऐसे समय पडे कैसे कल॥ उस समय मुनी गुणवंते, तरुवर तट ध्यान धरंते। अति काटें जीव रु जन्ते, नहीं उनका सोच करन्ते॥ वे काटैं कर्म जंजीर, नहीं दलगीर, रहैं शिवपाके। जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके॥४॥ श्रावनमें हैं त्यौहार, झूलतीं नारि चढीं हिंडोले। वे गावैं राग मल्हार पहन नये चोले॥ जग मोह तिमर मन बसे, सरब तन कसे देत झक झोले। उस अवसर श्रीमुनिराज बनत हैं भोले॥ वे जीतें रिपु से लरके, कर ज्ञानखड्ग ले करके। शुभ शुक्ल ध्यानको धरके, परफुल्लित केवल वरके॥ नहीं सहैं वो यमकी त्रास, लहैं शिवबास अघात नशाके। जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके॥५॥ भादव अंधियारी रात दिखै नां हात,

उमड़ रहे बादर । बनमोर पपीहा कोयल बोलैं दादुर ॥ मति मच्छर भिन १ करैं, सर्प फुंकरैं, फुंकारैं थलचर । बहु सिंह स्याल गज घूमें बनके अंदर ॥ मुनिराज ध्यानगुन पूरे, तब काटैं कर्म अंकूरे । तन लिपटत कानखजूरे, मधुमच्छि ततइयें भूरे ॥ चिटियोंने बिल तनकरे, आपमुनि खरे हाथ लटकाके । जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥६॥ आश्विनमें वर्षा गई, समय नहिं रही दशहरा आया । नहीं रही वृष्टि अरु कामदेव लहराया ॥ कामी नर करैं किलोक बजावैं ढोल, करैं मन भाया । हैं धन्य साधु जिन आतम-ध्यान लगाया । बहुयाम योगमें भीने, पुनि अष्टकर्म छय कीने । उपदेश सबनको दीने, भविजनको नित्य नवीने ॥ हैं धन्य धन्य मुनिराज, ज्ञानके ताज, नमूं शिरनाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥७॥ कातिकमें आया शीत भई विपरीति अधिक शरदाई । संसारी खेकें जुवा कर्म दुखदाई ॥ जग नर नारीका मेल, मिथुन सुख केल करैं मन भाई । शीतल ऋतु कामी जनको है सुखदाई ॥ जब कामी काम कमावैं । मुनिराज ध्यान शुभ ध्यावैं । सरवर तट ध्यान लगावैं, सो मोक्ष भवन सुख पावैं ॥ मुनि महिमा अपरम्पार, न पावै पार, कोई नर गाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥ ८ ॥ अगहनमें टपके शीत यही जगरीति सेज मन भावै । अति शीतल चले समीर देह थर्रावै ॥ श्रृंगार करे कामिनी रूपरस ठनी साम्हने आवै । उस समय कुमति बश सबका मन ललचावै ॥ योगीश्वर ध्यान धरे हैं, सरिताके निकट खरे हैं । जहां ओले अधिक परैं हैं, मुनि कर्मका नाश करैं हैं ॥ जब पड़े बर्फ घनघोर, करैं नहीं शोर नयी

दृढ़ताके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके॥ ९॥ यह पौष महीना भला, शीतमें धुजा कांपती काया। वे धन्य गुरू जिन इसऋतु ध्यान लगाया॥ घर बारी घरमें छिपैं वस्त्रतन लिपैं रहैं जड़ियाया। तजि वस्त्र दिगम्बर हो मुनि कर्म खिपाया॥ जलके तट जग सुखदाई, महिमा सागर मुनिगाई। धरधीर खड़े हैं भाई, निज आतमसे लवलाई॥ है यह संसार असार वे तारणहार सकल वसुधाके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके॥१०॥ ऋतु आई माघ वसंत नारि अरु कंत युगल सुख पाते। वे पहिने वस्त्र बसन्त फिरैं मदमाते॥ जब चढ़ै मैनकी सैन पड़े नहीं चैन कुमति उपजाते। हैं बड़े धीर जन बहुधा वे डिग जाते॥ तिस समय जु हैं मुनि ज्ञानी, जिन काया लखी पयानी। भवि डूबत बोधे प्रानी, जिन ये बसंत जियजानी॥ चेतनसे खेलें होरी ज्ञानरंगघोरी, जोग जल लाके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके॥ ११॥ जब लगा महीना फाग, करें अनुराग सभी नरनारी। ले फिरें कुमकुम फेंट हाथ पिचकारी॥ जब श्री मुनिवर गुणखान, अचल धरध्यान करें तप भारी। कर शीलसुधारस कर्मन ऊपर डारी॥ कीरति कुमकुमे बनावैं, कर्मोंसे फाग रचावैं। जो बारहमासा गावैं, सो अजर अमर पद पावैं॥ यह भाखैं जीयालाल, धरम गुणमाल, योग दरशाके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके॥ १२॥

सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥१९॥ सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः। येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखावहम् ॥१३॥ सुप्रभातं जिनेंद्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्। अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥ सुप्रभातं जिनेंद्रस्य वीरः कमललोचनः येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥ १५ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम्। त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ॥ २६ ॥ इति सुप्रभातस्तोत्रं समाप्तम् ॥

---

(८) दृष्टाष्टकस्तोत्रम्।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि भव्यात्मनां विभवसम्भवभूरि हेतुः। दुग्धाब्धिफेनधवलोज्वलकूटकोटीनद्धध्वजप्रकारराजिविराजमानम् ॥ १ ॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं भुवनैकलक्ष्मीधामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम्। विद्याधरामरवधूजनमुक्तदिव्यपुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ॥२॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवासविख्यातनाकगणिकागणगीयमानम्। नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मल विशालगवाक्षजालम् ॥ ३ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्षगन्धर्व किन्नरकरार्पितवेणुवीणा। सङ्गीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादैरापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालम् ॥४॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोलमालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम् ॥ माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ॥५॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः। सन्मङ्गलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ॥६॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेव-

मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥९॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः भुवनत्रयपूज्योहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः। तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥

इति अद्याष्टक स्तोत्र संपूर्णम् ॥

---

(१०) सूतक निर्णय।

सुतकमें देव शास्त्र गुरुका पूजन पक्षालादि तथा मंदिरजीके वस्त्राभूषणादिके स्पर्शनकी मना है तथा पात्रदान भी वर्जित है। सूतक पूर्ण होनेके बाद प्रथम दिन पूजन पक्षाल तथा पात्रदान करके पवित्र होवे। सूतकका विवरण इस प्रकार है। १ जन्मका सूतक दश दिनका, तथा २. स्त्रीका गर्भ जितने माहका पतन हुवा हो, उतने दिनका सूतक मानना चाहिये। विशेष यह है कि यदि तीन माहसे कमका हो तो तीन दिनका सुतक मानना चाहिये। ३. प्रसुती स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है, उसके परिवार-वालोंको नहीं, इसके पश्चात् वह स्नान दर्शन करके पवित्र होवे। कहीं २ चालीस दिनका भी माना जाता है। ४. प्रसूतिस्थान एक माह तक अशुद्ध है समस्त घर नहीं। ५. रजस्वला स्त्री पांचवें दिन शुद्ध होती है। ६. व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सुतक रहता है, कभी भी शुद्ध नहीं होती ॥ ७. मृत्युका सूतक १२ दिनका माना जाता है। तीन पीढ़ी तक १२ दिन, चौथी पीढ़ीमें ६ दिन, छठी पीढ़ीमें ४ दिन, सातवीं पीढ़ीमें ३ दिन, आठवीं पीढ़ीमें एक दिन रात, नवमीं पीढ़ीमें दो पहर, और दशवीं

पीढ़ीमें स्नान मात्रसे शुद्धता कही है। ८. जन्म तथा मृत्युका सूतक कुटुम्बी मनुष्योंको जो न्यारे रहते हैं ५ दिनका होता है। १०. आठ वर्ष तकके बालककी मृत्युका ५ दिनका और तीन दिनके बालकका सूतक १ दिनका जानो। ११. अपने कुलका कोई गृह त्यागी हो, उसका सन्यासमरण अथवा किसी कुटुंबीका संग्राममें मरण हो जाय, तो १ दिनका सूतक होता है। यदि अपने कुलका देशांतरमें मरण करे और १२ दिन पूरे होनेके पहले माल्हम हो तो शेष दिनोंका सूतक मानना चाहिये। यदि दिन पूरे हो गये होवें, तो स्नान मात्र सूतक जानो। १२. घोड़ी, भैंस, गौ आदि पशु तथा दासी अपने गृहमें जने अथवा आंगनमें जने तो १ दिनका सूतक होता है। गृह बाहर जने तो सूतक नहीं होता। १३. दासी दास तथा पुत्रीके अपने घरमें प्रसुति होय या मरे, तो ३ दिनका सूतक होता है। यदि गृह बाहर हो तो सूतक नहीं। यहांपर मृत्युकी मुख्यतासे ३ दिनका कहा है। प्रसूताका १ ही दिनका जानो। १४. अपनेको अग्निमें जलाकर (सती हो कर) मरे तिसका छह माहका तथा और २ हत्याओंका यथायोग्य पाप जानना। १५. जने पीछे भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक और बकरीका दूध आठ दिन तक अशुद्ध है। पश्चात् खानेयोग्य है। प्रगट रहे कि कहीं देशभेदसे सूतकविधानमें भी भेद होता है इसलिये देशपद्धति तथा शास्त्रपद्धतिका मिलानकर पालन करना चाहिये। (श्रावकधर्मसंग्रहसे उद्धृत)।

---

[११] विनती संग्रह।

गुरुविनती।

वन्दौं दिगम्बरगुरुचरन, जग तरन तारन जान। जे भरम भारी रोगको, हैं राजवैद्य महान॥ जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटैं कर्म जंजीर। ते साधु मेरे उर वसौं, मेरी हरौ पातक पीर॥ १॥ यह तन अपावन अशुचि है, संसार सकल असार। ये भोग विषपकवानसे इस भांति सोच विचार॥ तप विरचि श्रीमुनि वन वसे, सब त्याग परिग्रहभीर। ते साधु मेरे उर वसौ मेरी हरौ पातक पीर॥ २॥ जे काच कंचन सम गिनैं, अरि मित्र एकस्वरूप निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप। सुख दुःख जीवन मरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर। ते साधु मेरे उर वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥ ३॥ जे वाह्य परवत वन वसैं, गिरि गुहा महल मनोग। सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरण दीपकजोग॥ मृग मित्र भोजन तप मई, विज्ञान निरमल नीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥४॥ सूख सरोवर जल भरे, सूखैं तरंगनि तोय। वाट वटोही ना चलैं, जहं घाम गरमी होय। तिस काल मुनिवर तप तपैं, गिरिशिखर ठाड़े धीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥५॥ घनघोर गरजैं घनघटा, जल पड़ै पावसकाल। चहुंओर चमकै वीजुरी, अति चलै शीतल व्याल (र)। तरुहेट तिष्ठैं तब जती, एकांत अचल शरीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥६॥ जब शीतमास तुषारसौं, दाहै सकल वनराय।

जब भ्रमै पानी पे खरां थरहरे सबकी काय। तब नगन निवसें चौहटें अथवा नदीके तीर। ते साधु मेरे मन बसो मेरी हरो पातक पीर ॥७। कर जोर भूधर' बीनवै कब मिलें वे मुनिराज। यह आस मनकी कब फलै, अरु सरें सगरे काज। संसार विषम विदेशमें जे विनाकारण वीर। ते साधु मेरे मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥ ८ ॥

(२)

त्रिभुवनगुरु स्वामी जी, करुनानिधि नामी जी। सुनि अंतरजामी मेरी वीनती जी॥ १ ॥ मैं दास तुम्हारा जी, दुखिया अति भाराजी। दुख मेटनहारा, तुम जादौंपती जी ॥२॥ भर्यो संसारा जी, चिर विपति-भण्डारा जी कहिं सारा न सार चहूंगति डोलिया जी ॥३॥ दुख मेरु समाना जी, सुख सरसा दाना जी, अब जान धर ज्ञान, तराजू तोलिया जी ॥४॥ थावर तन पाया जी, त्रसनाम धराया जी॥ कृमि कुन्थु कहाया, मरि भंवरा भया जी ॥५॥ पशुकाया सारी जी, नाना विधि धारी जी जलचारी थलचारी, उड़न पखेरुवा जी ॥६॥ नरकनकेमांही जी, दुखघोर जहां है जी। पुनि घोर जहां है, सरिता खारकी जी ॥७॥ जहां असुर संघारें जी, निज वैर विचारें जी। मिल बांधें अरु मारें, निर्दयी नारकी जी ॥८॥ मानुष अवतारे जी, रह्यो गर्भमंझारे जी रटि रोयो जहां जनमत, वारे मैं घनों जी ॥९॥ जोवन तन रोगी जी, भयो विरहवियोगी जी। फिर भोगी बहु वृद्धापनकी वेदना जी ॥१०॥ सुरपदवी पाईजी, रम्भा उर लाई जी। तहां देखि पराई, संपति झूरियो जी ॥११॥ माला मुरझानी जी, जब आरति

ठानी जी । थिति पूरन जानी, मरन विसूरियौ जी ॥ ११ ॥ यौं दुख भवकेरा जी, भुगतो बहुतेरा जी। प्रभु! मेरा कुछ कहत, पार न पाइये जी ॥१३॥ मिथ्यामदमाताजी, चाही नित साता जी । सुखदाता जगत्राता, तुम जानें नहीं जी ॥ १४ ॥ प्रभु भागनि पायें जी, गुन श्रवण सुहांये जी, तट आयौ सेवककी विपदा हरौ जी ॥१५॥ भववास वसेरा जी, कब होय निवेराजी । सुख पावै जन तेरा, स्वामी ! सो करौ जी ॥ ६॥ तुम शरनसहाई जी, तुम सज्जन भाई जी । तुम भाई तुम बाप, दया मुझ लीजिये जी ॥ १७ ॥ 'भूधर' कर जोरै जी, ठाड़ो प्रभु ओरै जी । निजदास निहारौं, निरभय कीजिये जी ॥१८॥

(३)

ढाल–परमार्थी ।

अहो ! जगत गुरु देव, सुनिये अरज हमारी । तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥ इस भव वनमें वादि, काल अनादि गमायौ । भ्रमत चहूंगतिमाहिं, सुख नहिं दुख बहु पायौ ॥२॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी । मनमाने दुख देहिं, काहूसौं न डरैं जी ॥३॥ कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावैं । सुर नर पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावैं ॥४॥ प्रभु! इनके परसंग, भव भवमाहिं बुरोजी । जे दुख देखे देव !, तुमसौं नाहिं दुरे जी । एक जन्मकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी । तुम अनन्त पर्जाय, जानत अंतरजामी ॥६॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे । कियौ बहुत बेहाल, सुनियौ साहिब मेरे ॥७॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारचो । इनही तुम

मुझमांहि, हे जिन! अंतर पारयो ॥८॥ पाप पुन्यकी दोय, पायँनि बेरी डारी। तनकारागृहमाहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥ ९ ॥ इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी। विनकारन जगवंद्य!, बहुविधि वैर लियो जी ॥१०॥ अब आयो तुम पास, सुन कर सुजस तिहारो। नीति निपुन जगराय! कीजे न्याव हमारो ॥ ११ ॥ दुष्टन देहु निकास, साधुनकों रखि लीजे। विनवै 'भूधरदास,' हे प्रभु ढील न कीजे ॥ १२ ॥

(४)

दोहा (राग—भरथरी)।

ते गुरु मेरे उर वसौ, जे भव-जलधि-जिहाज। आप तिरैं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज ॥ ते गुरु० ॥१॥ रोगउरग-बिल वपु गिण्यौं, भोग भुजंग समान। कदलीतरु संसार है, त्यागौ सब यह जान ॥ ते गुरु० ॥ २ ॥ रतनत्रय निधि उर धरैं, अरु निर्ग्रंथ त्रिकाल। मारयो काम खवीसको, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ ४ ॥ पंच महाव्रत आदरैं, पांचों सुमति-समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजरअमर पदहेत ॥ ते गु० ॥५॥ धर्म धरैं दशलक्षणी, भावैं भावना सार। सहैं परिसह बीस द्व, चारित-रतन भंडार ॥ ते गु० ॥६॥ जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर। शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझै नगन शरीर ॥ ते गु० ॥७॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार। तरुतल निवसैं साहसी, बाजै झंझावार ॥ ते गु० ॥ ८ ॥ शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय। ताल तरंगनिके तटै, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ते गु० ॥९॥ इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमँझार।

लागे सहज सरूपमें, तनसौं ममत निवार ॥ ते गु० ॥१०॥ पूरब भोग न चिंतवैं, आगम वांछा नाहिं। चहुंगतिके दुखसौं डरैं, सुरत लगी शिवमाहिं ॥ ते गु० ॥ ११ ॥ रंगमहलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवैं संवरि काय ॥ ते गु० ॥१२॥ गज चढ़ि चलते गरवसौं, सेना सजि चतुरंग। निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ॥ ते गु० ॥१३॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे तेह ॥ ते गु० ॥१४॥

(२)

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयौ शरनजी। यौ विरद आप निहार स्वामी, मैंट जामन मरनजी ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो। तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतौ फिरयो ॥ धन घड़ी यो धन दिवस यौ ही, धन जनम मेरो भयो। अब भाग मेरो उदय आयौ दरश प्रभुको लख लयो ॥ २ ॥ छवि वीतरागी नगनमुद्रा दृष्टि नासापै धरैं। वसु प्रातिहार्य अनन्तगुणयुत, कोटिरविछविकौं हरैं ॥ मिट गयौ तिमिर मिथ्यात मेरौ, उदय रवि आतम भयौ। मो उर हरख ऐसो भयौ, मनु रंक चिंतामणि लयौ ॥३॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तव चरणजी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी ॥ जांचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथजी। 'बुध' जांचहूं तुव भक्ति भव भव दीजिये शिवनाथजी ॥४॥

(६)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुम्हारा बाना है। मत मेरी वार अबार करौ, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥टेक॥ ॥१॥ त्रैकालिक वस्तु प्रतच्छ लखो, तुमसों कछु बात न छाना है। मेरे उर आरत जो वर्ते, निहचै सब तुम जाना है॥ अवलोकि विथा मत मौन गहो, नहीं मेरा कहीं ठिकाणा है। हो राजिवलोचन, सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥ श्री० ॥२॥ सब ग्रन्थनिमें निर्ग्रंथनने, निरधार वही गणधार कही। जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायकज्ञानमही॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुम्हारी सरन गही। क्यों मेरी बार विलंब करो, जिन नाथ कहो यह बात सही ॥ श्री० ॥ ३ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्ग विमाना है। काहूको नाग नरेशपती, काहूको ऋद्धिनिधाना है। अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इन्साफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है श्री० ॥४॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है। तुम हो, समरत्थ, न न्याव करो, तब बंदेका क्या चारा है॥ खलघालक पालक बालकका, नृप नीति यही जग सारा है। तुम नीतिनिपुण त्रैलोकपती, तुम ही लग दौर हमारा है। श्री० । ५ ॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है। तुमरे ही शासनका स्वामी!, हमको शरना सरधाना है॥ जिनको तुमरी शरनागत-है, तिनसों जमराज डरना है। यह सुजस तुम्हारे साचेका, जस गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥६॥ जिसने तुमसे

दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुःख हाना है। अथ छोटा मोटा नाश तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है। पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है। भोजन था जिसके पास नहीं सो किया, कुवेर समाना है ॥ श्री० ॥७॥ चिंतामणि पारस कल्पतरू सुखदायक ये परधाना है। तुव दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है ॥ तुव भक्तनको सुरइंद्रपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है। क्या बात कहों विस्तार बड़ो; वे पाव मुक्ति ठिकाना है ॥ श्री ॥ ८ ॥ गति चार चौरासी लाखविषैं चिन्मूरति मेरा भटका है। हो दीन बंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है ॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है ॥ तुम विघन हमारा दूर करो, प्रभु मोकों आश तुमारा है ॥ श्री० ॥ ९ ॥ गज ग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है। ज्यों सागर गोपदरूप किया मैनाका संकट टारा है ॥ ज्यों सुलीतैं सिंहासन औ बेड़ीको काट विड़ारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकों आश तुमारा है ॥ श्री० ॥ १० ॥ ज्यों फाटत टेकत पांय खुला, औ सांप सुमन करि डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया, बालकका जहर उतारा है ॥ ज्यों सेठ विपत चकचूरि पूर, घर लछमी सुख विस्तारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकों आश तुमारा है ॥११॥ जदपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है। चिनमूरत आप अनंत गुनी, नित शुद्ध दशा शिवथाना है। तदपि भक्तनकी भीति हरो, सुख देत तिन्हें जू सुहाना है। यह शक्ति अचिंत

तुम्हारीका, क्या पांवे पार सयाना है ।श्री०॥१३॥ दुखखण्डन श्रीमुखमण्डनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है। वरदान दया जसकीरतिका तिहुंलोक धुजा फहराना है ॥ कमलाधरनी ! कमलाकरनी ! करिये कमला अमलाना है। अब मेरी विथा अविलोक रमापति, रंच न वार लगाना है॥ श्री० ॥१३॥ हो दीनानाथ अनाथहितू, जिन दीन अनाथ पुकारी है। उदयागत कर्म विपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है। ज्यों आप और भवि जीवनकी तत्काल विथा निरवारी है। त्यों " वृन्दावन " यह अर्ज करे, प्रभु आज हमारी वारी है ॥ श्री० ॥१४॥

(७)

शेर ।

हो दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी। यह मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी ॥ टेक ॥ मालिक हो दो जहानके जिनराज आपही। ऐबो हुनर हमारा तुमसे छिपा नहीं ॥ बेजानमें गुनाह मुझसे बन गया सही। ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं ॥ हो दीनबंधु० ॥ दुखदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही। मुश्किल कहर बहरसे लई है भुजा गही ॥ जस वेद औ पुरानमें प्रमान है यही। आनंदकन्द श्रीजिनंद देव है तुही ॥ हो दीनबंधु० ॥ हाथीपै चढ़ी जाती थी सुलोचना सती। गंगामें ग्राहने गही गजराजकी गती ॥ उस वक्तमें पुकार किया था तुम्हें सती। भय टारके उबार लिया हे कृपापती ॥ हो दीनबंधु० ॥ पावक प्रचंड कुन्डमें उमंड जब रहा। सीतासे शपथ लेनेको तब रामने कहा ॥ तुम ध्यानधार जानकी पग धारती तहां। तत्काल

ही सर स्वच्छ हुआ कमल लहलहा ॥ हो दी० ॥ जब चीर द्रौपदीका दुशासनने था गहा। सब ही सभाके लोग कहते थे अहा हहा। उस वक्त भीर पीरमें तुमने करी सहा। परदा ढका सतीका सुजस जक्तमें रहा ॥ हो दी० ॥ श्रीपालको सागरविषै जब सेठ गिराया। उनकी रमासे रमनेको आया वो बेहया ॥ उस वक्तके संकटमें सती तुमको जो ध्याया। दुखदंद फंद मेटके आनंद बढ़ाया ॥ हो दीनबंधु० ॥ हरिषेनकी माताको जहां सौत सताया। रथ जैनका तेरा चले पीछे यों बताया ॥ उस वक्तके अनसनमें सती तुमको जो ध्याया। चक्रेश हो सुत उसकेने रथ जैन चलाया ॥ हो० ॥ सम्यक्तशुद्ध शीलवती चंदना सती। जिसके नजीच लगती थी जाहिर रती रती ॥ बेड़ीमें परी थी तुम्हें जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुखद्वंदकी गती। जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगा घरसे निकारा ॥ वन वर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभुभक्त व्यक्त जानिके भय देव निवारा ॥ हो० ॥ सोमासे कहा जो तू सती शील विशाला। तो कुंभतैं निकाल भला नाग जु काला ॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके सती हाथ जु डाला ॥ तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला ॥ हो० ॥ जब राजरोग था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपको पूजा इलाजको ॥ तत्काल ही सुंदर किया श्रीपालराजको। वह राजभोग भोग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया। रानीके कहे भूपने सूलीपै चढ़ाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया। सूलीसे उतार उसको सिंहासनपै बिठाया

॥ हो० ॥१२॥ जब सेठ सुदर्शनजीको वापीमें गिराया। ऊपरसे दुष्ट था उसे वह मारने आया॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपनेमें ध्याया। तत्काल ही जंजालसे तब उसको बचाया ॥हो० ॥१३॥ एक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भी न था सांझ सबेरा॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यानमें घेरा। घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा॥ हो० ॥ १४॥ बलि वादमें मुनिराजसों जब पार न पाया। तब रातको तलवार ले शठ मारने आया। मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया। उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया॥ हो० ॥१५॥ जब रामने हनुमंतको गढ़ लंक पठायां। सीताकी खबर लेनेको सह सैन्य सिधाया। मग बीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया। झट वार मूसलधारसे उपसर्ग बुझाया॥ हो० ॥१६॥ जिननाथहीको माथ निवाता था उदारा। घेरेमें पड़ा था वह कुलिशकरण बिचारा। उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें उचारा। रघुवीरने सब पीर तहां तुरत निवारा॥ हो० ॥१७॥ रणपाल कुँवरके पड़ी थी पांवमें बेरी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सबेरी॥ तत्काल ही सुकुमारकी सब झड़ पड़ी बेरी। तुम रायकुंवरकी सभी दुख-दन्द निवेरी॥ हो० ॥ १८ ॥ जब सेठके नन्दनको डसा नाग जु कारा। उस वक्त तुम्हें पीरमें धरधीर पुकारा॥ ततकाल ही उस बालका विष भूर उतारा। वह जाग उठा सोके मानों सेज सकारा॥ हो० ॥१९॥ मुनि मानतुङ्गको दई जब भूपने पीरा॥ तालेमें किया बन्द भरी लोह जँजीरा॥ मुनि ईशने आदीशकी स्तुति का है गंभीरा। चक्रेश्वरी तब आनके झट दूरकी पीरा॥

हो० ॥ १० ॥ शिवकोटने हट था किया सामंतभद्रसों । शिव-पिंडकी वन्दन करौ शंकौ अभद्रसों ॥ उस वक्त स्वयम्भू रचा गुरु भाव भद्रसों । जिनचन्दकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों ॥ हो० ॥ ११ ॥ सुवेने तुम्हें आनके फल आम चढ़ाया । मेंढक ले चला फूल भरा भक्तिका भाया ॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्गधाम बसाया । हम आपसे दातारको लख आज ही पाया ॥ हो० ॥ १२ ॥ कपि स्वान सिंह नकुल अजा बैल विचारे । तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध चितारे ॥ इत्यादिको सुरधाम दे शिव धाममें धारे । हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ १३ ॥ तुम ही अनन्त जन्तुका भय भीर निवारा । वेदों पुराणमें गुरू गणधरने उचारा ॥ हम आपकी शरणागतीमें आके पुकारा । तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥ हो० ॥ १४ । प्रभु भक्त व्यक्त जक्त भक्त मुक्तके दानी । आनन्द-कन्द वृन्दको हो मुक्तके दानी ॥ मोह दीन जान दीनबन्धु पातक भानी । संसार विषम खार तार अन्तरजामी ॥ हो० । २५ ॥ करुणानिधानवानको अब क्यों न निहारो । दानी अनन्तदानके दाता हो सँभारो ॥ वृषचन्दनन्द वृन्दका उपसर्ग निवारो । संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो । हो दीनबन्धु श्रीपति करुणा-निधानजी । अब मेरी व्यथा क्यों न हरो वार क्या लगी ॥ ६॥

दोहा ।

जासु धर्म परभावसों, संकट कटत अनंत । मंगलमूरति देव सो, जवंतो अरहन्त ॥१॥ हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषें लखि लेत । तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किंह हेत ॥ २ ॥

षट्पद ।

तब विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल । तब विलंब नहिं कियो. मेघवाहन लंकाथल ॥ तब विलंब नहिं कियो शेठ सुत दारिद भंजे । तब विलंब नहिं कियो, नाग जुग सुरपद रंजे ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतिय रमन । प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंबकारन कवन ॥१॥ तब विलंब नहिं कियो, सिया पावक जल कीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रुपदीको बाढ्यौ । तब विलंब नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ्यौ । इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूर शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःख नाशनविषैं अब विलंब कारन कवन ॥ ४ ॥ तब विलंब नहिं कियो सांप किय कुसुम सु माला । तब विलंब नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला । तब विलंब नहिं कियो, शीलबल फाटक खुल्ले । तब विलंब नहिं कियो, अंजना वन मन फुल्ले ॥ चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥ ५ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढ़ीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल । तब विलंब नहिं कियो, सुधन्ना काढ़ि वापि थल ॥ इम चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥ ६ ॥ तब विलंब नहिं कियो, कंस भय त्रिजुग उबारे । तब विलंब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे । तब विलंब नहिं कियो खड्ग मुनिराज बचायो । तब विलंब नहिं कियो,

नीरमातंग उचायो ॥ इमि० ॥ टेक ॥ ७ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सुत निरविष कीन्हौं। तब विलंब नहिं कियो, मानतुंगवंश हरीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, वादिमुनिकोढ़ मिटायो। तब विलंब नहिं कियो कुमुद जिन पास मिटायो ॥ इमि० ॥ टेक। ८ ॥ तब विलंब नहिं कियो, अंजनाचोर उबारे। तब विलंब नहिं कियो, पुररवा भील सुधारे ॥ तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन। तब विलंब नाहिं कियो, भेक दिय सुर अद्भुत तन ॥ इमि० ॥ टेक ॥९॥ इहविधि दुखनिवारन, सारसुख प्रापति कीन्हौं अपनो दास निहारि भक्तवत्सल गुन चीन्हौं ॥ अब विलंब किंहि हेत, कृपा कर इहां लगाई। कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई ॥ जनवृंद सुमनवचतन अबै, गही नाथ तव पद शरन। हो दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन ॥१०॥

(९)

जिनवचनस्तुति।

हो करुणासागर देव तुमी निर्दोष तुमारा वाचा है। तुमरे वांचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है ॥ टेक ॥ १ ॥ बुधि केवल अप्रतिछेदविषैं, सब लोकालोक समाना है। मनु ज्ञेय गरास विकास अटंक, झलाझल जोत जगांना है ॥ सर्वज्ञ तुमी सब व्यापक हो निरदोष दशा अमलाना है। यह लच्छन श्री अरहंत विना, नहिं और कहीं ठहराना है ॥ हो करु० ॥ १ ॥ धर्मादिक पंच वसै जहँ लौं, वह लोकाकाश कहावै है। तिस आगैं केवल एक अनंत, अलोकाकाश रहावै है ॥ अवकाश

अकाशविषैं गति औ, थिति धर्म अधर्म सुभावै है। परिवर्तन लच्छन काल धरै, गुणद्रव्य जिनागम गावै है ॥ हो करु०॥३॥ इक जीव अरु धर्माधर्म, दरव ये मध्य असंख्यप्रदेशी है। आकाश अनंतप्रदेशी है, ब्रह्ममंड अखंड अलेशी है ॥ पुग्गलकी एक प्रमाणू सो यद्यपि वह एकप्रदेशी है। मिलनेकी सकति स्वभावीसौं होता वहु खंध सुलेशी है ॥ हो करु० ॥४॥ कालाणु भिन्न असंख अणू मिलनेकी शक्ति न धारा है॥ तिसतैं कायाकी गिनतीमें, नहिं काल दरवको धारा है॥ हैं स्वयंसिद्ध षट्द्रव्य यही इनहींका सर्व पसारा है। निर्बाध जथारथ लच्छन इनका, जिनशासनमें सारा है ॥ हो करु ॥५॥ सब जीव अनंत प्रमान कहे, गुन लच्छन ज्ञायकवंता है। तिसतैं जड़ पुग्गल मूरतकी, हैं वर्गणरास अनन्ता है॥ तिसतैं सब भावियकाल समयकी, रास अनन्त अनंता है। यह भेद सुभेदविज्ञान विना क्या और-न को दरसंता है॥ हो० ॥ ६ ॥ इक पुग्गलकी अविभाग अणू जितने नभमें थिति कीना जी। तितनेमहँ पुग्गल जीव अनंत बसैं धर्मादि अछीना जी ॥ अवगाहन शक्ति विचित्र यही, नभकी वरनी परवीनाजी। इसही विधिसों सब द्रव्यनिमें गुन शक्ति बसैं अनकीना जी ॥ हो० ॥ ७ ॥ इक कालअणूपरतैं दुतियेपर जाति जवै गत मंदी है। इक पुग्गलकी अविभाग अणू, सो समय कही निरद्वंदी है ॥ इसतैं नहिं सूच्छमकाल कोई, निरअंश समय यह छंदी है। यातैं सब कालप्रमान वँधा, वरनी श्रुति नैति जिनंदी हैं॥ हो० ॥८॥ जब पुग्गलकी अविभाग अणू, अतिशीघ्र उताल चलानी । इक समयमांहि सो

चौदह राजू, जात चली परमानी है। परसै तहँ सर्वपदारथकों, क्रमसौं यह भेद विधानी है॥ नहि अंश समयका होत तहाँ, यह गतिकी शक्ति बखानी हैं॥ हो० ॥ ९ ॥ गुन द्रव्यानके आधार रहैं, गुनमें गुन और न राजै है। न किसी गुणसों गुण और मिलैं, यह और विलच्छन ताजै है। ध्रुव व उतपाद सुभाव लिये, तिरकाल अवाधित छाजै है। षट हानिरु वृद्धि सदीव करै, जिनवैन सुनै भ्रम भाजै है॥ हो० ॥ १० ॥ जिम सागरबीच कलोल उठी सो सागरमांहि समानो है। परजै करि सर्व पदार्थमें तिमि हानिरु वृद्धि उठानी हैं॥ जब शुद्ध दरवनर दृष्टि धरै तब भेदविकल्प नशानी है। नयन्यासनतैं बहु भेद सु तो परमान लियें परमांनी है॥ हो० ॥ ११ ॥ जितने जिनवैनके मारग हैं, तितने नयभेद विभाखा हैं। एकांतकी पच्छ मिथ्यात वही, अनेकांत गहैं सुखसाखा है॥ परमागम है सर्वंग पदारथ, नय इकदेशी भाषा हैं। यह नय परमान जिनागम साधित, सिद्ध करै अभिलाषा है॥ हो० ॥ १२ ॥ चिन्मूरतके परदेशमती, गुन हं सु अनंत अनंताजी। न मिल गुन आपुसमें कबहूं सत्ता निज भिन्न धरंता जी॥ सत्ता चिनमूरतकी सबमें सब काल सदा वरतंता जी। यह वस्तु सुभाव जथारथको, जिय सम्यकवंत लखंता जी॥ हो० ॥ १३ ॥ सविरोध विरोधविवर्जित धर्म, धर सब वस्तु विराजै है। जह भाव तहां सु अभाव वसै इन आदि अनंत सु छाजै है॥ निरपेक्षित सो न सधै कबहूं, सापेक्षा सिद्ध समाजै हैं। यह अनेकांतसों कथन मथन करी, स्यादवाद धुनि गाजै है॥ हो० ॥ १४ ॥ जिस काल कथंचित अस्ति कही, तिस काल कथंचित

नहीं है। उभयातमरूप कथंचित सो, निरवाच कथंचित ताहि है॥ पुनि अस्ति अवाच्य कथंचित त्यों, वह नास्ति अवाच्य कथा ही है। उभयातमरूप अकथ्य कथंचित, एक ही काल सुमाही है॥ हो०॥ १९॥ यह सात सुभंग सुभाव मयी, सब वस्तु अभंग सुसाधा है। परवादिविजय करिवे कहँ श्रीगुरु, स्यादहिवाद अराधा है॥ सर्वज्ञप्रतच्छ परोच्छ यही, इतना इत भेद अवाधा है। 'वृन्दावन' सेवत स्यादहिवाद घटै जिसतैं भववाधा है॥ हो करुणासागर देव तुमी, निर्दोष तुमारा वाचा है। तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है॥ हो०॥ २१॥

---

(१२) समाधिशतक भाषा।

(लाला गुमानीलालजी कृत)

दोहा–श्री आदीश्वर चरणयुग, प्रथम नमों चित ल्याय। प्रगट कियो युग आदि वृष, भजत सुमंगल थाय॥ १॥ सन्मति प्रभुसन्मति करण, बन्दत विघ्न विलात। पुनः पंच परमेष्टिको, नमो त्रिजग विख्यात॥ २॥ गौतम गुरु फिर शारदा, स्याद्वाद जिस चिन्ह। मंगल कारण तासको, नमों कुमति हो भिन्न॥३॥ मंगलहित नमि देव श्री, अरिहंत गुरु निर्ग्रंथ। दयारूप वृष पोत भव, वारिधि शिवपुर पंथ॥ ४॥ इस विधि मंगल करनसे, रहत टदगञ दूर। विघ्न कोटि तत्क्षण टर, तम नाशत ज्यों सूर॥ ५॥ श्री सर्वज्ञ सहाय मम, सुबुद्धि प्रकाशो आनि। तो कवित्त दोहानमें, रचों समाधि वखानि॥ ६॥ मरण समाधि

करे सु जो, सो नर जग गुण खान । इन्द्र चक्रपति हो पुनः अनुक्रम लें निर्वाण ॥ ७ ॥ देख गुमानीरामका, वचन रूप सुप्रबन्ध । लघुमति ता संकोचिके, रचे सु दोहा छंद ॥ ८ ॥ पिंगल व्याकरणादि कुछ, लखो नहीं मति बाल । कंठ राखनेके लिये, रचों बालवत ख्याल ॥ ९ ॥ लघु धी तथा प्रमादसे, शब्द अर्थ लख हीन । बुध जन सोधि उचारियो, हंसो न लख मतिक्षीण ॥ १० मंद कषायोंसे जु हों, शांति रूप परणाम । तब समाधिविधि आदरे, मरण समाधिसु नाम ॥ ११ ॥ सो मैं अब दृष्टान्तयुत, कहों त्रियोग सम्हार। भवि अहिनिशि पढियो सु यह, कर परणाम उदार ॥ १२ ॥ छप्पय छंद । सुता ज्यों गृह सिंहताहि इक पुरुष विचक्षण । जागृत किय ललकार सिंह उठ देख ततक्षण। हतन वृन्द रिपु तोडि निकट आयो यह तेरे ॥ सावधान हो चेत करो पुरुषारथनेरे । जबलों रिपु कुछ दूर हैं, कर सम्हाल जीतो तिन्हें ॥ यह महतपुरुषकी रीति है,ढोल किये आवत कनें ॥१३॥ वचन सुनत यों सिंह गुफासे बाहर आयो । गर्जो घन जिमि सुनो शत्रु हिय थिर न रहायो ॥ जीतनको असमर्थ लाग हस्ती सब कांपे। निर्भय हरि पौरुष सम्हाल नहीं सके जो नापे ॥ त्यों सम्यग्ज्ञानी नर सुधी मरणसमय विधिपेन लख। तिहि जीतनं निजपौरुष जे सकलउपाधिक भावनख ॥ १४ ॥ आवतकाल तटस्थ देख तब साहस ठाने ॥ कर्म संयोग संदेह इती थिति पूरण जाने ॥ ताहीसे मम योग्य कार्य अब ढोल न कीजे । जो चूकौ यह दाव घोर संसार पड़ीजे॥ अतिकठिन काकतालीय ज्यों मनुजजन्म शुभवश लहा। सो वृथा गमाया धर्मबिन दौड़दौड़ चहुंगतिवहा ॥१५॥ कर कषाय

अति मन्द क्षमादिक दशवृष ध्यावे । अन्तर आतम मांहि शुद्ध उपयोग रमावे ॥ करे राग रुष मोह शिथिल अति ही सो ज्ञानी । निरालम्ब चिद्रूप ध्यान धर बहु गुण खानी । तब रत्न त्रय स्वाद आवे घनो अतुल निज पांचों दरब । इम निश्चयदृष्टि विलोकता लहै सुक्ख जो अकथ अब ॥१६॥ आनंद रत नित रहै ज्ञान मय ज्योति उभारी । पुरुषाकार अमूर्ति चेतना बहु गुण धारी ॥ ऐसा आतम-देव आप मानन रुचि धारो । पर द्रव्योंसे किसी भांति ना होवे रागी ॥ निज वीतराग ज्ञाता सुथिर अविनाशी परजड़ लखा । वपु पुद्गल गलन अपास्वता इम लख तिन निजरस चखा ॥१७॥ समदृष्टी नर सदा मरणका भय ना माने । आयु अंत जब लखे स्वहित तब याविधि ठाने ॥ आयु अल्प इम देह तनी अब रही दिखावे । अब करना मम चेत सावधानी यह दावे ॥ जिम रणभेरीके सुनतही सुभट जाय रिपुपर झुके । त्यों कालबलीके जीतने साहस ठाने अब चुके ॥१८॥ सब जिय सोच विचार लखो पुद्गल परजायी । देखत उत्पति भई देखते अब खिर जायी ॥ मैं सरूप इस लखो विनाशिय पहिले याको । सो अब अवसर पाय खिले जासी यह ताको ॥ मम ज्ञायक दृष्टारूप निज ताहि सर्वविधि आदरों । अब किसविधि देह नशे जू यह मैं तमाशगीरी करों ॥ १९ ॥ मम स्वरूप दृग ज्ञान सुक्ख वीरज अनन्त मय । नर नारक पर्याय भेद बहु भये मृषानय ॥ जो पदार्थ त्रैलोकमें सुते तिन ही के कर्त्ता । मैं चित अमल अडोल नहीं तिन कर्त्ता हर्त्ता ॥ वे आपहिं बिछुडे मिलें पूरे गलें अचित सदा । तो देह रखाया क्यों रहे मूल मर्म न पड़ों कदा ॥ २० ॥ सवैया ॥२१॥ काल अनादि परो दुःख मैं

पर द्रव्योंसे एकहि जानो। कालबली दृढगढ़ ग्रसौ कहि जन्म जरामरण फिर ठानो॥ खेद कहो वश मोहतने सु विचार सजे अब मूल दिखानो। मैं निज ज्ञायक भावनको कर्त्ता अरु मुक्त सदा थिर जानो॥२१॥ मो सतसंगसे देहपुजे जग मो निकसे तनको सब जारें। मानत देह रु जीव एकत्र नशे यह तो शठ रोय पुकारें॥ हाय पिता त्रिय पुत्र कलत्र सुमात हितू कहां जाय पधारें। और अनेक विलाप करें अति खेद कलेश वियोग पसारें॥२२॥ एम विचार करें सु विचक्षण अक्षण देख चलो जग जाई। कौन पिता त्रिय पुत्र हितू सो कलत्र यहां किन कौनकी माई॥ को गृह माल कहा धन भूषण जात चली किनकी ठकुराई। ये सब वस्तु विनस्वर ज्यों स्वप्नेमें राज्य करे नर भाई॥२३॥ देखत इष्ट लगे यह वस्तु विचारत ही कुछ नाहिं दिखावे। सो इम जान ममत्व सुभान त्रिलोकमें पुद्गल जो दृढ़ आवे॥ देह स्नेह तजो तिस ही विधि रञ्चक खेद न मो चित्त पावे॥ जा डर हो यह देह प्रतक्ष विगार सुधार न मोह लखावे॥१४॥ देखहु मोहतनी महिमा पर द्रव्य प्रत्यक्ष विनाशिक ढेरी। है दुख मूल उभय भवमें जगजीव सबै इसमाहिं फंसेरी॥ मूरख प्रीतिकरे अतिही अपना तन जान रखावन हेरी। मैं इकज्ञायक भाव धरें सो लखों इस काल शरीरको वेरी॥२५॥ दोहा। माखी बैठे खांड पर, अग्नि देख भगजाय। काल देहको त्यों भखे, मो लख थिर न रहाय॥२६॥ मरण योग्य पहिले मुआ, जीया मृतक न होय। मरण दिखावत नांहि मम, भर्म गया सब खोय॥२७॥ सवैया. २३। चेतनके मरणादिक व्याधि लखी न त्रिलोक त्रिकाल मंझारे। तो अब सोच करो किस काज

अनंत दृगादिक भावको धारे ॥ ता अवलोकत दुःख नशे ममज्ञान पियूषसु पूरितसारे। ज्ञायक ज्ञेयनको यह जीव पै ज्ञेयसे भिन्न अनाकुल न्यारे ॥ १८ ॥ व्यापक चेतन ठौहरीठौर यथा इकलौन डलीरस पागी। त्यों मैं ज्ञानका पिंडहूं पै व्यवहारसे देहप्रमाणसो लागी। निश्चय लोक प्रमाणाकार अनंत सुखामृतसे अनुरागी। मूसमही गल मोमगयो नभ युक्त तदाकृति देखहु सागी ॥ १९ ॥ दोहा। मैं अकलंक अवंक थिर, मिलत न काहू मांहि। नशो देह भावे रहो, हमें न किहि विधि चाहि ॥२०॥ छप्पय छन्द। कहै एक नर सोच देह तुम्हरी तो नाहीं। पर याके संग ध्यान शुद्ध उपयोग कहाहीं। एता वपु उपकार कहो सुन थिर चित भाई ॥ रत्न द्वीप नर आय एक झोंपड़ी बनाई। बहुरत्न एकठाकरे अग्नि-लगी बुझावे तव सुवर। जव बुझत न जाने झोंपडी रत्न लेय भागे सुनर ॥२१॥ दोहा। त्यों मम संयम गुण सहित,रहो देह ना वैर। नशत उभय तो जानिये, संयम राखो घेर ॥ २२ ॥ संयम रहता देह बहु, क्षेत्र विदेहा जाय। तप कर चक्री इंद्र हो, अनुक्रम शिव थल पाय ॥२३॥ मोह गयो आकुल गई, ध्यान डिगावे कौन। इन्द्र चक्र धरेन्द्रसुर, विष्णु महेश्वर जौन ॥ २४ ॥ सवैया–देह स्नेह करी किस कारण यह वपु ज्यों चपला चमकाई। नाहिं उपाय रखावनको कहु, औषधि मंत्र रु तंत्र बनाई। जो थितिपूरण होई तवे सुर इन्द्र नरन्द्र हरा मृत्यु थाई। दाव बनो हितसाधनको बहुलोग चिगावहि मैं न चिगाई ॥ २५ ॥

(कुटुम्बादि ममत्व त्याग)

छप्पय छन्द। भव कुटुम्बके लोग सुनो हित सीख

हमारी। एताही सम्बन्ध देह तुम्हरो अबधारी। तुम राखत ना रहै सोच अपना कर भाई। यह गति सबकी होई चेत देखो पितु भाई। मो करुणा आवत तुम तनी खेद धार क्यों दुःखभजो। वृषधार योग नित सुथिर हो ममत्वनसो अबतजो ॥१६॥ सवैया—जो दृढ़ व्याधि ग्रसे तन अन्त सु वेदना दुर्जय आवत तेरी। कारण तास तने परणाम चिगे लख साहससे बुद्धि फेरी। पूरव संचित कर्म उदय फल आय लगो गद ने वपु घेरी। भिन्न सदा मम रूप निराकुल है शरणा निज आतमकेरी ॥१७॥ छप्पय छन्द। शरण पंच परमेष्टि बाह्य जिन वृष जिनवाणी। रत्नत्रय दशधर्म शरण सुनहो चिद ज्ञानी। और शरण कोई नाहिं नेम हमने यह धारो। इस विधिसे उपयोग थाम कर एम विचारो। अरिहन्त देवगुरुद्रव्य गुण, पर्यायन निर्णय करै। तब निज सुरूपमें आयकर साहससे दृढ़थिति धरैं ॥१८॥ सवैया २३। वपु मातपिता तुम एम सुनो ममदेह स्नेह वृथा तुम धारो। को तुम को मैं हाटतनी गति प्रात पयानकरें जन सारो। रीति भरें घटरहँट तनी तुम अन्तरके दृगखोल विचारो। आपतनो दृढ़ सोच करो तुम आतम द्रव्य अनाकुल न्यारो ॥१९॥ छप्पय छन्द। यह सब भक्षी काल कालसे बचे न कोई। देव इन्द्र थिति पूर्णदेख मुख रहे जु सोई॥ यम किंकर ले जांय आपनी कथा कौन है। तन धारे सो मरे वृथा कर खेद जो न है॥ यह आजकाल मुवा मनुज सुन मति जिनवृष आदरो यह निरोपाय जगरीति है जिनवृषभज साहस धरो ॥

(स्त्री ममत्व त्याग।)

सवैया २३। हे त्रिय देहतनी सुनसीख स्नेह तजो वपुसे

अब प्यारी । देहरुतो सम्बंध इतो अब पूर्ण हुओ नहीं खेद पसारी। कार्यसरे नहीं या तनसे तुम राखहु नाहिं रहै तन नारी। पुद्गलकी पर्याय त्रिया नर सोच लखो दृग खोक निहारी ॥४१॥ छप्पय छंद । भोग बुरे भव रोग बढ़ावत वैरीजीके । होवे विरस विपाक समय क्यों सेवत नीके ॥ एकेंद्री वश होई विपति अतिसे दुख पायो । कुंजर झलअलि सलभ हिरण इन प्राण गमायो ॥ पंच करन वश होई जो कुगति घोर दुःखपावहि । इन त्याग त्रिया संतोष भज, जो मम नार कहावही ॥ ४२ ॥ भोग किये चिरकाल घने त्रियकार्य सरो न कछू सुख पायो । इष्ट वियोग अनिष्ठ संयोग निरन्तर आकुलताप तपायो ॥ दुर्लभ जन्म सु वीत गयो अब कालके गालहिमें वपु आयो । हो त्रिय राखन कौन समर्थ वृथा कर खेद सो जन्म नशायो ॥४३॥ छप्पय छंद । जो प्यारी मम नारि सीख हित चित्त धरीजो । शीलरत्न दृढ़ राख तत्व श्रद्धान सु कीजो ॥ धर्म विना भव भ्रमे काल बहु हम तुम सबही। गति चारों दुःखरूप धरीं वृष गह्यो न कबही । अब मम सुख वांछे नार तू, वृष दृढ़ाव तज आसतें । तुम भावनको फलभोग ही, शीघ्र जाहु मो पासतें ॥४४॥ दोहा । नारि बुलाय सम्बोधि इम सीख दई हितसाज। अब निज पुत्र बुलाइयो, ममत्व निवारण काज ॥ ४५ ॥

पुत्रादि ममत्व त्याग ।

छप्पय छंद । पुत्र विचक्षण सुनो आयु पुरण अब म्हारी । तुम ममत्व बुद्धि तजो खेद दुखको करतारी । श्री जिनवर कर धर्म भलीविधि पालन कीजो । पूजा जप तप दान शीलसम्यक्त्व

गहीजो । फिर लोक निंद्य कारज तजो, साधर्मिनसे हित करो । तुमयुग भव सुख हो है सु सुत, सीख हमारी उर धरो ॥४६॥ सवैया २३ । देह अपावन वस्तु जगत्रयकी या संगसे मैली । कर्म गढ़ी घंन अस्थि जड़ी चर्म मढ़ी मल मूत्रकी थैली ! नव मल द्वार स्रवें वसु जाम कुभाव घिनावनकी वपु गेली । पोषत हो दुःखदोष धरे सुत सोखत याहि मिले शिव सेली ॥४७॥ दोहा । जो तुम राखें देह यह, रहै तो राखे धोर । मैं बरजो ना तोहि सुत, करो सोच निज वीर ॥४८॥ सुन अनुक्रमसे गति सबनि, यहीं होयगी मीत । जिन वृष नवका बैठके, भव जल तर तज भीति ॥ ४७ ॥ दया बुद्धिसे सीख मैं देई तोहि लख पीर । होनहार तुम होइजो, रुचे सो कीजो धीर ॥ ५० ॥ यों कह सब परिवार त्रिय, सुत मित्रादिक भूर । मरण विगाड़न लख तिन्हें किये पाससे दूर ॥ ५१ ॥ जो भ्राता सुत आदि गृह-भार चलावन योग । सोंप ताहि हित सीख दे, तजै जगतका रोग ॥ ५२ ॥ और मनुष्योंसे कछू, बतलानेको होई । ते बुलाय बतलाय कुछ, सल्य न रखे कोई ॥ ५३ ॥ दया दान अरु पुण्यको, जो कुछ मनमें होई । सो अपने कर से करे, करे विलंब न कोई ॥ ५४ ॥ साधर्मी पंडित निकट, राखे इम बतलाय । मो परणाम लखो चिगे, तुम दृढ़ कीजो भाय ॥५५॥ छप्पय छंद । अब समदृष्टी पुरुष काल निज निकट सुजाने । तब सम्हाल पुरुषार्थ सल्य तज साहस ठाने ॥ शक्ति सार धर नेम एम मर्यादा कीजे । कर परिग्रह परिणाम रूप निज अनुभव कीजे । यह संशय मन होई जो, पुरण आयु न हो कदा । तो निज शक्ति प्रमाण

यह जीव भ्रमें भवयोग चलाचलसे उपजेंगे । दुःख लहों चिरकाल घनोरचि जो बुधिवन्त तिन्हें सु तजेंगे ! पुण्य रु पाप दुहू तजके निज आतमकी अनुभूति सजेंगे । आवत कर्मनको वरजें तब संवर भाव सुधी सु भजेंगे ! ॥६३॥ कर्म झड़े निजकालहि पायन कार्य सरे तिनसे जिय केरो । जो तपसे विधि हानि करैं कर निर्जरासे शिवमांहि बसेरो । जो षट्द्रव्य मई यह लोक अनादिको है न करो किहि केरो । एक जिया भ्रम तो चिरको दुःख भोगत नांहि तजे भव फेरो ॥६४॥ अंतिम ग्रीवक हद्द लहो पद सम्यक्ज्ञान नहीं कहुं पायो । आतमबोध लह्यो न कभी अति दुर्लभ जो जगमें मुनि गायो । मोहसे भाव जुदे लखके दृगज्ञान व्रतादिक भाव बतायो । धर्म वही कहिए परमारथ या विधि द्वादश भावना भायो ॥६५॥ दारुण वेदना आयुके अंतमें देहस्वरूप अनित्य विचारो । दुःख रु सुक्ख तो कर्मनकी गति देह बधो विधिके संग सारो । निश्चयसे ममरूप दृगादिक देह रु कर्मनसे नित न्यारो । तो मुझे दुःख कहा वपुके संग पूरव कर्म विपाक चितारो ॥६६॥ देहनशी बहुवार जो अग्र इसी विधि अन्त सुकष्ट लहायो । पै न लखो निज आतमरूप नहीं कहुं जन्म समाधिहिं पायो । या भवमें सब योग बनो निज कार्य सुधारनको मुनि गायो । कर्म अरी हरि मोक्ष-त्रिया वर पूरण सुक्ख लहो सु सवायो ॥६७॥ काल अनादि भ्रमें जिय एकहि पंच परावर्तन कर फेरी । द्रव्य रु क्षेत्र सुकाल तथा भवभाव कथा तिनकी बहुतेरी । वार अनंत किये तहां पूरण अन्त लहो भवका न कदेरी । को वरने दुःखकी जु कथा गुण राज थके बुधि अल्पजू मेरी ॥६८॥ नित्य निगोद सुमौन जिया

तज जो कहुं राशि व्यवहारमें आयो । भाग्य उदय त्रसकाय धरी विकत्रयमें रुल खेद कहायो । वा पंचेन्द्रिय होई पशु सबलान हतो निबला हत खायो । भूख तृषा हिमताप तपो अतिभार वहो दृढ़ बन्धन पायो ॥ ६९ ॥ देह तजी अति संकट भावनसे तब दुभ्रतनी गति धायो । भूमि तहां दु खरूर इसी मनुकोटिन बिच्छु-नने डस खायो । देह तहां कृमिरोगन पूरित कंटक सेजनसे जु घिसायो । घातकरे दल सेंमलके निज बैर भजो असुरान भिड़ायो ॥ ७० ॥ मेरु प्रमाण गले तहां लोह हिमा तप याविधिको मुनि गायो । नाज भखें सब लोक तनो न मिटे गद एक कणा न लहायो । सागर नीर पिये न बुझे तृषा जल बूंद न दृष्टि लखायो । को वरणे थिति सागरकी कहुं भाग्यउदय नरकी गति आयो । वास कियो नव मास अधोमुख मात जने दुःखसे जु घनेरो । बालपने गददन्त पलादिक ज्ञान बिना न भने वचनेरो । यौवन भामिन संग रचे जु कषाय जली गृह भार बडेरो । पुत्र उछाह सु हर्ष बड़ो सु वियोगसे आकुल ताप तपेरो ॥ ७१ ॥ द्रव्य उपार्जन कष्ट सहे अब यों करनो यह तो हम कीनो । संतत जोग न तो दुःख भोग कुपुत्र कुनार तने दुःख भीनो । पीड़ित रोग दरिद्र फंसे अति आकुलसे कर बंध नवीनो । आरति ठान भली सिख मान सो मूढ़ कभी सत्संग न कीनो ॥७२॥ वृद्ध भयो तृष्णा जु दहो सुख कार बहे तन हालत सारो । वस्त्र सम्हाल नहीं तनकी वृषकी जु कथा तहां कौन उचारो । काल अचानक कंठ दबे तब खाय विना वृष यों तन प्यारो । चेतन कूच कियो तनसे सुकुटुम्बके इन्धनसे वपु जारो ॥ निर्जरा कीन अकाम कभी कहि स्वर्ग तनी गति दुःख

भुमानो । हो विषया रस मत्त तहां अति आतुर भोग न चाह दहानो । देख विभव पर झूर डसो जम माल लखी चयते विललानो आरतिसे मर कर्म ठगो जिय फेर भवार्णवमें भरमानो ॥७५॥ यों जु भ्रमो चिरकाल जिया बिन सम्यक सुक्ख समाज न पायो ॥ जन्म जरा मरणादिक रोग कलेश तनो कहुं अंत न आयो । आप स्वरूप विसार रचे पर दुःख चितारत फाटत कायो । तो अब यों दुःख नाहिं कछू लख सम्यककी दृढ़ चेतनरायो ॥७६॥ दोहा । इम चिंतन कर वेदना, सर्व निवारे सुर । फिर निर्भय नरसिंहवत कहा करै हितपूर ॥७७॥ छप्पयछंद । शक्ति वचनकी रहै जैन-श्रुत मुखसे गावे । या बिन वचन न कहै नेम धर ममत नशावे ॥ निकट आयु लख पहर चार द्वै इक दिनकेरी । चउ विधि तन आहार परिग्रह द्वै विधिटेरी। पुन शक्ति देख तज जीव बहु जुदी जुदी शक्तिः धरें । इम नेम जाव जिय त्यागहित, न साधनमें अंत परे ॥७८॥ अंत सल्लेखना मांड़ आराधन चउ विधि ध्यावे । क्षण २ करे सम्हाल भाव कहूं डिगन न पावे ॥ कर दृढ़ तत्व प्रतीति धार सम्यक निरखेदे । वेदन तीक्ष्ण निपट ताहि अन्तर नहीं वेदे ॥ जब बचन बंद होता लखे, तब सुवचनसे यों कहव । तुम जिनवानी पढ़ियो जु बहु, ग्रसत काल यह देह अब ॥७९॥ दोहा । परमेष्ठी पांचोनको, रूप सु उर में धार । नमस्कार हित युत करे, फिर फिर कर शिरधार ॥ ८० ॥ जैनधर्म जिन विंब अरु, जिन वाणी जिनधाम । शुद्ध भावसे देव नव, तिनको करे प्रणाम ॥ ८१ ॥ कृत्याकृत्यम जिन भवन, सिद्धक्षेत्र भवतार । तिनको वंदो भावसे, युगल पान शिरधार ॥ ८२ ॥ उत्तम क्षमा समस्तसे, कर हित·

मित बतलाय । आप क्षमा करवायके, वैर न राखे भाय ॥ ८३ ॥ मौन लहै तब धीर सो, अन्तरके दृग खोल । तजे राग रुष मोह सब, कर परणाम अडोल ॥ ८४ ॥ जबलौं शिथिल न होई तन, इंद्रिय बल मन दौर । तबलौं अनुभव कीजिये, प्रभु आतम गुण और ॥ ८५ ॥ शिथिल पड़ी जब जानिये, इंद्रिय तन मन द्वार । तब नवकार उचारिये, महामंत्र जग सार ॥८६॥ सवैया ॥२३॥ ज्ञानविना नर नारि पशु है योग मिले बड़ भाग संम्हारे । प्राण तजे नवकार उचारत तो गति नीच तनी नहिं धारे। अंजन-चोर करी मृगराज अजासुत आदि जपे नवकारे । स्वर्ग तनो सुख वेग लयो शुभ बीजसे वृक्ष यथा शुभसारे ॥८७॥ दोहा ॥ मरण समय औषधि निपुण, दुःख नाशक सुखमूल । बार बार मंत्रहि जपे, तजे जगति दुःख शूल ॥ ८८ ॥ मैटे वांछा सकल पुन, करे न बन्ध निदान । रत्नछोड़ कांच न ग्रहै, त्यों समाधि फल जान ॥ ८९ ॥ सवैया २३ । जीव प्रदेश खिंचे तनसे दुःखसे नहीं आकुल ताप तपेंगे । जीति परीषह हो सुखरूप निरंतर सो नवकार जपेंगे । आसन्न जो शुचि होइ जिया शुभ ध्यान धरें बहु कर्म छिपेंगे । कंठ लगे कफ आन जवे शुभ मूलसे वे दश प्राण चपेंगे ॥ ९० ॥ दोहा । या विधि अधिक सम्हालसे, तजे देह सुख भौन । शुभगति सन्मुख होइ कर, जीव करें गति गौन ॥ ९१ ॥ छप्पयछंद । जो समाधि आदरे तासु वांछा मन चावे । कर उदार परमाण ताहि निशिदिन ही ध्यावे ॥ कब आवे वह घड़ी समाधि सु मरण करोंगो । अंत सल्लेखण माड़ कर्मरिपुसे सु लड़ोंगो ॥ यह चाह रहै निशिदिन जवे, कुगति बन्ध नाहीं

करे। सम्यक्त्ववान जग पूज्य हो, निश्चयसे शिवत्रिय बरे॥९२॥ पंचमकाल करालमें न संयम जो गाई। पर समाधि आदरे तास महिमा अधिकाई॥ ताफल सुर गति लहै इन्द्र चक्री नर राई। हो सब जग भोग विदेहां जन्म कहाई॥ सुखभोगधार तपकर्महर, शिव सुन्दरि परणे सुजन। मुख एक थकी वरणों सुकिम, धन्य समाधि महिमा सुभन॥ ९३॥ दोहा। देह अशुचि शुचिको यहां, कुछ न विचार करेह। पढ़े पाठ मंत्रहि जपे, अशुचि सदा यह देह॥९४॥ श्री काश्यप क्रम थमलको, नम विक्रम आन। द्वादायग दोषा सुघर, मूर्द्धन क्षनद विहान॥ ९५॥ नरक कला अत तास रुच, रस्मिन उदय रहंत। शतक समाधि सु विस्तरो। तव लग जय जयवन्त॥ ९६॥ सवैया २३। मंगलसे बहु विघ्न नशें यह पाठ सुपूरण मंगल कीने। है निमित्त वड वीर दई शिख श्रावक मेर उदासिय भीने। राखन कंठ सुहेत रचे सब जीव पढ़े सु समाधिहि चीन्हे। तास प्रमाण श्लोकनका युगसे जु पचास कहै जु नवीने॥ ९७॥ नाम समाधि शतक यथा इकसे इक छन्द कवित्त सु कीने। कर्त्ता मूल जिनेश गणी क्रमसे सो राम गुमानीकीने। ता अनुसार सो प्राण पुरामह छंद रचे लघु धी बदलीने। लक्ष्मणदास सो भ्रात बड़े तिनने यह सोधि समापति कीने॥९८॥ दोहा। इक नव युग पर युग धरें, शुभ सम्वत्सर जान भाद्रव धवल सु तीज गुरु पूरण किया विधान॥ ९९॥ यामें छद रचे इते, दोहा पैंतालीस। पुन छप्पय इकवीस हैं, कवित रचे पैंतीस॥ १००॥ संख्या सब श्लोक मिल, युगशत और पचास। अल्प बुद्धि वरणो सु यह, बुधजन सोधो जासु॥१०१॥

॥ इति समाधिशतक छन्दबद्ध सम्पूर्णम्॥

पांचवां खंड ।

(१) एकीभावस्तोत्रम् ।

(श्रीवादिराजप्रणीतम्)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो घोरं दुःखं भव-भवगतो दुर्निवारः करोति । तस्याप्यस्य त्वयि जिनवरे भक्तिरु-न्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥ १ ॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वंसहेतुं, त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः । चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्त-स्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनन्दाश्रुस्न-पितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम् । तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्का-स्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥ प्रागेवेह त्रिदिवभव-नादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम् । ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णी करोषि ॥ ४ ॥ लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बंधु-स्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका । भक्तिस्फीतां चिरमधि-वसन्मामिकां चित्तशय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी । तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितान्तं निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ ६ ॥ पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं हेमाभासो भवति सुरभिः

श्रीनिवासश्च पद्मः। सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्नमामभ्युपैति ॥ ७ ॥ पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं कर्मारण्यात्पुरुषमसमानंदधाम प्रविष्टम्। त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुंठंति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः। दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥ ९ ॥ हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबंधं धुनोति। ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देवलोकोपकारः ॥१०॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि। त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या यत् कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्। कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥ १२ ॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेदनवधिसुखा वञ्चिका कुञ्चिकेयम्। शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राकवाटम् ॥ १३ ॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात् पन्था मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः। तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः ॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्। हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भ

क्तिभाजः स्तोत्रैर्बन्धप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्री खनित्रैः ॥ १५ ॥ प्रत्युत्पन्नानयहिमगिरेरायता चामृताब्धेर्या देव त्वत्पदकमलयोः सङ्गता भक्तिगङ्गा । चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥१६॥ प्रादुर्भूत स्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा । मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां दोषत्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७॥ मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैर्वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते । तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति ॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः । सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥ इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति । त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम् ॥२०॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्ये न तुल्यस्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते । मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्ते भव्यानामभिमतफलाः पारिजाता भवंति ॥२१॥ कोपावेशो न तव न तव क्वापि देवप्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम् । आज्ञावश्यं तदपि भुवनं संनिधिर्वैरहारी क्वैवं भूतं भुवनतिलक प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्तिं तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः ; तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥२३॥

चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्य रूपं देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति । श्रेयोमार्ग स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥ १४॥ भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः, सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम् । अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥१५॥ वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः । वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः ॥ १६ ॥

इति श्रीवादिराजकृतभक्तीभावस्तोत्रम् ।

[२] स्वयंभूस्तोत्रभाषा ।

राजविषैं जुगलनि सुख किया । राज त्याग भवि शिवपद लिया॥
स्वयंबोध स्वंभू भगवान । वंदौं आदिनाथ गुणखान ॥ १ ॥
इन्द्र क्षीरसागरजल लाय । मेरु न्हवाये गाय बजाय ।
मदन विनाशक सुख करतार । वंदौं अजित अजितपदकार ॥२॥
शुक्लध्यानकरि करम विनाशि । घाति अघाति सकल दुखराशि ॥
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार । वंदौं शंभव भवदुख टार ॥३॥
माता पच्छिम रयनमँझार । सुपने सोलह देखे सार ॥
भूप पूछि फल सुनि हरषाय । वंदौं अभिनंदन मनलाय ॥ ४ ॥
सब कुवादवादी सरदार । जीते स्यादवाद धुनिधार ॥
जैनधरम परकाशक स्वाम । सुमतिदेवपद करहुँ प्रनाम ॥ ५ ॥
गर्भअगाऊ धनपति आय । करी नगरशोभा अधिकाय ॥
वर्षे रतन पंचदश मास । नमौं पदमप्रभु सुखकी रास ॥ ६ ॥

जाकी निजथुति कबहुं न होय। वंदौं अरजिनवर पद होय ॥१८॥
परभव रतनत्रय अनुराग। इस भव व्याहसमय वैराग ॥
बालब्रह्म पूरन व्रत धार। वंदौं मल्लिनाथ जिनसार ॥ १९ ॥
विन उपदेश स्वयं वैराग। थुति लौकांत करैं पग लाग ॥
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं। वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥२०॥
श्रावक विद्यावंत निहार। भगतिभावसौं दियो अहार ॥
वरसे रतनराशि ततकाल। वंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥२१॥
सब जीवनकी वंदी छोर। रागदोष दो वंदन तोर ॥
रज मति तज शिवतियसों मिले। नेमिनाथ वंदौं सुखनिले ॥२२
दैत्य कियो उपसर्ग अपार। ध्यान देख आयो फणिधार ॥
गयो कमठ शठ मुखकर श्याम। नमौं मेरुसम पारसस्वाम ॥२३॥
भवसागरतें जीव अपार। धरमपोतमें धरे निहार ॥
डूबत काढ़े दया विचार। वर्द्धमान वंदौं बहुवार ॥ २४ ॥
दोहा—चौवीसौं पदकमलजुग, वंदौं मनवचनकाय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सुहाय ॥२५॥

---

(३) बृहत्स्वयंभूस्तोत्र।

(श्रीमद्भगवद्वादिगजकेसरी स्वामी समन्तभद्राचार्य विरचित)

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥
प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥
विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।

बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता॥१४
शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः॥१५॥

इति संभवजिनस्तोत्रम्।

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षांतिसखीमशिश्रयत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत्॥१६॥
अचेतने तत्कृतबन्धनेऽपि च ममेदमित्याभिनिवेशकग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान्॥१७॥
क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देह देहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत्॥१८
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत्॥१९॥
स चानुबन्धोऽस्यजनस्य तापकृत्तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः
इति प्रभो! लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः २०

इत्यभिनंदनजिनस्तोत्रम्।

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारकतत्वसिद्धिः॥२१॥
अनेकमेकं च तदेव तत्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्॥२२
सतः कथञ्चित्तदसत्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्॥२३॥
न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमःपुद्गलभावतोऽस्ति॥२४॥

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था ।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ! ॥२५॥

इति सुमतिजिनस्तोत्रम् ।

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः ।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबंधुः ॥२६॥
बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः ।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥२७॥
शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्करश्मिच्छविरालिलेप ।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥२८॥
नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः ।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥२९॥
गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं नाखण्डलस्तोतुमलं तवर्षेः ।
प्रागेव मादृक्किमु तातिभक्तिर्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥३०॥

इति पद्मप्रभस्तोत्रम् ।

स्वास्थ्यं यदात्यान्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशांतिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः ॥३१॥
अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः॥३२
अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा ।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः ।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥
सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥३५॥

इति सुपार्श्वजिनस्तोत्रम् ।

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वंदेऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ।३६॥
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥३७।
स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः। ३८॥
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समंतदुःखक्षयशासनश्च ॥ ३९ ॥
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥ ४० ॥

इति चंद्रप्रभजिनस्तोत्रम्।

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥ ४१ ॥
तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्तथा प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥४२॥
नित्यं तदेवदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥ ४३ ॥
अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ॥४४
गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥ ४५ ॥

इति सुविधिजिनस्तोत्रम्।

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयःशमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चितां ॥४६
सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
विदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथाभिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहं ॥४७॥
स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य्य ! नक्तं दिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥ ४८ ॥
अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणात् ॥४९॥
त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृत्तः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिनशीतलेड्यसे ॥ ५० ॥

इति शीतलजिनस्तोत्रम्।

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकाशे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान् ॥ ५१
विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूप. प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणो परो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥५२॥
विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणो विवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्य्यकरं हि वस्तु ॥५३॥
दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्तनियामदृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥ ५४ ॥
एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५५॥

इति श्रेयांसजिनस्तोत्रम्।

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः ।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ।१६
न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥१७॥
पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥५८
यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूतेर्निमित्तमभ्यंतरमूलहेतोः ।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥ ५९ ॥
बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥६०॥

इति वासुपूज्यस्तोत्रम् ।

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः ।
त एव तत्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः । ६१
यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम् ।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥६२॥
परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव ।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥६३
विशेषवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत् ।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥६४
नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणिता हितैषिणः ॥६५

इति विमलजिनस्तोत्रम् ।

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि ।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोभूर्भगवाननंतजित् ॥६६॥
कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित् ।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयन् ॥ ६७ ॥
परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य ! शोषिता ।
असंगघर्मार्कगभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥६८॥
सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषन् त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते ।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो ! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥
त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने ! ।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श · इवामृताम्बुधेः ॥७०॥

इत्यनंतजिनस्तोत्रम् ।

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान् ।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः ॥ ७१ ॥
देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः ।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥७२॥
प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्नापि शासनफलैषणातुरः ॥ ७३ ॥
कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाऽभवँस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥ ७४ ॥
मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥ ७५ ॥

इति धर्मजिनस्तोत्रम ।

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥ ७६॥
चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥ ७७ ॥
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥ ७८ ॥
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलिदेवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥७९॥
स्वदोषशान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८०॥

इति शांतिजिनस्तोत्रम्।

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः
कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्त्तयसि स्म भूत्यै
भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥ ८१ ॥
तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपरांमुखोऽभूत् ॥ ८२ ॥
बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥ ८३ ॥

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो
रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्य्यः ।
विभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेता
व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥ ८४ ॥
यस्मान्मुनीन्द्र ! तव लोकपितामहाद्या
विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति ।
तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः ॥ ८५ ॥

इति कुंथुजिनस्तोत्रम् ।

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥ ८६ ॥
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥ ८७ ॥
लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम् ।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥ ८८ ॥
तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान् ।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥ ८९ ॥
मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः ।
दृष्टिसम्पदुपेक्षास्त्रैस्त्वया धीर ! पराजितः ॥ ९० ॥
कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्यविजयार्जितः ।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥ ९१ ॥
आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोर्निर्निरुत्तरा ।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥ ९२ ॥

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखा सदा ।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥ ९३ ॥

भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम् ।
रूपमेव तवाचष्टे धीर ! दोषविनिग्रहम् ॥ ९४ ॥

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषण भूयसा ।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मध्यानतेजसा ॥ ९५ ॥

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ ! सचेतनम् ॥ ९६ ॥

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम् ।
प्रणीयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥ ९७ ॥

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः ।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥ ९८ ॥

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः ।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥ ९९ ॥

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्त्तुमनीश्वराः ।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥ १०० ॥

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥ १०१ ॥

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥ १०२ ॥

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणान्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥ १०३ ॥

इति निरुपमयुक्तिशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिनदमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥ १०४ ॥
मतिगुणविभवानुरूपतस्त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवता दुरिताशनोदितम् ॥ १०५॥

इत्यरजिनस्तोत्रम्।

यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलिभूत्वा प्रणिपतति स्म ॥ १०६ ॥
यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥
यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥ १०८ ॥
यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥ १०९ ॥
यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥ ११० ॥

इति मल्लिजिनस्तोत्रम्।

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडुपरिषत्परिवीतसोमवत् ॥ १११ ॥
परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया।
भवजिनतपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥ ११२ ॥
शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते यदपि च वाङ्मनसोऽयमीहितम् ॥११३॥
स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।
इति जिनसकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते ॥ ११४ ॥

दुरितमलकलङ्कमष्टकं निरुपमयोगबलेन निर्दहन् ।
अभवदभवसौख्यवान् भवान् भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥ ११५॥

इति मुनिसुव्रतजिनस्तोत्रम् ।

स्तुतिस्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।
किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभे श्रायसपथे
स्तुयान्नत्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥ ११६ ॥

त्वया धीमन् ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी ।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगव-
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ॥ ११७ ॥

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः ।
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥ ११८ ॥

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
नसा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥ ११९ ॥

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तिकरणं
यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम् ।
विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं ।
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥ १२० ॥

इति नमिजिनस्तोत्रम् ।

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनम् ।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुध्य बुद्धः कमलायतेक्षणः ॥ १११ ॥
हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुंजरोऽजरः ॥ ११२ ॥
त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरणविसरोपचुम्बितम् ।
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥ ११३ ॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥ ११४ ॥
द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशुमण्डलः ।
नीलजलजदलराशिवपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥ ११५ ॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जिनेश्वरौ ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥ ११६ ॥
ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥ ११७ ॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च ।
प्रीतिविततहृदयैः परितो भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥ ११८ ॥
बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत् ।
नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ॥ ११९ ॥
अतएव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम् ।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयं ॥ १२० ॥

इत्यरिष्टनेमिजिनस्तोत्रम् ।

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः ॥ १२१ ॥

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणाम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥१३२॥
स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम् ।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥१३३॥
यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥१३४॥
स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥१३५

इति पार्श्वजिनस्तोत्रम् ।

कीर्त्या भुवि भासितया वीर त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया ।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुंदशोभासितया ॥१३६॥
तव जिनशासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः ।
दोषकशासनविभवः स्तुवंति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥ १३७ ॥
अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥१३८॥
त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रंथिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः ।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः ॥ १३९ ॥
सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम् ।
मग्नं स्वस्यां रुचिरं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥१४०
त्वं जिन ! गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामद मायः ।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥ १४१ ॥
गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः स्रवद्दानवतः ।
तव शमवादानवतो गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥ १४२ ॥

बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम् ।
नयभक्त्यवतंसकलं तव देव ! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥ १४१ ॥
यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः ।
तद्व्याख्यानमदो यथावगतः किञ्चित्कृतं लेशतः
स्थेयाँश्चन्द्रदिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥

---

(४) द्रव्यसंग्रह ।

(श्रीमन्नेमिचन्द्र सि० चक्रवर्ती विरचित)

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥
जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥
तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥
उवओगो दुवियप्पो दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥
णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥
अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥
पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥
ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥
अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥ १० ॥
पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥
समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥
मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥
णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥
अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ १५ ॥
सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥
गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।

छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥
अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेणं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥
धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥
दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥
लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ २२ ॥
एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पञ्च अत्थिकाया दु ॥ २३ ॥
संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥ २४ ॥
होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥
एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥ २६ ॥
जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥
आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥
आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥ ३० ॥
णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥ ३१ ॥
बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥ ३३ ॥
चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥ ३४ ॥
वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥
जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥ ३६ ॥
सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥ ३७ ॥
सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥ ३८ ॥
सम्मद्दंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥ ३९ ॥
रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥ ४० ॥
जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।

दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥ ४१ ॥
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयमेयं च ॥ ४२ ॥
जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥ ४३ ॥
दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा ।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥ ४४ ॥
असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥ ४५ ॥
बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥ ४६ ॥
दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥ ४७ ॥
मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठमत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥ ४८ ॥
पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥
णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥
णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥
दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥ ५२ ॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥
दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स णमो तस्स ॥ ५४ ॥
जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदा हु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥ ५५ ॥
मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होई थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥
तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

---

(५) रत्नकरण्डश्रावकाचार।

(श्रीसमन्तभद्रस्वामीविरचित)

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥
देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥
सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥
आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥
परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ ७ ॥
अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ ८ ॥
आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥
विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥
इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥
कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥
स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ १३ ॥
कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥
स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।

वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥
दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥
अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥
तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमती स्मृता।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १९ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥ २० ॥
नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहंति विषवेदनाम् ॥ २१ ॥
आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥
वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥
सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥
ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥ २७ ॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥
श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात् ।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥ २९ ॥
भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ३० ॥
दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥ ३१ ॥
विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥
गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥
न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥
सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥
ओजस्तेजोविद्यावीर्य्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥
अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः ।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥
नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।

वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥ ३९ ॥
शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकमभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनशरणाः ॥ ४० ॥

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्।
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥ ४१ ॥
अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥
प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥
लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ४४ ॥
गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ ४५ ॥
जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥
मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥
रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥ ४८ ॥

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥
सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥ ५० ॥
गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासङ्ख्यमाख्यातम् ॥ ५१ ॥
प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥ ५२ ॥
संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥
छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥ ५४ ॥
स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदंति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥
परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥ ५६ ॥
निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥५७॥
चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥ ५८ ॥
न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥ ५९ ॥
अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषाः ।

इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥ ६० ॥
धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥ ६१ ॥
अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥ ६२ ॥
पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥ ६३ ॥
मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ता पूजातिशयमुत्तमम् ॥ ६४ ॥
धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥
मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलमूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥
दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥ ६७ ॥
दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै ॥ ६८ ॥
मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्य्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥ ६९ ॥
अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥ ७० ॥
प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥ ७१ ॥

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥ ७२ ॥
ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥ ७३ ॥
अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः।
पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥ ७५ ॥
तिर्यक्क्लेशवाणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसङ्गप्रसवः स्मर्त्तव्यः पापउपदेशः ॥ ७६ ॥
परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृङ्खलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ ७७ ॥
बन्धवधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ७८ ॥
आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।
चेतःकलुषयतां श्रुतिवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥
क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥ ८० ॥
कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥
अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥
भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।

उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥ ८३ ॥
त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥ ८४ ॥
अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ ८५ ॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसंधिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥ ८६ ॥
नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात् ।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥ ८७ ॥
भोजनवाहनशयनस्नानपवित्रांगरागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु ॥ ८८ ॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥ ८९ ॥
विषयविषऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥ ९० ॥
देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा ।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ९१ ॥
देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥
गृहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च ।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥ ९३ ॥
संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥ ९४ ॥

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपंचपापसत्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥ ९५ ॥
प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पंच ॥ ९६ ॥
आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसंति ॥ ९७ ॥
मूर्धरुहमुष्टिवासोबंध पर्यंकबंधनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानंति समयज्ञाः ॥ ९८ ॥
एकांते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥ ९९ ॥
व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामंतरात्मविनिवृत्त्या।
सामायिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥ १०० ॥
सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपंचकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥ १०१ ॥
सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव संति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥
शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥
अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥
वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामायिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पंचभावेन ॥ १०५ ॥
पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।

चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥
पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥१०७॥
धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालु ॥ १०८ ॥
चतुराहारविसर्ज्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥ १०९ ॥
ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥ ११० ॥
दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ १११ ॥
व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्त्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥ ११२ ॥
नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११३ ॥
गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥ ११४ ॥
उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥ ११५ ॥
क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृतां ॥११६॥
आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥ ११७ ॥

श्रीषेणवृषभसेनौ कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः॥ ११८॥
देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं॥११९॥
अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे॥ १२०॥
हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते॥ १२१॥
उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥१२१॥
अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं॥ १२३॥
स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥१२४॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजं।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषं॥ १२५॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥१२६॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥ १२७॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन॥ १२८॥
जीवितमरणाशंसाभयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।

सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥ १२९ ॥
निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निःष्पिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥
जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥
विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरातिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखं ॥१३२॥
काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥
निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥१३४॥
पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥
श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥
सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥
निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥
चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९
पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्त्तिः ॥१४१॥
अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥
मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगन्धिबीभत्सम् ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥
सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥
बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४५ ॥
अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मंतव्यः ॥१४६॥
गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥
पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥
येन स्वयं वीतकलङ्कविद्या दृष्टिः क्रियारत्नकरण्डभावं ।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु॥१४९

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव ।
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ॥
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

(६) आलापपद्धतिः

(श्रीमद्देवसेनविरचिता)

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते। सा च किमर्थम्? द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थं स्वभावसिद्ध्यर्थञ्च। द्रव्याणि कानि? जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि। सद्द्रव्यलक्षणम्, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् इति द्रव्याधिकारः॥

लक्षणानि कानि? आस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं[1], प्रदेशत्वं[2] चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः प्रत्येकमष्टावष्टौ सर्वेषाम्।

(एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति। जीवद्रव्ये अचेनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वं च नास्ति, धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति। एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति।)[3]

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगन्धवर्णाः गतिहेतुत्वं स्थितिहेतुत्वमवगाहनहेतुत्वं वर्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः। षोडषविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति। जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्। पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवर्णाः मूर्तत्वमचेनत्वमिति षट्।

---

१ सूक्ष्मा अवाग्गोचरा प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रामाण्यदभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः। २ क्षेत्रत्वम् अविभागि पुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम्। ३ इति खपुस्तकेऽधिकपाठः।

इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः। धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणः। अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। कालद्रव्ये वर्त्तनाहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः। अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्य-गुणा, विजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः। इति गुणाधिकारः।

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा, स्वभावविभावपर्यायभेदात्। अगुरुलघुविकाराः स्वभावपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धिरूपाः षड्ढानि-निरूपाः। अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभाग-वृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, एवं षड्वृद्धिरूपास्तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, एवं षड्ढानिरूपा ज्ञेयाः। विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः। विभावगुणव्यञ्जनपर्याया मत्यादयः। स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चरमशरीरात्किञ्चिन्न्यूनसिद्धपर्यायाः। स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याया अनन्तचतुष्टयस्वरूपा जीवस्य। पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभाव-द्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः। रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुणव्य-ञ्जनपर्यायाः। अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः। वर्णगन्धरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः।

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

---

१ द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया। २ स्वभावपर्यायाः सर्वद्रव्येषु विभावपर्याया जीवपुद्गलयोश्च ३ आद्यन्तरहिते।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ ॥
धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः।
व्यञ्जनेन तु संबद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥२॥

इति पर्यायाधिकारः। गुणपर्ययवद्द्रव्यम्।

स्वभावाः कथ्यन्ते। अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभाव, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभाव एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः चेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्धस्वभाव एतैः पञ्चभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति। तत्र बहुप्रदेशं विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥३॥

---

१ स्वभावलाभादच्युतत्वादग्निदाहवदस्तिस्वभावः। २ परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः ३ निज निज नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः। ४ तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामित्वादनित्यस्वभावः। ५ स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः। ६ गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद्भेदस्वभावः। ७ पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः। ८ असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः। ९ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः। १० जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः। ११ "तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तुभावो विधीयते" १२ तस्य एकप्रदेशसम्भवात्।

ते कुतो ज्ञेयाः ? प्रमाणनयविवक्षातः। सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्। तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात्। अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ। केवलं सकलप्रत्यक्षम्। मतिश्रुते परोक्षे। प्रमाणमुक्तं। तदवयवा नयाः।

नयभेदा उच्यन्ते,—

णिच्छयववहारणया मूलमभेयाण याण सव्वाणं।

णिच्छय साहणहेओ दव्वयपज्जत्थिया मुणह ॥ ४ ॥

द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः नैगमः, संग्रहः व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढ. एवंभूत इति नव नयाः स्मृताः। उपनयाश्च कथ्यन्ते। नयानां समीपा उपनयाः। सद्भूतव्यवहारः असद्भूतव्यवहारः उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते। द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः। कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवः सिद्धसदृक् शुद्धात्मा। उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यम्। भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुणपर्यायस्वभावाद्द्रव्यमभिन्नम्।

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः अन्वयद्रव्यार्थिको यथा—गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम् स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा—स्वद्रव्या-

१ निश्चयनया द्रव्यस्थिताः व्यवहारनयाः पर्यायस्थितः। २ नयार्थं गृहीत्वा वस्तुनोऽनेकविकल्पत्वेन कथनमुपनयः। ३ आदिशब्देन स्वक्षेत्रस्वकालस्वभावा ग्राह्याः।

दिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति । परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा-परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति । परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा-ज्ञानस्वरूप आत्मा । अत्रानेकस्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ।

इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड्भेदा उच्यन्ते,—

अनादि नित्यपर्यायार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा-सिद्धपर्यायो नित्यः । सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा-समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः । सत्तासापेक्षस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा-एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः । कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो ऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः । कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा-संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः । इति पर्यायार्थिकस्य षड्भेदाः ।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्त्तमानकालभेदात् । अतीते वर्त्तमानारोपणं यत्र स भूतनैगमो यथा-अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा—अर्हन् सिद्ध एव । कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्त्तमाननैगमो यथा-ओदनः पच्यते इति नैगमस्त्रेधा ।

---

१ सुवर्णं हि रजतादिरूपतया नास्ति रजतक्षेत्रेण रजतकालेन रजतपर्यायेण च नास्ति । २ पूर्वपर्यायस्य विनाशः, उत्तरपर्यायस्योत्पादः, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम् ।

संग्रहो द्विविधः । सामान्यसंग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि । विशेषसंग्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परम-विरोधिनः इति संग्रहोऽपि द्विधा ।

व्यवहारोऽपि द्वेधा । सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा—जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च इति व्यवहारोऽपि द्वेधा ।

ऋजुसूत्रो द्विविधः । सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा—एकसमयावस्थायी पर्यायः । स्थूलर्जुसूत्रो यथा—मनुष्यादिपर्यायास्तदायुःप्रमाणकालं तिष्ठन्ति इति ऋजुसूत्रोऽपि द्वेधा ।

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः। शब्दनयो यथा दारा भार्या कलत्रं जलं आपः । समभिरूढनयो यथा गौः पशुः । एवंभूतनयो यथा—इन्दतीति इन्द्रः । उक्ता अष्टाविंशति-र्नयभेदाः ।

उपनयभेदा उच्यन्ते-सद्भूतव्यवहारो द्विधा । शुद्धसद्भूतव्यव-हारो यथा-शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदक-थनम्[1] । अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्ध पर्यायाऽशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् इति सद्भूतव्यवहारोऽपि द्वेधा ।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा । स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा-परमा-णुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि । विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतोमूर्तद्रव्येण जनितम् । स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यव-हारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् । इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ।

---

१ सिद्धपर्यायसिद्धजीवयोः ।

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा। स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-पुत्रदारादि मम। विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम। स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-देशराज्यदुर्गादि मम इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

सहभावा गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः गुण्यन्ते पृथक्क्रियन्ते द्रव्यं द्रव्यान्तरैस्ते गुणाः। अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्। वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम् निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम्। सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम् प्रमाणेन स्वपरस्वरूपपरिच्छेद्यं प्रमेयम्। अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा वागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।

"सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।

आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः" ॥ ५ ॥

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम्। चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चैतन्यमनुभवनम्।

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च।

क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥ ६ ॥

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम्। मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्वम्। अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहित-

---

१ अन्वयिनः। २ प्राप्नोति। ३ ज्ञातुं योग्यम्। ४ व्याप्तं। ५ अनुभूतिर्जीवाजीवादिपदार्थानां चेतनमात्रम्। ६ रूपरसगन्धस्पर्शवत्वम्।

त्वम् इति गुणानां व्युत्पत्तिः। स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्याय इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः। स्वभावला-भादच्युतत्वादस्तिस्वभावः परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः। निज-निज-नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः। तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामितत्वादनित्यस्वभावः। स्वभावानामेकाधा-रत्वादेकस्वभावः। एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेकस्वभावः। गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद् भेदस्वभावः। (संज्ञासंख्यालक्षणप्रयोजनानि) गुणगुण्याद्येकस्वभावादभेदस्वभावः। भाविकाले परस्वरूपाकारभ-वनाद् भव्यस्वभावः। कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्य-स्वभावः। उक्तञ्च,—

"अण्णोण्णं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णास्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगसगभावं ण विजहंति" ॥ ७ ॥

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः। इति सामान्यस्व-भावानां व्युत्पत्तिः। प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादिविशेषस्व-भावानां च व्युत्पत्तिर्निगदिता।

धर्मापेक्षया स्वभावा गुणा न भवंति। स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवंति। द्रव्याण्यपि भवंति। स्वभावादन्य थाभवन विभावः। शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम्। स्व-भावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः। स द्वेधा कर्मजस्वाभावि कभेदात् यथा जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं यथा सिद्धानां परज्ञता परदर्शकत्वं च। एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथासंभवो ज्ञेयः।

१ गुणगुणीति संज्ञा नाम। गुणा अनेके गुणी त्वेक इति संख्या भेदः। सद्द्रव्यलक्षणं। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः। २ स्वभावापेक्षया।

"दुर्नयैकान्तमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते ॥
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलङ्का नया यतः" ॥८॥

तत्कथं तथाहि--सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था-संकरादिदोषत्वात् तथा--सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसङ्गात्/ नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः; अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः। अनित्यपक्षेऽपि अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वभावे द्रव्यस्याप्यभावः। एकस्वरूपस्यैकांतेन विशेषाभावः, सर्वथैकरूपत्वात् विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः।

"निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि" ॥९॥

इति ज्ञेयः।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेयाभावाच्च। भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः। अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम् सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारित्वाभाव अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः। भव्यस्यैकांतेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यांतरत्वप्रसङ्गात्। सङ्करादिदोषसम्भवात् सङ्करव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेति। सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः। विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः। सर्वथा चैतन्य-

१ यथा सिंहो माणवकः (माणवको मार्जारः)।
२ निरन्वयत्वादित्यपि पाठः। ३ भव्याभव्यजीवत्वानि।

मेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुशिष्याद्यभावः । सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची अथवा सर्वकालवाची, अथवा नियमवाची, अथवा अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची वा सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द एवंविधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम् । अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः, अनित्यः, एकः, अनेकः, भेदः, अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमितपक्षत्वात् । तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो मोक्षस्यावाप्तिः स्यात् । सर्वथाऽमूर्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपः स्यात् । एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्व एव हानिः स्यात् । सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसङ्गात् । शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्कावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात् । सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथात्मनो न कदापि शुद्धस्वभावप्रसङ्गः स्यात् तन्मयत्वात् । उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात् । तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात् ।

"नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयमिश्रितं कुरु" ॥ १० ॥

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः । परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ।

---

१ अशुद्धस्वभावमयत्वात् । २ मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते ।

केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः । अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकद्रव्यस्वभावत्वम् । सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः । परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः । शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य । असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोमूर्त्तस्वभावः । जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः । परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्तस्वभावः पुद्गलस्योपचारादपि नास्त्यमूर्त्तत्वम् । परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम् । भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वम् । भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेशस्वभावत्वम् । पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं न च कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात् । अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्त्तपुद्गलस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात् । परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्त्तत्वं । पुद्गलस्य शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभावत्वम् । शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः । अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः । असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः ।

'द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम् ।
तथा ज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः" ॥ ११ ॥

इति नययोजनिका ।

---

१ नयेन । २ जीवधर्माधर्माकाशकालानाम । ३ जीवपुद्गलयो ।

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम्। तद्द्वेधा सविकल्पेतरभेदात्। सविकल्पं मानसं, तच्चतुर्विधम्। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम्। निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानमिति प्रमाणस्य व्युत्पत्तिः। प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः। स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्पभेदादिति नयस्य व्युत्पत्तिः। प्रमाणनययोर्निक्षेप आरोपणं स नामस्थापनादिभेदेन चतुर्विध इति निक्षेपस्य व्युत्पत्तिः। द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः। शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः। अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्यार्थिकः। सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः। स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः, परद्रव्याग्रहणमर्थः। प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः, परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः।

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्ति।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः। अनादिनित्य पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादिनित्यपर्यायार्थिकः। सादिनित्य पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः। शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः। अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः।

१ निश्चीयते। २ आदिशब्देन द्रव्यभावौ गृह्येते। ३ सामान्यं जीवत्वादि गुणा ज्ञानादयः।

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो विकल्पस्तत्रभवो नैगमः ! अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति सङ्ग्रहः । सङ्ग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः । ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः । शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः । परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः । शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति । यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः । एवं क्रिया प्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः । शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ । अभेदानुपचरितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः । भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः । गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् । भेदकः सद्भूतव्यवहारः । अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः । असद्भूतव्यवहार एवोपचारः उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः । गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः, द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये गुणोपचारः, द्रव्ये पर्यायोपचारः, गुणे द्रव्योपचारः, गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः, पर्याये गुणोपचार इति नवविधोऽसद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ।

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः । मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते सोऽपि सम्बन्धाविनाभावः । संश्लेषः सम्बन्धः । परिणामपरिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः,

१ वस्तुसमूहं । २ एवमित्युक्ते कोऽर्थः क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम् । ३ पुद्गलादौ । ४ स्वभावस्य । ५ जीवादौ ।

ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादिसत्यार्थः, असत्यार्थः सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरिताऽसद्भूतव्यवहारनयस्यार्थः ।

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते । तावन्मूलनयौ द्वौ–निश्चयो व्यवहारश्च । तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषयः । तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च । तत्र निरुपाधिकगुणगुण्यभेदविषयकोऽशुद्धनिश्चयो यथा–केवलज्ञानादयो जीव इति ।

सोपाधिकविषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा–मतिज्ञानादयो जीव इति ।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च । तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः, भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारस्तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयः उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा-जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः । निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा–जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः ।

असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र संश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो । यथा देवदत्तस्य धनमिति । संश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा–जीवस्य शरीरमिति ।

इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः ।

---

१ भेदेन शाहु योगः । २ उपाधिना कर्मजनितविकारेण सह वर्तते इति सोपाधि । ३ यथा वृक्ष एक एव तल्लग्नाः शाखा भिन्नाः परन्तु वृक्ष एव तथा सद्भूतव्यवहारो गुणगुणिनोर्भेदकथनम् । ४ देवदत्तस्य, इति च पाठः ।

[७] बारहभावना ।

[रत्नचंद्रजीकृत ।]

सवैया ३१ ॥

भोग उपभोग जे कहे हैं संसाररूप रमा धन पुत्र औ कलत्र आदि जानिये ॥ ज्यूहीं जल बुदबुद प्रत्यक्ष है क्षणाव तनु विद्युतचमत्कार थिर न रहानिये । त्यूं ही जग अथिर विलासको असार जान थिर नहीं दीसे सो अनादि अनुमानिये ॥ यह जो विचारे सो अनित्य अनुपेक्षा कहे प्रथम ही भेद जिनराज जो बखानिये ॥ १ ॥ निर्जन अरण्य माहिं ग्रहे मृग सिंह शरण न दीसे अशरण ताहि कहिये ॥ हरिहरादि चक्रवर्ति पद त्यों अथिर गिनो जन्ममरण सो अनादि ही ते लहिये ॥ याहिको विचारियो असार संसार मान एक अवलंब जिनधर्म ताहि गहिये । दृढ़ हिये धार निज आतमको कर विचार तजके विकार सब निश्चल हो रहिये ॥ २ ॥ कर्म काण्ड दाही थकी आत्मा भ्रमणकरे नट जैसो नाटक अनन्तकाल करे है । पिता हूते पुत्र होय जनक होय सुत हू ते, स्वामी हू ते दास भृत्य स्वामी पद धरे है । माता हू ते, त्रिया होय कामिनी ते माय होय भववन मांहि जीव यूंही संसरे है ॥३॥ मैंहूं जो एकाकी सदा देखिये अनंत काल जन्म मृत्यु बहु दुःख सहो है । रोगनग्रसो है एकै पाप फल भुंजे घनो एकै शोकवन्तको उदुवीनाहिं सहो है । स्वजन न तात मात साथी नहिं कोय यह रत्नत्रय साथि निज ताहि नहिं गहो है । एकै यह आतमध्यावे, एकै तपसा

करावे होय शुद्ध भावे तब मुक्ति पद लहो है ॥ ४ ॥ आतम है अन्य और पुद्गल हूं अन्य लखो अन्य मात तात पुत्र त्रिया सब जानरे । जैसे निशिमांहिं तरूहुपै खग मेलैं होय, प्रात उड जाय ठौरठौर तिमि मानरे ॥ तैसे विनाशीक यह सकल पदार्थ हैं हाटमध्या जन अनेक होय मेले आनरे । इनहुतें काज कछु सरै न नेगो नाहिं भैया, अन्यत्वानुप्रेक्षरूप यह पहचानरे ॥ ५ ॥ त्वचा पल अस्तनसाजालमलमूत्र थाम शुक्रमल रुधिर कुधातु सप्तमई है, ऐसो तन अशुचि अनेक दुर्गंध भरो श्रवै नव द्वार तामें मूढ मतिदई है ॥ ऐसी यह देह ताहि लखके उदास रहो मानो जीव एक शुद्ध बुद्ध परणई हैं ॥ अशुचि अनुप्रेक्षा यह धारे जो इसी ही भांति तनके विकार विन मुक्तरमा लई है ॥ ६ ॥

चौपाई ।

आश्रवअनुपेक्षा हियधारं । सत्तावन आश्रवके द्वारं ॥ कर्म्मा-श्रव ये कैसे होय । ताको भेद कहुं अब सोय ॥ मिथ्याअविरतयोग-कषाय । यह सत्तावन भेद कखाय । बंधो फिरे इनके वश जीव । भव-सागरमें रुले सदीव । विकल्परहित ध्यान जब होय । शुभआश्रवको कारण सोय ॥ कर्म्मशत्रुको करसंहार । तब पावे पंचमगति सार ॥ ७ ॥ आश्रवको निरोध जो ठान । सोईसम्वर करे वखान ॥ सम्वरकरसु-निरजरा होय । सोहै द्वय परकारहि जोय ॥ इक स्वयमेव निर्ज-रा भेख । दूजी निर्जरा तपहि विशेष ॥ ८ ॥ पूर्व सकल अवस्था-कही । संवर करजो निर्जरासही ॥ सोय निर्जरा दो परकार । सवि-पाकी अविपाकीसार ॥ सविपाकी सवजीवन होय । अविपाकी

मुनिवरके जोय ॥ तपके बलकर मुनि भोगाय । सोई भाव निर्जरा आय । बंधे कर्म छूटे जिह घरी । सोई द्रव्य निर्जरा खरी ॥९॥ अधो मध्य अरु ऊरध जान । लोकत्रय यह कहे बखान ॥ चौदह राजू सबे उतंग । वातत्रय वेढे सरबंग ॥ घनाकार राजू गण ईस । कहैं तीनसै तैंतालीस ॥ अधोलोक चौखूंटो जान । मध्यलोक झालरी समान ॥ उर्द्धलोक मृदंगाकार । पुरुषाकार त्रिलोक निहार ॥ ऐसो निजघट लखे जुकोय । सो लोकानुप्रेक्ष यह होय ॥१०॥ दुर्लभ ज्ञान चतुरगतिमांहि । भ्रमतभ्रमत मानुषगति पाहि ॥ जैसे जन्म दरिद्री कोय । मिलो रत्ननिधिताको सोय ॥ त्यूं मिलियो यह नर पर्याय । आर्यखंड ऊंच कुल पाय ॥ आयु पूर्ण पंचइन्द्री भोग । मंदकषाय धर्मसंयोग ॥ यह दुर्लभ है या जगमाहिं । इन विन मिले मुक्तिपद नाहिं ॥ ऐसी भावना भावे सार । दुर्लभ अनुप्रेक्षा सु विचार ॥ ११ ॥ पाले धर्म यत्नकर जोय । शिव मंदिर ते लहे-जुसोई ॥ धर्म भेद दशविधि निरधार । उत्तमक्षमा मार्दवसार ॥ आर्जव सत्य शौच पुन जान ॥ संयमतप त्यागहि पहिचान ॥ आकिंचन ब्रह्मचर्य गनेवं ॥ यह दश भेद कहे जिनदेव ॥ धर्महि ते तीर्थंकरगति । धर्महि तें होवे सुरपति । धर्महि तें चक्रेश्वर जान । धर्महिं ते हरि प्रतिहरि मान । धर्महि ते मनोज अवतार । धर्महिते हो भवदधि पार । रत्नचंद्र यह करे बखान । धर्महितें पावे निर्वान ॥

(८) दश आरतियें ।

प्रथम आरती ।

यह विधि मंगल आरती कीजे । पञ्च परमपद भजि सुख लीजे ॥ टेक ॥ प्रथम आरती श्रीजिनराजा । भवजल पार उतार जिहाजा ॥१॥ दूजी आरती सिद्धन केरी । सुमरण करत मिटै भव फेरी ॥२॥ तीजी आरती सूर मुनिन्दा । जन्म मरण दुःख दूर करिन्दा ॥३ चौथी आरती श्री उवझाया । दर्शन देखत पाप पलाया ॥ ४ ॥ पांचमी आरती साधु तुम्हारी । कुमति विनाशन शिव अधिकारी ॥५॥ छट्ठी ग्यारहप्रतिमा धारी । श्रावक बन्दों आनन्दकारी ॥६॥ सातमी आरती श्री जिनवाणी । द्यानत स्वर्ग मुक्ति सुख दानी ।

द्वितीय आरती ।

आरती श्री जिनराज तुम्हारी । कर्मदलन सन्तन हितकारी ॥ टेक ॥ सुर नर असुर करत तव सेवा । तुम ही सब देवनके देवा ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे । राग दोष परिणाम विडारे ॥ २ ॥ भव भयभीत शरण जे आये । ते परमारथ पन्थ लगाये ॥३॥ जो तुम नाम जपै मन माहिं । जन्म मरण भय ताको नाहिं ॥ ४ ॥ समोशरण सम्पूरण शोभा । जीते क्रोध मान मद लोभा ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसे कर गावैं । गणधर कहत पार नहिं पावैं ॥ ६ ॥ करुणासागर करुणा कीजै । द्यानत सेवकको सुख दीजै ॥ ७ ॥

तीसरी आरती ।

आरती कीजै श्रीमुनिराजकी । अधम उधारण आतमकाजकी ।

॥ टेक ॥ जा लक्ष्मीके सब अभिलाषी। सो साधनि कर्दम वत-नाषी ॥१॥ सब जग जीत लियो जिननारी। सोसाधनि नागनि वत छारी ॥२॥ विषयनि सब जियको वसकीने। ते साधनि विषवत तज दीनें ॥ ३ ॥ भुञ्जों राज चहत सब प्राणी। जीरण तृणवत त्यागो ध्यानी ॥४॥ शत्रुमित्र सुख दुःख सम माने। लाभ अलाभ बराबर जाने ॥ ५ ॥ छहों काय पीहर व्रत धारें। सबको आप समान निहारें ॥ ६ ॥ यह आरती पढ़ै जो गावै। द्यानत मन-वांछित फल पावै ॥ ७ ॥

चौथी आरती।

किसविधि आरती करौं प्रभु तेरी। अगम अकथजस बुध नहिं मेरी ॥ टेक ॥ समुद्रविजै सुत रजमतिछारी। यौं कहि थुति नहिं होय तुम्हारी। कोटि स्तम्भ वेदी छवि सारी। समोशरण थुति तुमसे न्यारी ॥१॥ चारि ज्ञानयुत तिनकेस्वामी। सेवकके प्रभु अन्तरयामी ॥२॥ सुनिकै वचन भविक शिव जांहि। सो पुद्गल मैं तुमगुण मांहि ॥ ४ ॥ आतम जोति समान बताऊं। रविश-शिदीपक मूढ़ कहाऊं ॥ ५ ॥ नमत त्रिजगपति शोभा उनकी। तुम शोभा तुममें निज गुणकी ॥ मान सिंह महाराजा गावै। तुम महिमा तुमही बनि आवै ॥

पांचमी आरती।

यह विधि आरती करुं प्रभु तेरी। अमल अबाधित निज गुण केरी ॥ टेक ॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी। लोकालोक सकल परकाशी ॥१॥ ज्ञान दरश सुख बल गुणधारी। परमातम अविकल अविकारी ॥ २ ॥ क्रोध आदि रागादिक तेरे। जन्म

सो थिरता नहिं चपल कहावैं ॥ ६ ॥ द्यानत प्रीति सहित सिर नावैं। जनम जनम यह भक्ति कमावैं ॥ ७ ॥

अष्टम आरती।

करो आरती वर्द्धमानकी। पावापुर निवारण थानकी ॥ टेक॥ राग विना सब जगजन तारे। दोष बिना सब कर्म विदारे ॥१॥ सील धुरन्धर शिव तिय भोगी। मन वच काय न कहिये योगी ॥२॥ रत्नत्रय निधि परिग्रहहारी। ज्ञानसुधा भोजन व्रततारी ३॥ लोक अलोक व्याप निजमाहीं। सुखमैं इन्द्री सुख दुःख नाहीं ॥४॥ पञ्च कल्याणक पूज्य विरागी। विमल दिगम्बर अम्बरत्यागी ॥५॥ गुणमुनि भूषण भूषण स्वामी। तीन लोकके अंतरयामी ॥६ कहैं कहां लो तुम सब जानो। द्यानतका अभिलाष प्रमानो ॥७॥

नवमी आरती।

क्या ले आरती भगति करैंजी। तुम लायक नहि हाथ परैंजी ॥टेक॥ क्षीर उदधिको नीर चढ़ायौ। कहा भयो मैं भी जल लायो ॥१॥ उज्जल मुक्ताफलसों पूजें। हमपै तन्दुल और न दूजे ॥ १ ॥ कल्पवृक्ष फलफूल तुम्हारे। सेवक क्या ले भगति विथारे ॥३॥ तनसु चंदन अगर न लागै। कौन सुगन्ध धरैं तुम आगे ॥ ४ ॥ नख सम कोटि चन्द रवि नाहीं। दीपक जोति कहो किह माहीं ॥ ५ ॥ ज्ञान सुधा भोजन वृतधारी। नेवद कहा करे संसारीं ॥ ६ ॥ द्यानत शक्ति समान चढावै। कृपा तुम्हारो-से सुख पावै ॥ ७ ॥

दशम आरती।

मंगल आरती आतमराम। तन मंदिर मन उत्तम ठाम

जीव बचैया तुमही तो हो । अघठ्याही राजुलको छोडी गिरके चढ़ैया तुमही तो हो। मात पिताकी कही न मानी तपके तपैया तुमही तो हो । राजुल रानी मन अकुलानी धीर्यवंधैया तुमही तो हो ॥२॥ पार्सनाथ भगवान कमठके मान घटैया तुमही तो हो । जरत अगनसे नाग नागनीके उवरैया तुमही तो हो। महावीर जिन धीर बीर भव पीर हरैया तुमही तो हो । चौवीसों भगवान अहो भयफंद मिटैया तुमही तो हो । जैन धर्म प्रचार चलाया सृष्टि तरैया तुमही तो हो। अनंतानंते प्राणी भवसे पार करैया तुम ही तो हो ॥ मंत्र महान जहाज जगतमें या बतलैया तुमही तो हो ।णमोकार इस जगमें स्वामीजू पचरैया तुमही तो हो ॥३॥ कोढ़ा कोढ़ी यही मंत्रसे पार तरैया तुमही तो हो । आगे मोक्ष गये जप तपकर स्वर्ग दिवैया तुमही तो हो। अव सीझत निरधार प्रभु आधार वंदैया तुमही तो हो। देस विदेस विहार कीन उपदेश करैया तुम ही तो हो ॥ शिव मारग दर्शाया तुमने धर्म वतैया तुमही तो हो। पंथ लगाकर जग जीवनपर करुणा धरैया तुमही तो हो ॥ णमोकारका नोका करके मंत्र वतैया तुमही तोहो। जिन उद्धारक त्रिभुवन तारक रंक रखैया तुमही तो हो ॥४॥ दोष अठारा त्यागके वारागुणके धरैया तुमही तो हो। अतिशय चौंतिस दीखें न्यारे कर्म खिपैया तुमही तोहो ॥ कुमत रही जग छाय: जवे तुम सुमत वतैया तुमही तोहो। कुमति नार पाखंड किया परचंड हटैया तुमही तोहो ॥ जग अज्ञान मिटाया तुमनें ज्ञान दिपैया तुमही तो हो। तीर्थंकर पदवीके धारी ज्ञान उपैया तुमही तो हो। जब२ परी भीर भक्तनपै वांह गहैया तुमही तो हो। महाघोर

उपसर्ग जिताये छिन२के रखैया तुमही तोहो ॥५॥ कपी सिखरं-सम्मेदके ऊपर मंत्र दिवैया तुमही तोहो। चम्पापुरमें ग्वालि बालको सेठ करैया तुमही तोहो ॥ बैल जीव संबोध सुग्रीवने भूप बनैया तुमही तोहो ॥ चहलेमें हथनी फंसी ताह उवैरैया तुमही तोहो ॥ मानतुंग उपसर्ग बचाये बेड़ीं कटैया तुमही तो हो। सीता प्रवसीं अगनकुंडमें नीर करैया तुमही तोहो ॥ मनोरमा पर विपदा भारी सील रखैया तुमही तो हो। सती अंजना नृत्य करतमें स्वर्गदिवैया तुमही तो हो ॥६॥ अधम अंजना व्यसन कीनपर चोर तरैया तुमही तो हो। स्वांन जीवको सेठ संबोधो पेज रखैया तुमही तो हो ॥ महाकुटिल चंडाल भीलकूं स्वर्ग दिवैया तुमही तो हो। सती द्रोपदी धातु द्वीपमें पेज रखैया तुमही तो हो ॥ कोटीभट श्रीपाक सेठके कुष्ट कटैया तुमही तो हो। धर्मचक्रके फलसे काया स्वर्ण करैया तुम ही तो हो ॥ सखा सातसौकी असाधसब व्याध हटैया तुमही तो हो। जो यह मंत्र जपे तन मनसे पार करैया तुम ही तो हो ॥७॥ तन मनसे नर जो कोई ध्यावे तांह तरैया तुमही तो हो। तेरातीनहुए सब जैनी धोर्य बंधैयातुमही तो हो। पांचों मेरे सोय अज्ञानी इन्हें जगैया तुमही तो हो। घोरघटा मिथ्यात छाय रव ताह हटैया तुमही तो हो। भूकत भटकत फिरत भुलानों राह लगैया तुमही तो हो ॥ आजहिं वारी नाथ हमारी विनय सुनैया तुमही तो हो ॥ याजगमें नहिं कोई सुनैया बांह गहैया तुमही तो हो। फूलचंद जिन रंक धर्मका वंक दिवैया तुमही तो हो ॥८॥ चोवीसों जिनराज प्रभूजी अरज सुनैया तुमही तो हो। भव सागर बिच नरकी नैया पार लगैया, तुमही तो हो ॥

(१०) भोजनोंकी प्रार्थनाएं ।

(सबेरेके भोजन समयकी इष्ट प्रार्थना)

परमेष्टी सुमरण कर हम सब बालकगण नित उठा करें ।
स्वस्थ होय फिर देव धर्म गुरुकी स्तुति सब किया करें ॥
करना हमें आज क्या क्या है यह विचार निज काज करें ।
कायिक शुद्धि क्रिया करके फिर जिन दर्शन स्वाध्याय करें ॥१॥
मौन धारकर तोषित मनसे क्षुधा वेदना उपशम हित ।
विघ्नकर्मके क्षयोपशमसे भोजन प्राप्त करें परमित ॥
हे जिन हो हित कर यह भोजन तनमन हमरे स्वस्थ रहें ।
आलस तजकर "दीप" उमंगसे निज परहितमें मगन रहें ॥ २ ॥

(सांझके भोजन समयकी इष्ट प्रार्थना)

जय श्री महावीर प्रभुकी कह अरु निज कर्तव पूरण कर ।
संध्या प्रथम मौन धारणकर भोजन करें शांत मनकर ॥
परमित भोजन करें ताकि नहिं आलस अरु दुःस्वप्न दिखें ।
"दीप" समयपर प्रभु सुमरण कर सोवें जगें स्वकार्य लखें ॥

---

(११) नरकोंके दोहे ।

जनम थान सब नरकमें, अन्ध अंधोमुख जौन ।
घंटाकार योनावनी, दुसहवासदुख भौन ॥ १ ॥
तिनमें उपजै नारकी, तले सिर ऊपर पांव ।
विषमवज्र कंटकमई, परे भूमिपर आय ॥ २ ॥
जो विषैल बीछूसहस, लगे देह दुख होय ।

नरकधराके परसतें, सरस वेदना सोय ॥ ३ ॥
तहां परम पर वान अति, हाहा करते एम।
ऊंचे उछलें नारकी, तपे तवा तिल जेम ॥ ४ ॥
सोरठा—नरक सातवें मांहि, उछलत योजन पांचसे।
और जिनागम मांहिं, यथायोग सब जानिये ॥ ५ ॥
दोहा—फेर आन भूपर परे, और कहां उड़ि जाहिं।
छिन्नभिन्न तन अति दुखित, लोट कोट बिललाहिं ॥ ६ ॥
सब दिश देख अपूर्व थल, चकित चित भयवान।
मन सोचे मैं कौन हूं, परो कहां मैं आन ॥ ७ ॥
कौन भयानक भूमि यह, सब दुख थानक निन्द।
रुद्र रूप ये कौन हैं, निठुर नारकी वृन्द ॥ ८ ॥
काले वरण कराल मुख, गुंजालोचन धार।
हुंडक डील डरावने, करें मार ही मार ॥ ९ ॥
सुजन न कोई दिठिपरे, शरण न सेवक कोय।
ऐसो कछु सूझे नहीं, जासों छिन सुख होय ॥ १० ॥
होत विभंगा अवधि तब, निज परको दुखकार।
नरक कूपमें आपको, परोजान निरधार ॥ ११ ॥
पूरब पाप कलाप सब, आप जाप कर लेय।
तब विलापकी ताप तब, पश्चाताप करेय ॥ १२ ॥
मैं मानुष पर्याय धरि, धन यौवन मदलीन।
अधम काज ऐसे किये, नरकवास जिन कीन ॥ १३ ॥
सरसों सम सुख हेतु, तब भयो कंपटी जान।
ताहीको अब फल लगो, यह दुख मेरु समान ॥ १४ ॥

कंदमूल मदमांस मधु, और अभक्ष्य अनेक।
भक्षनवश भक्षन किये, अटक न मानी एक ॥ १५ ॥
जल थल नभ निलचर विविध, विलवासी बहु जीव।
मैं पापी अपराध विन, मारो दीन अतीव ॥ १६ ॥
नगर दाह कीनो निठुर, गांव जलाये जान।
अठवीमें दीनी अगिन, हिंसाकर सुख मान ॥ १७ ॥
अपनी इन्द्री लोभकों, बोली मृषा मलीन।
कलपित ग्रन्थ बनायकें, वहकाये बहु दीन ॥ १८ ॥
दांव घात परपंच सों, पर लक्ष्मी हरि लीन।
छलबल हठबल द्रव्यबल, पर वनिता वश कीन ॥ १९ ॥
बहुत परिग्रह पोट सिर, घटी न धनकी चाह।
ज्यों ईंधनके योगसे, अगिन करे अति दाह ॥ २० ॥
विन छानो पानी पियो, निशि भुंजी अविचार।
देवद्रव्य खायो सही, रुद्र ध्यान उरधार ॥ २१ ॥
कीनी सेव कुदेवकी, कुगुरुनिको गुरु मान।
तिनहीके उपदेश सों, पशु हो मोहित जान ॥ २१ ॥
दियो न उत्तम दान मैं, लियो न संयम भार।
पियो मूढ मिथ्यात मद, कियो न तप जग सार ॥ २२ ॥
जो धरनी जन दयाकरि, दीनी सखी निहोर।
मैं तिनसों रिस करि अधम, भाषे वचन कठोर ॥ २४ ॥
करी कमाई पर जनम, सो आई मुझ तीर।
हा हा अब कैसे धरों नरक धरामें धीर ॥ २५ ॥
दुर्लभ नरभव पायके कोई पुरुष प्रधान।

सब क्रोधी कलही सकल, सबके नत्र फुलिंग।
दुख देनेको अधि निपुण, निठुर नपुंसक लिंग॥ ३८॥
कुंत कृपाण कमान शर, शकती मुगदर दंड।
इत्यादिक आयुध विविध, लिये हाथ परचंड॥ ३९॥
कहि कठोर दुरवचन बहु, तिल१ खंडे काय।
सो तबही ततकाल तनु, पारावत मिल जाय॥ ४०॥
काटे कर छेदें चरण, भेदें परम बिचार।
अस्थि जाल चूरण करें, कुचलें चाम उपार॥ ४१॥
चीरें करवत काठ ज्यों, फारें पकरि कुठार।
तोडें अन्तरमालिका, अन्तर उदर विदार॥ ४२॥
पेरें कोल्हु मेलकें, पीसें घंटी घाल।
तावें ताने तेलमें, दहे दहन पर जाल॥ ४३॥
पकरि पांय पटके पुहमि, झटक परस्पर लेहि।
कंटक सेज सुवावहिं, सूलीपै धर देहि॥ ४४॥
घिसें मकण्टक रूखसो, वैतरणी ले जाहिं।
घायक घेरें वसीटिये, किंचित करुणा नाहिं॥ ४५॥
केई रक्त चुचात तन, विहुर भाजें ताम।
परबत अन्तर जायके, करो बैठि विश्राम॥ ४६॥
तहां भयानक नारकी, धारि विक्रिया भेष।
वाघ सिंह अहि रूपसों, दारें देह विशेष॥ ४७॥
कहें [illegible]सों नाथ गहि, गिरिसों देहिं गिराय।
परे आनि दुर्भूमिपै, खण्ड २ खण्ड हो जाय॥ ४८॥
दुख सों कायर चित्त कर, ढूंढें शरण सहाय।

वे अति निर्दय घात ही, यह अति दीनविघाय ॥४९॥
व्रण वेदननीकी करें, ऐसे कर विश्वास ।
सींचे खारे क्षार सों, ज्यों अति उपजे त्रास ॥५०॥
केई जकड़ जंजीर सो, खेंचि खंभतें बांधि ।
सुधि कराय अघ मारिये, नाना आयुध साधि ॥ ५१ ॥
जिन उद्धत अभिमान सों, कीने परभव पाप ।
तपत लोह आसन विषें, त्रास दिखावें थाप ॥ ५२ ॥
तातो पुतली लोहकी, लाय लगावें अंग ।
प्रीति करी जिन पूर्व भव, परकामिनके संग ॥ ५३ ॥
लोचन दोषी जानिकें, लोचन लेहिं निकाल ।
मदिरा पानी पुरुषकों, प्यावे तांबो गाल ॥ ५४ ॥
जिन अंगन सों अघ किये, तेई छेदे जाहिं ।
पल भक्षणके पाप तें, तोड़ २ कर खाहिं ॥ ५५ ॥
केई पूरव वैरकों, याद दिवावे नाम ।
कहि दुर्वचन अनेक विधि कर कोप संग्राम ॥ ५६ ॥
भये विक्रिया देह सों, बहु विधि आयुध जात ।
तिनही सों अतिरिस भरे, करें परस्पर घात ॥ ५७ ॥
सिथिल होय चिर युद्धतें, दीन नारकी जानि ।
हिंसानंदी असुर दुठ, आन करावें तान ॥ ५८ ॥
सोरठा—त्रितिय नरक परयंत, असुरो दीरघ दुःख है ।
भाषो जैन सिद्धान्त, असुर गमन आगे नहीं ॥ ५९ ॥
दोहा—इहि विधि नरक निवासमें, चैन एक पल नाहिं ।
तपै निरन्तर नारकी, दुख दावानल माहिं ॥ ६० ॥

मार २ सुनिये सदा, क्षेत्र महां दुर्गंध ।
वहैं ब्यार असुहावनी, अशुभ क्षेत्र सम्बन्ध ॥ ६१ ॥
तीन लोकको नाज सब, जो भक्षण कर लेय ।
तो भी भूख न उपशमे, कौन एक कण देय ॥ ६२ ॥
सागरके जलसों जहां, पीवत प्यास न जाय ।
लहे न पानी बूंद सम, दहे निरंतर काय ॥ ६३ ॥
वात पित्त कफ जनित जे, रोग जात या बन्त ।
तिनके सदा शरीरमें, उदै आयु पर यंत्र ॥ ६४ ॥
कटु तुंबीसों कटुक रस, करवतकी सम फांस ।
जिनकी मृतक मझार सो, अधिक देह दुर्वास ॥ ६५ ॥
योजन लाख प्रमाण जहं, लोह पिंड गल जाय ।
ऐसी है अति उष्णता, ऐसी शीत सुभाय ॥ ६६ ॥

अडिल्ल—पंक प्रभा पर्यंत उष्णता अतिकही,
धूम प्रभामें शीत उष्ण दोनों सही ॥
छटी सातवीं भूमिनि केवल शीत है,
ताकी उपमा नाहिं महाविपरीत है ॥ ६७ ॥

दोहा—स्वान स्यार मंजारकी, परी कलेवर रास ।
मासनसा अरु रूधिरकी, कांदो जहां कुवास ॥६८॥
ठाम २ असुहावने, सेंवल सेतरु भूर ।
पैने दुख देने कठिन, कंटक कलि तक शूर ॥ ६९ ॥
और जहां असि पत्रवन, भीम तरोवर खेत ।
जिनके दल तरवारसे, लगत घावकर देत ॥ ७० ॥
वैतरणी सरिता समल, लोहित लहर भयान ।

वहै क्षार श्रोणित भरी, मांस कीच घिन थान ॥७१॥
पक्षी वायस गीध गण, लोहतुंड सोजेह ।
मरम विदारे दुख करें, चौथे चहुंदिश देह ॥७२॥
पंचेन्द्री मनको महा, जो दुखदायक जोग ।
ते सब नर्क निकेतमें, एक निन्द अमनोग ॥ ७३ ॥
कथा अपार कलेशकी, कहै कहांलौ कोय ।
कोटि जीभसे बरनिये, तऊ न पूरी होय ॥ ७४ ॥
सागरबन्ध प्रमाण थिति, क्षण क्षण तीक्षण त्रास ।
ए दुख देखे नारकी, परवश परो निरास ॥ ७५ ॥
जसी परवश वेदना, सहे जीव बहु भाय ।
सुवश सहे जो अंस भी, तो भवजल तरि जाय ॥७६॥
ऐसे नरक नारकी, भयो भील दुठ भाव ।
सागर सत्ताईसकी, धारी मध्यम आव ॥ ७७ ॥
सागर काल प्रमाण अब, वरणों औसर पाय ।
जिनसों नर्क निवासकी, थित वरनी जिनराय ॥७८॥

---

(१२) जन्मकल्याणक पूजा ।

दोहा–दोष अठारह रहित प्रभु, सहित सुगुण छयालीस ।
तिन सबकी पूजा करों, आय तिष्ठ जगदीश ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्-र्हत्परमेष्ठिन् ! अत्र अवतर ! अवतर ! संवौषट् ।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्‌-र्हत्परमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्‌-र्हत्परमेष्ठिन्! अत्रममसन्निहितो भव भव वषट्।

(द्यानतरायकृत नन्दीश्वर द्वीपाष्टककी चाल।)

शुचिक्षीरउदधिको नीर, हाटक भृङ्गभरा।
तुमपदपूजौं गुणधीर, मेटो जन्मजरा॥
हरि मेरुसुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें।
हम पूजैं इनगुण गाय, मंगल मोद धरें॥ १॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्‌-र्हत्परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।१।

केसर घनसार मिलाय, शीत सुगंधघनी।
जुगचरनन चर्चौं लाय, भव आतापहनी॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें।
हम पूजैं इतगुण गाय, मंगल मोद धरें॥ २॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्‌-र्हत्परमेष्ठिने संसारातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥

अक्षत मोती उनहार, स्वेत सुगन्ध भरे।
पाउं अक्षयपदसार, ले तुम भेंट धरें॥ ३॥ हरि०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्‌-र्हत्परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥

वेल्हा जूही गुलाब, सुमन अनेक भरे।
तुम भेंट धरों जिनराज, काम कलंक हरे॥

हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजैं इतगुण गाय मंगल मोद धरें ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्-र्हत्परमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

फेनी गोझा पकवान, सुंदर ले ताजे ।
तुम अग्र धरों गुण खान, रोग छुधा भाजे ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजैं इत गुण गाय, मंगल मोद धरें ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कंचन मय दीपक बार, तुम आगे लाऊं ।
मम तिमिरमोह छेकार, केवल पद पाऊं ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजैं इत गुण गाय, मंगल मोद धरें ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद-र्हत्परमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु तगरु कपूर, चूरसुगंध करों ।
तुम आगे खेवत भूर, वसुविध कर्म हरों ॥
हरि मेरु सुदरशन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजैं इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षटचत्वारिंशदगुण सहित श्रीमद र्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल अंगूर अनार, सारक थार भरों ।

तुम चरन चढाऊं सार, ताफल मुक्ति वरों ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुण सहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल आदिक आठ अदोष, तिनका अर्घ करों ।
तुम पद पूजों गुण कोष, पूरन पद सु धरों ॥
हरि मेरु सुदरशन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, बदरी मोद धरें ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाल ।

(जोगीरासा)

जन्मसमय उच्छव करनेको, इन्द्र शचीयुत आयो ।
तिहँको कछु वरणन करवेको, मेरो मन उमगायो ॥
बुधि जन मोकों दोष न दीजो, थोरी बुद्धि भुलायो ।
साधू दोष क्षमै सबहीके, मेरी करौ सहायौ ॥ १ ॥

(छन्द कामिंनी-मोहन-मात्रा २० ।)

जन्म जिनराजको जबहिं निज जानियों ।
इन्द्र धरनिंद्र सुर सकल अकुलानियों ॥
देव देवाङ्गना चालिय जयकारतीं ।
शचिय सुरपति सहित करतिं जिन आरतीं ॥ २ ॥

सप्त सुर बाजईं। नृत्य तांडव करत इन्द्र अति छाजईं॥ करत उच्छाहसों जिनसु पद धारती। शचिय सुरपति सहित कर० ॥ १२॥ भव्य जन आय जिन जन्म उत्सव करें। आपने जन्मके सकल पातिक हरें॥ भक्ति गुरुदेवकी. पार उत्तारतीं। शचिय सुरपति सहित करतिं जिन आरती॥ १३॥

घत्ता—जिनवर पद पूजा भावसु हूजा, पूरण नित आनँद भया।
जयवंत सु हूजै आसा पूजौ, काल विनोदी भाल नया॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—मंगल गर्भ समयमें जोय। मंगल भयो जन्ममें जोय।
मंगल दीक्षा धारत जोय। मंगल ज्ञान प्राप्तिमें जोय॥
मंगल मोक्ष गमनमें जोय। इन्द्रन कीनौ हर्षित होय।
जाचूं वार वारहौं सोय। हे प्रभु! दीजे मंगल मोय॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

(१३) लघु पंचपरमेष्ठि विधान।

स्व० कवि चन्द्रजी कृत

दोहा—श्रीधर श्रीकर श्रीपती, भव्यनि श्रीदातार।
श्रीसर्वज्ञ नमों सदा, पार उतारन हार॥ १॥

अडिल्ल छंद—चार घातिया कर्म नाशि केवल लयो।
समोशरण तहां धनदे आय सुंदर ठयो॥

कुबे.

चौंतिस अतिशय अष्ट प्रातहारज भये ।
चार चतुष्टय सहित सुगुण छयालिम लये ॥ १ ॥
कर विहार भवि जीवन पार लगाइये ।
न श अघातिय चार सो शिवपुर जाइये ॥
जिनके गुण सु अनंत कहां वर्णन करों ।
वसु गुण हैं व्यवहार सिद्ध थुति उच्चरों ॥ ३ ॥

सोरठा—श्रीआचारज जान, धरत सदा आचारको ।
छत्तिस गुण परवान, वन्दों मन वच कायकर ॥ ४ ॥

दोहा—पच्चिस गुण उवझायके, ते वारें वर वीर ।
पढ़ें पढ़ावें पाठ वर, निर्मल गुण गम्भीर ॥ ५ ॥
वीस आठ गुण धारकर, साधें साधु महन्त ।
जीवदया पालें सदा, नहीं विरावें जन्त ॥ ६ ॥

चौपाई—ये ही पंच परमगुरु जानो । या जगमें अन्य न मानो ।
जिन जीवन इन सुमरन कियो । सुर शिवथान जाय तिन लियो ।
जो प्राणी मन वच तन ध्यावें । सिंह व्याघ्र गज नाहिं सतावें ।
जो मनमें इन सुमरन लावे । ताहि भूत भय नाहिं सतावें ॥९॥

दोहा—यही इष्ट उत्कृष्ट अति, पूजों मन वच काय ।
थापत हों त्रय वारकर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं पंचपरमेष्टिनोऽत्रागच्छागच्छ संवौषट् (आव्हाननं)
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्टिनेऽत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (प्रतिष्ठापनं)
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिनोऽत्र मम संनिहितो भव भव वषट् स्वाहा
(सन्निधापनम्)

गीता छंद ।

जल सरस गंग तरंगको, शुचि रंग सुन्दर लाइये ।
कंचन कटोरी माहिं भर, जिनराज चरन चढ़ाइये ॥
ये पंच इष्ट अनिष्ट हरता, दृष्टि लगत सुहावने ।
मैं जजों आनंदकन्द, लखकर, दुन्द फंद मिटावने ॥
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥
ले गारि मलयागिरि सु चन्दन, अति सुगंध मिलायके ।
मैं हर्षकर जिनचरण चरचों, गाय साज बजायके ॥ये पंच०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥
ले सरस तंदुल खंड विनसित, सालिके वर आनिये ।
मल धोय थार सँजोय पुजों, अखयपदको ठानिये ॥ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽक्षतान्निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥
बेला चमेली केवड़ा, मचकुन्द सुमन सुहावने ।
ले केतकी कमलादि अर्चों कामवान नसावने ॥ ये० ॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥
लाडू पुआ पेड़ा रु मिश्री, खोपरा खाजा बने ।
धर हेमथाल मझार पूजों, क्षुधारोग निवारने ॥ ये० ॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥
ले दीप मणिमय ज्योति जगमग, होत अधिक प्रकाशनी ।
कर आरती गुण गाय नाचों, मोह तिमिर विनाशनी ॥ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥
कर चूर अगर कपूर ले, भरपूर जास सुवासकी ।
खेऊं सु अगन मझार होकरके सु सन्मुख जासकी ॥ये०॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

फल परम सुख दातार, तन मन धोय जलसे लीजिये ।
धर थाल मध्य सु भक्तिसे, जिनराज चरण जजीजिये ॥ये०॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

ले नीर निर्मल गन्ध अक्षत सुमन अरु नैवेद्य जी ।
मिल दीप धूप सु फल भले, धर अरघ परम उम्मेद जी ॥ये०॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

रोड़क छंद–वसु विधि अरघ संजोय जोय जे पंच इष्ट वर ।
पूजों मन हुलसाय, पांय जिन प्रीति हृदय धर ॥
तुम सम अन्य न ज्ञान, जानि तुम्हरे गुण गाऊं ।
धर थारीके मध्य सो, पूरण अरघ बनाऊं ॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

श्री अरहंत गुण पूजा ।

सोरठा–छयालिस गुण समुदाय, दोष अठारह टारते ।
अरिहंत शिवसुखदाय, मुझ तारो पूजों सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिने षट्चत्वारिंशद्गुणविभूषिताय अष्टादशदोषरहिताय श्रीजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छंद मोतियदाम ।

जिनके नहिं खेद न स्वेद कहा । तन श्रोणित दुग्ध समान महा ॥
प्रथमा संस्थान विराजत हैं । वर वज्र शरीर सु राजत हैं ॥ १ ॥
छवि देखत भानु प्रताप नसे । तनसे सु सुगन्ध महा निकसे ॥
शत लक्षण अष्ट विराजत हैं । प्रिय बैन सबे हित छाजत हैं ॥२॥

दोहा–तन मल रहित अतुल्य बल, धारत हैं जिनराज ॥
ये दश अतिशय जनमके, भाषे श्रीगणराज ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं सहजदशातिशयप्राप्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

पद्धरी छंद ।

केवल उपजे अतिशय सुजान । सो सुनो भव्य जन चित्त आन ॥
शत योजन चारों दिशा माहिं । दुर्भिक्ष तहां दीखे सो नाहिं ॥४॥
आकाशगमन करते जिनेश । प्राणीका घात न होय लेश ॥
कवलाअहार नाहीं करात । उपसर्ग विना दीखे सो गात ॥ ५ ॥
चतुरानन चारों दिशा जान । सब विद्याके ईश्वर महान ॥
छाया तनकी नाहीं सो होय । टिमकार पलक लागे न कोय ॥६॥
नख केश वृद्धि ना होंय जास। ये दश अतिशय केवल प्रकाश ॥
तिनको हम बन्दें शीसनाथ । भव भवके अघ छिनमें पलाय ॥७॥
ॐ ह्रीं केवलज्ञानजन्मदशातिशयसुशोभिताय श्रीजिनाय अर्घ ॥

चौबोला–अब देवनकृत चौदह अतिशय, सो सुन लीजे भाई ।
सकल अरथमय मागधि भाषा, सब जीवन सुखदाई ॥
मैत्रीभाव सकल जीवनके, होत महां सुखकारी ।
निर्मल दिशा लसें सब ओरी, उपजे आनँद भारी ॥८॥
अरु निर्मल आकाश विराजत, नीलवरन तन धारी ।
षट्ऋतुके फल फूल मनोहर, लगे द्रुमोंकी डारी ॥
दर्पण सम सो धरनि तहाँकी, अति जिय आनँद पावे ।
निष्कंटक मेदनि विराजे, क्यों कवि उपमा गावे ॥९॥
मन्द सुगन्ध बयारि वृष्टि, गन्धोदककी चहुँघाई ।
हरषमई सब सृष्टि विराजे, आनंद मंगलदाई ॥

चरण कमल तल रचत कमल सुर, चले जात जिनराई।
मेघकुमारोंकृत गंधोदक, बरसे अति सुखदाई ॥ १०॥
चउ प्रकार सुर जय जय करते, सब जीवन मन भावे।
धर्मचक्र चल आगे प्रभुके, देखत भानु लजावे ॥
वसु विधि मंगलद्रव्य धरीं, तहाँ देखत मनको मोहे।
विपुल पुण्यका उदय भयो है, सब विभूतियुत सोहे ॥ ११ ॥

दोहा–ये चौदह देवन सु कृत, अतिशय कहे बखान।
इन युत श्रीअरहंतपद, पूजों पद सुख मान ॥ १२ ॥
ॐ ह्रीं सुरकृतचतुर्दशातिशयसंयुक्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि०॥

लक्ष्मीधरा–प्रातिहार्य वसु जान, वृक्ष सोहे अशोक जहां।
पुष्पवृष्टि दिव्यध्वनि, सुर ढोरें सु चमर तहां ॥
छत्र तीन सिंहासन, भामण्डल छवि छाजे।
बजत दुंदुभी शब्द श्रवण, सुख हो दुख भाजे ॥ १३ ॥
ॐ ह्रीं अष्टविधिप्रातिहार्यसंयुक्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

चौपाई–ज्ञानावरणी करम निवारा, ज्ञान अनन्त तबै जिन धारा।
नाश दर्शनावरणी सूरा। दरशन भयो अनन्त सु पूरा ॥ १४ ॥

दोहा–मोह कर्मको नाशकर, पायो सुक्ख अनन्त।
अन्तरायको नाशकर, बल अनन्त प्रगटन्त ॥ १५ ॥
ॐ ह्रीं अनन्तचतुष्टयविराजमानश्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

पाईता छंद–अतिशय चौतीस बखाने। वसु प्रातिहार्य शुभ जाने॥
पुन चार चतुष्टय लेवा। इन छ्यालिस गुण युत देवा ॥ १६ ॥
ॐ ह्रीं षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

श्री सिद्धगुण पूजा ।

अडिल–दर्शन ज्ञानानन्त, अनन्ता बल कहो ।
सुख अनन्त विलसंत, सु सम्यक् गुण कहो ॥
अवगाहन सु अगुरुलघु अव्याबाध है ।
इन वसु गुण युत सिद्ध, भजों यह साध है ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं अष्टगुणविशिष्टाय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं नि० ॥

श्रीआचार्य पूजा ।

दोहा–आचारज आचारयुत, निज पर भेद लखन्त ।
तिनके गुण षट्तीस हैं, सो जानो इमि सन्त ॥ १ ॥

बेसरी छंद ।

उत्तम क्षमा धरे मन माहीं । मारदव धरम मान जिहिं नाहीं ॥
आरजव सरल स्वभाव सु जानो । झूठ न कहें सत्य परमानो ।
निर्मल चित्त शौच गुण धारी । संयम गुण धारें सुखकारी ॥
द्वादश विधि तप तपत महंता । त्याग करें मन वच तन संता ॥
तज ममत्व आकिंचन पालें । ब्रह्मचर्य धर कर्मन टालें ॥
ये दश धरम धरें गुण भारी । आचारज पूजों सुखकारी ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं दशलाक्षणिकधर्मधारकाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

बेसरी छंद ।

अब द्वादश तप सुनिये भाई, अनशन ऊनोदर सुखदाई ॥
व्रतपरिसंख्या रस नहिं चाहें । विविक्तशैय्यासन अवगाहें ॥ ५ ॥
कायक्लेश सहें दुख भारी, ये छह तप बारह गुण धारी ॥
प्रायश्चित्त लेवें गुरु शाखें । विनयभाव निशिदिन चित राखें ॥ ६ ॥

दोहा—वैयावृत्य स्वाध्यायकर, कायोत्सर्ग सु जान ।
ध्यान करें निज रूपको, ये बारह तप मान ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं द्वादशविधितपोयुक्ताय आचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

लक्ष्मीधरा छंद ।

प्रतिक्रमण ये करें सो कायोत्सर्ग ये ठाने ।
समताभाव समेत, बंदना नित मन आने ॥
स्तुति करें बनाय गाय, स्वाध्याय सुनीको ।
षट् आवश्यक क्रिया, पापमल धोय यतीको ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं षडावश्यकगुणविभूषिताचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥
ज्ञानाचार सु धार, दर्शनाचार सु धारें ।
धर चारित्राचार, तपाचारहिं विस्तारें ॥
वीर्याचार विचार पंच आचार ये धारी ।
मन वच तन कर, बार बार बंदना हमारी ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं पंचाचारगुणविभूषितायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥
दोहा—तीन गुप्त पालें सदा, मन अरु वचन सु काय ।
सो वसु द्रव्य सँजोयके, पूजों मन हुलसाय ॥ १० ॥
ॐ ह्रीं त्रिगुप्तिगुणविभूषितायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥
सोरठा—दश विधि धर्म सुजान, द्वादश तप षट् क्रिया धरें ।
पंचाचार प्रमाण, तीन गुप्ति छत्तीस गुण ॥ ११ ॥
ॐ ह्रीं श्रीआचार्यपरमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीउपाध्याय गुण पूजा ।

दोहा—उपाध्याय गुण वरणऊँ, पंच अरु बीस प्रमान ।
एकादश वर अंग अरु, चौदह पूरव जान ॥ १ ॥

सुन्दरी छंद।

प्रथम आचारांग सु जानिये। द्वितिय सुत्रकृतांग वखानिये॥
तीसरो स्थानांग सो अंग जु। तूर्य समवायांग अभंग जू॥ २॥
पंचमो व्याख्याप्रज्ञप्ति जू। छट्ठम ज्ञातृकथा गुण युक्त जू॥
उपासकाध्यन अंग सो सप्तमो। अंग अंतकृतांग सु अष्टमो॥३॥

दोहा–नवम अनुत्तर दशम पुन, प्रश्नव्याकरण जान।
विपाकसूत्र सु ग्यारमो, धारैं गुरु गण खान॥ ४॥

ॐ ह्रीं एकादशांगपठनयुक्ताय उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घं नि०॥

गीता छंद–अब चार दश पूरव, प्रथम उत्पाद नाम सु जानिये।
आग्रायणी वीर्यानुवाद सु, अस्तिनास्ति वखानिये॥
ज्ञानःप्रवाद सु पंचमो, कर्मप्रवाद छट्टों कहो।
सत्यप्रवाद सु सप्तमो, आत्मप्रवाद वसु कहो॥ ५॥
पुनः नाम प्रत्याख्यान अरु, विद्यानुवाद प्रमाणिये।
कल्याणवाद महन्त पूरव, क्रियाविशाल वखानिये॥
वरलोकविंद मिलाय चौदह, सार ये पूरव कहे।
ते धरैं श्रीउवझाय तिनके, पूजते शिवमग लहे॥ ६॥

ॐ ह्रींचतुर्दशपूर्वपठनपाठनसंलग्नाय उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि०॥

दोहा–ऐसे ग्यारह अंग अरु, चौदह पूरव जान।
उपाध्याय जानें सुधी, सो पूजों रुचि ठान॥ ७॥

श्री साधुगुण पूजा।

दोहा–साधु तने अठवीसगुण, सो धारैं मुनिराज।
अतीचार लागे नहीं, साधैं आतम काज॥ १॥

याके सु फल धन धान्य सम्पत्ति, रूप गुण शुभ पाइये।
सुरपद सहज ही मिलत हैं, वसु कर्म हर शिव जाइये॥ १९॥

---

(१४) श्री अरहंत पूजा।

छप्पय-जय अरहंत महंत, त्रिजग-वन्दित अभिरामी।
दोष अठारह रहित, सहित छयालिस गुणनामी।
जगत चराचर लखत, हस्तरेखावत ज्ञानी।
युक्तिशास्त्र अविरोधि वचन जिन परम प्रमानी॥
हे अर्हन्! भव्य परमशरण! पूज्य प्रभो! इत आइये।
मैं पूजन-हित उत्सुक खड़ो, दर्शन दे हर्षाइये॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुण सहित श्रीं अर्हत्परमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

द्रव्याष्टक।

तुम परम पावन सुख सदन भव वन भ्रमत जगजन-शरण।
तुम जन्म मरण जरा हरण जग जलधि-भवि तारण तरण॥
यह विरद सुन आयो शरण ले अमल जल भवमल हरण।
त्रयधार दे बहुभक्तिसे पूजों चरण मन शुचिकरण॥
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युंविनाशनाय जलं॥१॥
तुम देव-इन्द्र नरेन्द्र कर वन्दित प्रभो! सुखकन्द हो।
भव पाप ताप निवारवेको तुम्हीं अनुपम चन्द हो॥

जय ऊरधस्वभाव शिवगामी, ऊहापोह विगत गुणधामी ॥
जय ऋषभ शक्लेश विहीना, ऋषिगण जपत सुपद निज चीना ।
जय एकान्त कुनय तमहारी, एक अनेकरूप अविकारी ॥
जय ओजस्विन् तत्वप्रकाशक, ओङ्कारतुव ध्वनि भ्रम नाशक ।
जय अंबरवत शुद्ध विरागी, अंतरबाह्य परिग्रह त्यागी ॥
जय कल्याण कल्पतरु धीरा, कर्मसुभट बल नाशक वीरा ।
जय खगपति वंदितजिननामी, खलविधि हरण शरण जगस्वामी ॥
जय गणेश तुम सुगुण अनंता, गणित न सुर गुर पावहिं अंता ।
जय घनहर्षसुधा वर्षावन, घनरस जग अघ ताप नशावन ॥
जय चहुँगति दुख नाशक स्वामी, चमर ढुरत चौंसठ अभिरामी ।
जय छत्रत्रय शोभित ईशा, छनित होत गुण कहत मुनीशा ॥
जय जगदीश जयति जिनदेवा, जन्मजलधि तारक स्वयमेवा ।
जय झषकेतु दलन मन भावन, झटित कर्म हन शिवपुर जावन ॥
जय टङ्कोत्कीर्ण सम ध्यानी, टरत दुःखपद जजत सुज्ञानी ।
जय ठहरत निजपद अविनाशी, ठग्यो जगत तिस मोह विनासी ॥
जय डरनेह मोह मद हीना, डगन भरत नभ चलत अदीना ।
जय ढन जन्म समय जगपाली, ढरत सहसअठ कलस विशाली ॥
जय तत्वार्थबोध दातारी, तरन तरंड भवोदधि तारी ।
जय थल जल नभ भक्ति सहायक, थम्भ सुदृढ़ वृषके सुखदायक ॥
जय दयालु दुख दलन अपारी, दर्शनीय अनुपम छविधारी ।
जय धर्मेश अधम उद्धारी, धन्य साम्य वर्द्धन घन धारी ॥
जय नव केवल लब्धि सुभोगी, नयनानंद नग्न संयोगी ।
जय परमातम परम प्रमानी, परमानंद प्रशम सुख दानी ॥

जय फणिपति वंदित गुणमंडित, फन्द हरण सुखकरन अखंडित॥
जय बलवीर विभाव विहीना, बर्द्धमान वर्द्धित गुण कीना।
जय भगवन्त संत मन रंजन, भव्य कमल रवि भ्रमतम भंजन॥
जय मङ्गलमयमंगल कारी, मगन आतम निज निधि सुखकारी।
जय यतिपति यश धर सुखरासी, यथाख्यात चारित्र प्रकाशी॥
जय रमेश रमणीय स्वरूपा, रत्नत्रयनिधिदायक भूपा।
जय ललाम गुण धाम अनूपा, लक्ष्मीपति लक्षित चिद्रूपा॥
जय वसुधा वत्सल मुनि भावन, वस्तु स्वभाव धर्म दर्शावन।
जय शशिभविजन कुमुदविकाशी, शमकर मोह महातम नाशी॥
जय षट्भेदभाव विज्ञानी, षट्कर्तव्य निरूपक ज्ञानी।
जय सर्वज्ञ सकल हितकारी, सन्शय विभ्रम मोह निवारी॥
जय हरिहर्षन साधु प्रवीना, हलधर हर गुण जपत नवीना।

दोहा—क्षेमंकर त्रिपुरारि तुम, ज्ञायक त्रिजग महान।
गुण अनन्त गणधर अगम, "मणि" किम करै बखान॥

जे भव्य नित्य पवित्र होकर अष्ट द्रव्य सुध्यायकें।
भगवन्त श्री अरहंतकी पूजा करैं हरषायकें॥
ते पुन्यनिधि संचय करैं इस लोक यश सुख पायकें।
तप धार पुन सबकर्म हन निज थल वसैं शिव जायकें॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री पं० मुन्नालालजी महरोनी कृत अरहंत पूजा संपूर्ण।

(४४) रविव्रत कथा ।

चौपाई—श्री सुखदायक पार्श्वजिनेश । सुमति २ दाता परमेश ।
सुमरों शारद पद अरविन्द । दिनकर व्रत प्रगटो सानन्द ॥१॥
बानारस नगरी सु विशाल । प्रजापाल प्रगटो भूपाल ।
मतिसागर तहां सेठ सुजान । ताको भूप करे सन्मान ॥२॥
ताकुत्रिया गुणसुन्दरनाम । सातपुत्र ताके अभिराम ।
षट्पुत्र भोग करें परणीत । बालरूप गुणधर सुविनीत ॥३॥
सहस्रकूट शोभित जिनधाम । आये यति पति खंडित काम ।
सुन मुनि आगम हर्षित भये । सर्व लोग वन्दनको गये ॥४॥
गुरु वाणी सुनके गुणवती । सेठिन तब जो करी विनती ।
व्रत प्रभु सुगम कहो समझाय । जाते रोग शोक सब जाय ॥५॥
करुणानिधि भाषे मुनिराय । सुनो भव्य तुम चित्त लगाय ।
जब असाढ़ सित पक्ष विचार । तब कीजे अंतिम रविवार ॥६॥
अनुशन अथवा लघुहार । लवणादिक जो करे परिहार ।
नव फलयुत पंचामृतधार । वसु प्रकार पूजो भवहार ॥७॥
उत्तम फल इक्यासी जान । नव श्रावक घर दीजे आन ।
याविधि करो नव वर्ष प्रमाण । याते होय सर्व कल्याण ॥८॥
अथवा एक वर्ष इक सार । कीजे रविव्रत मनहि विचार ।
सुन साहुन निज घरकों गई । व्रतकी निन्दासे निन्दित भई ॥९॥
व्रत निन्दासे निर्धन भये । सात पुत्र अयोध्यापुर गये ।
तहां जिनदत्त सेठ गृह रहें । पूर्व दुःकृतका फल कहें ॥१०॥
मातपिता गृह दुःखित सदा । अवधि सहित मुनि पूछे तदा ।

दयावंत मुनि ऐसे कही । व्रत निन्दासे तुम दुख लही ॥ ११ ॥
सुन गुरु वचन बहुरि व्रत लयो । पुण्य किये घरमें धन भयो ॥
भवि जन सुनो कथा सम्बन्ध । जहां रहत थे वे सब नन्द ॥ १२ ॥
इक दिवस गुणधर सुकुमार । घास काट ले आये द्वार ॥
क्षुधावंत भावज पै गयो । दंत विना भोजन नहीं दयो ॥ १३ ॥
बहुरि गये जहां भूलो दंत । देखों तासों अहि लिपटंत ॥
फणिपतिकी तहं विनती करी । पद्मावती प्रगटी सुन्दरी ॥ १४ ॥
सुन्दर मणिमय पारसनाथ । प्रतिमा पंचरत्न शुभ हाथ ॥
देकर करो कुंवर कर भोग । करो क्षणक पूजा संयोग ॥ १५ ॥
आनविंव निज घरमें धरो । तिहकर तिनको दारिद्र हरो ॥
सुख विलसत सेवे सब बन्द । दिन प्रति पूजों पार्श्व जिनेन्द्र ॥ १६ ॥
साकेता नगरी अभिराम । जिनप्रसाद रचा शुभ धाम ॥
करि प्रतिष्ठा पुंण्य संयोग । आये भविजन संग सो लोग ॥ १७ ॥
संगचतुर्विधिको सम्मान । कियो दियो मनवांछित दान ॥
देख सेठ तिनकी सम्पदा । जात कही नृपतिसे तदा ॥ १८ ॥
भूपति तब पूंछो वृत्तान्त । सेठ कहा गुणधर गुणवन्त ॥
देख सुलक्षण ताको रूप । अतिआनन्द भयो सो भूप ॥ १९ ॥
भूपति अह तनुजा सुन्दरी । गुणधरको दीनीं गुणभरी ॥
कर विवाह मंगल सानन्द । हय गज पुरजन परमानन्द ॥ २० ॥
मनवांछित पाये सुख भोग । विस्मित भये सकल पुर लोग ॥
सुखसे रहत बहुत दिन भये । तब सब बन्धु बनारस गये ॥ २१ ॥
मात पिताके परसे पांय । अत्यानन्द हृदय न समाय ॥
विगटो विषम विषय वियोग । भयो सकल पुरजन संयोग ॥ २२ ॥

आठ सात सोलहके अंक । रविव्रत कथा रची अकलंक ॥
थोड़े अर्थ ग्रन्थ विस्तार । कहैं कवीश्वर जो गुण सार ॥ १३ ॥
यह व्रत जोनर नारी करें । सो कबहूं दुर्गति नहिं परें ॥
भाव सहित सो सब सुख कहैं । भानुकीर्ति मुनिवर इम कहैं ॥१४॥